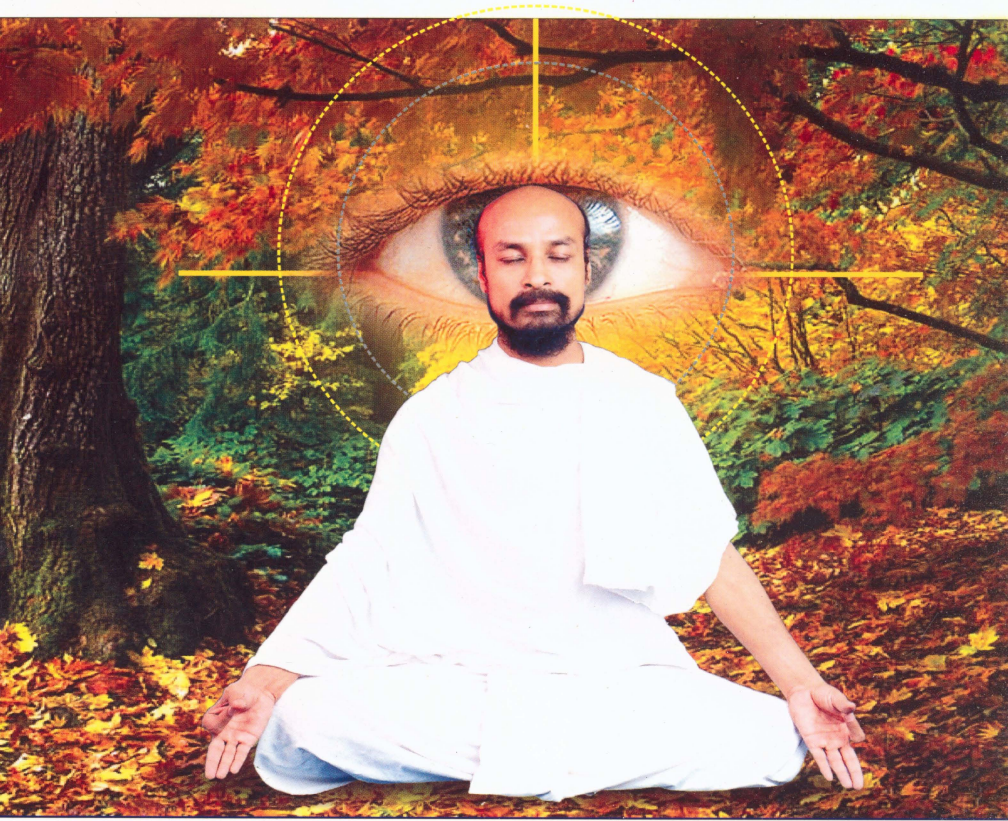


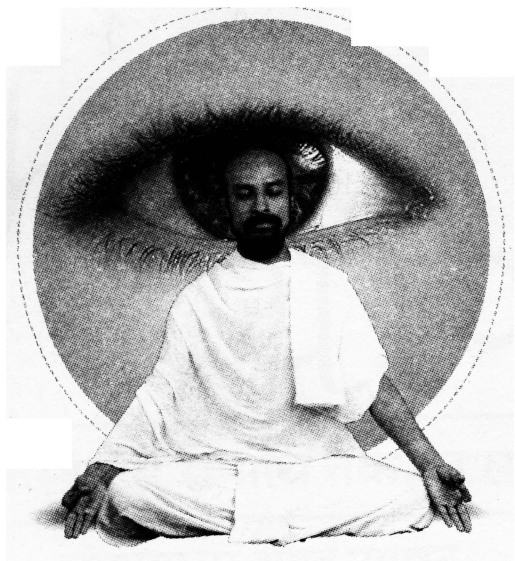
श्री चन्द्रप्रभ

The योग



स्वास्थ्य से
समाधि तक का सफ़र





The योग

स्वास्थ्य से समाधि तक का सफ़र

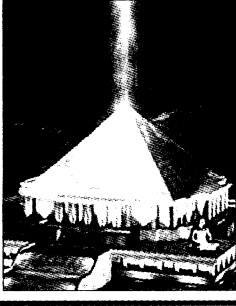
योगसूत्र पर अमृत प्रवचन

श्री चन्द्रप्रभ

द योग
श्री चन्द्रप्रभ

प्रकाशन वर्ष : नवम्बर, 2012

प्रकाशक : श्री जितयशा फाउंडेशन
बी-7, अनुकम्पा द्वितीय, एम. आई. रोड, जयपुर (राज.)
आशीष : गणिवर श्री महिमाप्रभ सागर जी म.
मुद्रक : भारत प्रेस, जोधपुर
मूल्य : 40/-



भूमिका

महर्षि पतंजलि हमारे देश के मूर्धन्य योग-प्रणेता हैं। वे योग को जीवन का अनुशासन कहते हैं। जिसे जीवन में समग्रता से जीने की कला आ गई, वह योग में निष्णात हो गया। पतंजलि जीवन से इतने जुड़े हैं कि व्यक्ति जीवन से पार देखने की क्षमता को उपलब्ध हो जाता है। ऐसा भी कह सकते हैं कि पतंजलि आध्यात्मिक संस्कृति के सूत्रधार हैं, मृत्यु के पार अमृत की ओर ले जाने वाले कलाकार हैं।

पूज्य श्री चन्द्रप्रभ जी ने महर्षि के शास्त्र में से कुछ खास मोतियों को चुनकर हमारे सामने उनके अर्थ, रहस्य और गूढ़ताओं को सहज, सरल, सुबोध शैली में उद्घाटित किया है। पूज्यश्री स्वयं भी जीवन में सहजता और निर्मलता के संवाहक हैं। उनके ये प्रवचन न केवल 'योग-का-प्रवेशद्वार' बन गए हैं, अपितु योग को सरलता से आत्मसात करने की जादुई कुंजी भी बन चुके हैं। मानवजाति के लिए स्वस्थ, ऊर्जावान और आध्यात्मिक चेतना का मालिक बनने के लिए यह ग्रन्थ मील के पथर का काम करेगा। श्री चन्द्रप्रभ कहते हैं – 'योग का उद्देश्य व्यक्ति के मन को समाप्त करना नहीं है अपितु चित्त का परिमार्जन करना है।' जब चित्त का परिमार्जन हो जाएगा तो व्यक्ति क्लेशकारी वृत्तियों से मुक्त हो जाएगा। जहाँ क्लेश नहीं होगा वहाँ स्वभाव में भी अवश्य परिवर्तन होगा। तब योग का पहला परिणाम निकलेगा स्वभाव-परिवर्तन। आज व्यक्ति क्रोध, चिंता, तनाव आदि से घिरा हुआ है और ध्यान-योग द्वारा इन अवसादों से निश्चय ही मुक्त हुआ जा सकता है।

पूज्य श्री चन्द्रप्रभ अपनी दार्शनिक शैली में योग को सीधे मन और आत्मा से जोड़ना चाहते हैं और इसके लिए स्थूल काया की आवश्यकता भी स्वीकारते हैं। वे चाहते हैं कि तन भी मन जितना ही स्वस्थ बने। उनका मानना है कि व्यक्ति को प्रतिदिन बीस से तीस मिनट योगाभ्यास अवश्य करना चाहिए, तत्पश्चात् प्राणायाम व ध्यान किया जाना चाहिए तभी मन के साथ-साथ तन भी स्वस्थ व क्रियाशील रहेगा।

पतंजलि के योग-सूत्र 'रहस्य-का-तर्कशास्त्र' हैं। आप उसकी चाहे जितनी पतें खोलें फिर भी कुछ है जो अनकहा रह जाता है। श्री चन्द्रप्रभ ने इन रहस्यों को बड़ी मधुरता से महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट, जेन, सूफी आदि परम्पराओं के साथ जोड़कर सहजता से प्रस्तुत किया है। उन्हें आधुनिक विचारकों में ओशो का नाम लेने से भी परहेज नहीं है। वे कृष्णमूर्ति और अरविंद जैसे दार्शनिकों का भी सम्मान करते हैं। सच पूछा जाए तो पूज्यश्री सभी स्वस्थ परम्पराओं के समन्वयाचार्य के रूप में उभरकर हमारे सामने आते हैं जहाँ कहीं कोई विरोध दिखाई नहीं पड़ता। अगर वे रहस्यदर्शी दार्शनिक हैं तो प्रेमपूर्ण हृदय के देवता भी हैं। उन्हें सूर, मीरा, चैतन्य महाप्रभु से भी उतना ही लगाव है। उनके कथन में तर्क के साथ भावों की भी सघन गहराई है।

आज विश्व में जहाँ वैज्ञानिक अनुसंधान और आविष्कार सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर बढ़ रहे हैं वहीं आध्यात्मिक विश्लेषक उच्च आयामों की खोज कर सृष्टि और प्रकृति के शाश्वत सत्यों को उपलब्ध कराने को कटिबद्ध हो रहे हैं। श्री चन्द्रप्रभ भारतीय एवं मानवीय जीवन-दृष्टि के संवाहक हैं। वे जीवन के शाश्वत सत्यों से स्वयं रूबरू होकर हमें भी रूबरू करवा रहे हैं। वे सूरज की किरण बनकर हमारे भीतर आशा और विश्वास का सवेरा जगाते हैं, तो चंदा की चाँदनी बनकर हमारे अज्ञान के अंधकार को दूर करते हैं। वे अपनी आत्मीयता में डुबोते हैं और बहुत सरलता से पार उतरने के लिए पतवार थमा देते हैं। वे हमें सच्चाई का सामना करने का पथ और साहस प्रदान करते हैं। योग का प्रवेश-द्वार विकट है। यहाँ कठोर अनुशासन है, जिसमें योग नौका है और उतारने वाला गुरु है। यह गुरु कबीर की भाषा में कहता है – 'सीस उतारे मुँई धरै तब पैठे घर मांहि।'

परम पूज्य निमंत्रण दे रहे हैं कि आओ और वह बीज ढूँढें जाओ जिससे सुगंधित पुष्पों से भरे, फलों से लदे वृक्ष का उदय हो सके। इस सुन्दर पुस्तक में अवगाहन कर आप उस उज्ज्वल, चैतन्य, ध्यान और समाधि के पथ का अनुसरण कर अ-मन और मुक्त दशा को प्राप्त हो सकें यही शुभ-मंगल भावना है।

प्रभुश्री के चरणों में अहोभाव-पूर्ण नमन।

– मीरा



अनुक्रम

1. योग : स्वास्थ्य से समाधि का सफर	11
2. योग के प्रेक्टिकल प्रयोग	23
3. योग से होगा सतोगुण का विकास	33
4. स्वभाव-परिवर्तन : योग का पहला चमत्कार	44
5. कैसे तोड़ें अज्ञान का चक्रव्यूह	60
6. अज्ञान और अहंकार पर कैसे पाएँ विजय	71
7. मानसिक क्लेशों से कैसे पाएँ मुक्ति	81
8. योग का प्रथम द्वार : यम	93
9. योग के पाँच नैतिक मूल्य	106
10. योगासन : प्रभाव और परिणाम	116
11. प्राणायाम की सरल एवं सूक्ष्म समझ	124

12. प्रत्याहार : अन्तर्यात्रा का मार्ग	134
13. बस, तीन कदम... धारणा, ध्यान और समाधि	144
14. रोगमुक्ति के लिए कौन-सा करें ध्यान	156
15. कैसे करें हृदय की गुफा में प्रवेश	167
16. योग का अंतिम संदेश निजता की प्राप्ति	179





योग :

स्वास्थ्य से समाधि का सफर

मेरे प्रिय आत्मन्,

योग जीवन का चिराग है। एक ऐसा चिराग जिसके प्रकाश का सहारा लेकर अब तक अनगिनत लोगों ने अपने जीवन में स्वास्थ्य, शांति और समाधि की मंजिलों को तय किया है। महर्षि पतंजलि, हजारों वर्ष पूर्व का एक ऐसा पवित्र नाम है जिसने जीवन और अध्यात्म की हर गहराई को समझा और एक मनोवैज्ञानिक तथा अध्यात्मविद् बनकर समस्त मानवजाति के समक्ष योग का विज्ञान स्थापित किया। धर्म और अध्यात्म का व्यवस्थित मार्ग देने के लिए प्रयास तो अनेकानेक महापुरुषों ने किया, लेकिन पतंजलि का विज्ञान सबसे हटकर है, सबसे ऊपर है। उन्होंने आम आदमी के आध्यात्मिक विकास के लिए जितना सुव्यवस्थित मार्ग दिया, शायद हजारों वर्षों के बाद भी वैसा सुव्यवस्थित योग का विज्ञान देने में अन्य किसी ऋषि-महर्षि को सफलता नहीं मिली। हाँ, किसी ने ऐसा करने का प्रयास भी किया तो कहीं-न-कहीं उसमें पतंजलि का प्रभाव स्पष्टतया अनुभव किया जा सकता है।

ध्यान और साधना-मार्ग के विशिष्ट प्ररूपक और अनुभवी आत्मज्ञानी महापुरुषों में भगवान महावीर और भगवान बुद्ध दोनों का नाम आता है जिन्होंने

ध्यान और अध्यात्म का मौलिक मार्ग प्रदान करने की कोशिश की। अनुपश्यना और विपश्यना के नाम से महावीर और बुद्ध ध्यान के उपदेष्टा हुए, लेकिन दोनों ने पहले योग-विज्ञान को जीने का प्रयत्न किया। बुद्ध ने स्वयं स्वीकार किया है कि प्रारम्भिक अवस्था में उन्होंने जैन मुनियों के साधना-मार्ग को अपनाया और वैदिक परम्परा के आचार्यों द्वारा बताए गए योग-मार्ग को भी जीने का अभ्यास किया। यह दूसरी बात है कि आगे चलकर उनके लिए विपश्यना का मार्ग सरल बना। विपश्यना एक तरह से सचेतनता की साधना है जिसमें व्यक्ति श्वास, शरीर, शरीर की संवेदना, चित्त की प्रकृति और संस्कारों का अधिक-से-अधिक साक्षी होने का प्रयत्न करता है।

आश्चर्य की बात है कि हजारों वर्ष पूर्व पतंजलि ने आदि स्रोत के रूप में, आदि प्रवर्तक के रूप में योग को स्थापित किया, योग का सुव्यवस्थित मार्ग देने में सफलता प्राप्त की। पतंजलि योग के शिखर-पुरुष हैं। उन्होंने हजारों साल पहले योग को प्रकाशित किया, उसे एक व्यवस्था दी और मानव-समाज के साथ जोड़ा। योग जो कभी ऋषि-मुनियों तक ही सीमित था उसे उन्होंने जन-सामान्य के लिए भी उपयोगी बनाया। हजारों वर्षों से लोग इसे अपना कर स्वस्थ, सहज और तनावमुक्त जीवन जीने की कोशिश कर रहे हैं। इस दरमियान अनेकानेक मुनियों और प्रबुद्ध महानुभावों के चिंतन में बहुत-सी पगडंडियाँ बनीं, बहुत से रास्ते बने, लेकिन कोई भी पतंजलि को दरकिनार न कर सका। सभी महानुभाव ससम्मान उनके योग-विज्ञान को अपने साधना-पथ के साथ जोड़ते हैं। आध्यात्मिक पथ की ओर अग्रसर मुमुक्षुओं और साधकों के लिए पतंजलि का योग-विज्ञान एक ध्रुव नक्षत्र है, दीपशिखा है, दिन में सूरज का प्रकाश है तो रात में चन्दा की चाँदनी है। जैसे किसी कक्ष में दीपक जला दिया जाए तो कक्ष का कायाकल्प हो जाता है ऐसे ही जीवन में योग को घोल लिया जाए तो जीवन भी बेहतर बन जाता है। योग प्रथम है, मुक्ति अंतिम।

मैं पतंजलि का प्रशंसक हूँ। मैंने भी पतंजलि के योग-सूत्रों से अपने साधना पथ को प्रकाशित किया है। पतंजलि मनोवैज्ञानिक हैं। उन्होंने मनुष्य के मन को समझा और मन की उठापटक से मुक्त होने के लिए मार्ग दिया। उन्होंने अपने योगशास्त्र का प्रारम्भ ही – योगः चित्तवृत्ति निरोधः – से किया है। चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। उन्होंने योग को सर्व प्रथम व्यक्ति के चित्त और उसके संस्कारों के साथ जोड़ा है। वे एक वैज्ञानिक भी हैं तभी तो योग का सुव्यवस्थित मार्ग हमें दिया। वे अध्यात्मवेत्ता भी हैं इसीलिए उन्होंने आत्मा की गहराइयों को छूने का प्रयत्न किया – शब्द, अभिव्यक्ति और लेखन के जरिए। यह अलग बात है कि मैंने

उन्हें महान जीवन-दृष्टा के रूप में जाना है। वह व्यक्ति जीवन-दृष्टा होता है जो जीवन को हर कोण से, हर एंगल से बखूबी जानता है। जीवन की बारीकियों को अन्तस्तल से जानने वाले महान वैज्ञानिक, महान अनुत्तरयोगी का नाम महर्षि पतंजलि है। उनका प्रसिद्ध शास्त्र योग-सूत्र है जिसका प्रारम्भ ही चित्तवृत्तियों के निरोध से होता है।

आज पूरे विश्व में योग का आभामंडल फैला हुआ है। योग जो कभी संन्यासियों के आश्रम और कुटिया में रहा करता था, आज वहाँ से बाहर निकल कर वह सर्वत्र व्याप्त हो गया है। यह वह मार्ग है, जिसे लोग समझ गए हैं कि अगर उन्हें स्वस्थ रहना है, तनावमुक्त, सदाबहार प्रसन्न और मधुर रहना है, आध्यात्मिक चेतना का मालिक बनना है, तो सभी को योग की शरण में आना ही होगा। हमें योग को भी वैकल्पिक चिकित्सा के रूप में अपनाना होगा। सदा सर्वदा स्वस्थ और ऊर्जावान रहने के लिए हमें कल भी योग की जरूरत थी, आज भी है और जब तक यह सृष्टि रहेगी तब तक यह जरूरत बनी रहेगी।

मैंने योग को जीवन के हर पहलू के साथ समझा है। आपने किसी तीन माह के बच्चे को देखा होगा, जो उसी तरह हाथ-पाँव चलाता है जैसे योग सिखाने वाले हाथ-पाँवों की साइकिलिंग करवाते हैं। ऐसे बच्चों को देखकर आपको लगेगा कि योग तो बिल्कुल प्राकृतिक है। योग कोई आरोपण नहीं है, यह तो हमारे जीवन की नैसर्गिक विधि है। प्रकृति से ही हम योग सीख कर आते हैं। जब तक इंसान योग के रूप में व्यायाम, प्राणायाम और ध्यान करता रहेगा वह अपने हाथों में उत्साह और उमंग का चिराग रखेगा। जिस दिन इंसान योग से विमुख होगा उसी दिन से वह वृद्धावस्था की ओर कदम बढ़ा बैठेगा।

मेरे लिए तो योग जीवन का अमृत है और योग छोड़ देना रोग और मृत्यु को आमंत्रण है। जब तक व्यक्ति सक्रिय, सचेतन रहेगा तभी तक वह स्वस्थ रहेगा और स्वस्थ रहना अपने आप में योग है। स्वस्थ इंसान ही योगी बन सकता है। योग वह नहीं है जिसे करने के लिए कहीं बाहर हिमालय की गुफा में जाना पड़े और तपना पड़े। हो सकता है वह श्रेष्ठ योग हो, पर वह योग की अंतिम क्लास है। पहली क्लास तो स्वास्थ्य है। सच तो यह है कि जो स्वस्थ है वह प्रत्येक व्यक्ति योगी है। वृद्ध हो जाने के बावजूद जो मन में उत्साह और उमंग से भरा है वह योगी ही है। यदि पन्द्रह वर्षीय बालक रोगी, निराश, हताश है, जीवन की आशा छोड़ बैठा है तो वह बचपन में ही बूढ़ा हो चुका है। यदि आप पचपन में भी ऊर्जावान हैं, तो बचपन आपकी गोद में अठखेलियाँ कर रहा है। आइए, हम समझें कि योग क्या है?

योग का अर्थ है जुड़ना। जैसे चिपकाने वाले पदार्थ का जोड़ कभी टूटता नहीं है, फेवीक्विक की तरह, वैसे ही योग का 'योग' कभी टूटता नहीं है। अधिक स्वस्थ, अधिक संतुलित, अधिक ऊर्जावान जीवन जीने की कला का नाम योग है। योग कोई पंथ-परंपरा नहीं है। योग तो जीने की कला है, बेहतर जीवन जीने का रास्ता है। योग मिन्स - 'द वे आफ गुड लाइफ'।

योग के कई मापदंड हैं। मनोयोगपूर्वक कर्म करना भी योग है, मनोयोगपूर्वक अध्ययन करना भी योग है, मनोयोगपूर्वक प्रेम और भक्ति करना भी योग है, मनोयोगपूर्वक सचेतन प्राणायाम और ध्यान करना भी योग है। और तो और, सुबह उठते ही माता-पिता के पाँव छूना भी योग है और किसी मदर टेरेसा की तरह इंसानियत की सेवा करना भी योग है। गीता में योग को इतना व्यापक कर दिया गया है कि आप मनोयोगपूर्वक किए गए किसी भी कार्य को योग कह सकते हैं।

इस तरह योग जीवन है, ऊर्जा है, जीवन को उत्साह और उमंग से भरने की विधि है। जीवन को जीवन बनाए रखने का आधार योग है। हमें योग को, योग की अनिवार्यता को समझना होगा। किसी एक माह के बालक को देखकर आप कह सकते हैं कि वह हाथ-पाँव हिला रहा है, पर वह वास्तव में योग कर रहा है। जो विद्याध्ययन कर रहा है वह ज्ञान-योग को अपना रहा है। जो महिला गृह-कार्य में तन-मन से रत है वह सेवा-योग कर रही है। प्रभु की सजल नयनों से प्रार्थना करना भक्ति-योग है। निष्काम कर्म करना कर्मयोग है। यानी योग है तो जीवन की हर डगर पर सफलता है। बिना योग का जीवन अंधे के द्वारा अंधे को ठेलना है।

योग यानी जागरूकतापूर्वक की जाने वाली क्रिया। इसलिए योग को कठिन न समझें। योग तो शरीर के संचालन जैसा ही सरल है। आप जानते हैं, अगर पाँव की हड्डी टूट जाए तो उसे पट्टा बाँधकर आराम दिलाया जाता है ताकि टूटी हुई हड्डी जुड़ जाए। पर हड्डी जुड़ने के बाद लंबे समय से पड़े शरीर को बिस्तर से बाहर निकलने पर उसका पूरा शरीर निष्क्रिय जैसा हो जाता है। तब व्यायाम के द्वारा उसके शरीर को पुनः हलन-चलन योग्य बनाया जाता है। फिजियोथैरेपी एक प्रकार का योग ही है। योग और व्यायाम से निष्क्रिय पड़ा इंसान भी सक्रिय हो जाता है। योग का कोई भी रूप अपनाया जा सकता है। और तो और, नृत्य करना भी एक योग है। मैं तो कहूँगा नृत्य करना एक संपूर्ण योग है। अगर आपको योग करने के विशिष्ट आसन नहीं आते या प्राणायाम में कैसे साँस ली या छोड़ी जाए यह भी न आता हो तो मैं सलाह दूँगा कि दस मिनट के लिए किसी संगीत का कैसेट चलाएँ और उसकी लय के आधार पर अपने अंग-संचालन शुरू कर दें। मस्ती से थिरकने लग जाएँ। यह दस

मिनट का नृत्य आपके भीतर का सारा प्रमाद दूर कर देगा। शरीर का रासायनिक समन्वय हमारे अनुकूल हो जाएगा। इससे आपको ऊर्जा मिलेगी। एकलयता सधेगी। नृत्य ऐसा करें जैसा चैतन्य महाप्रभु करते थे, मीराबाई करती थी। हमसे हमारा 'मैं' खो जाए और 'वह' साकार हो जाए।

प्रकृति नृत्य कर रही है, फूल नृत्य कर रहे हैं, झरने और हवाएँ नृत्य कर रही हैं। नृत्य तो वृद्धावस्था में भी प्राण फूँक देता है। जब तक हम स्वयं को क्रियाशील रखेंगे, जीवन में क्रियाशीलता रखेंगे तब तक प्लस परिणाम मिलते रहेंगे। योग प्लस (+) है, प्रमाद माइनस है। हैप्पीनेस प्लस है, सॉरो माइनस (-) है। हैप्पीनेस में से सॉरो को माइनस करो। जीवन में से दुःख, रोग, शोक, चिंता, तनाव को घटा दो, माइनस कर दो। हम प्रसन्न, आनन्दभाव, नृत्य, योग, प्राणायाम को अपने जीवन में +++ प्लस करें। प्लस ही नहीं, मल्टीप्लाय करें। $2+2=4$ नहीं, $3 \times 3 = 9$! गुणों को मल्टीप्लाय करें। कल तक जो गुण थे उन्हें और कैसे मल्टीप्लाय करें यह विचार करें। इसलिए जब तक जिओ योगी बन कर जिओ। फिर चाहे कर्मयोगी हों या भक्त योगी, अनासक्त योगी हों या ज्ञानयोगी अथवा ध्यानयोगी, पर जिओ योगी बनकर। श्रेष्ठ जीवन की यही बुनियाद है, ताक़त है।

चार घंटे पद्मासन लगाकर बैठने वाला ही योगी नहीं है, प्रेम से मनोयोग पूर्वक दो घंटे खाना बनाने वाली महिला भी योगी ही है। योग बहुआयामी है। योग में मेरी निष्ठा है। मैं प्रत्येक दिन को योगपूर्वक जीता हूँ। प्रत्येक घंटे को योग की आभा से परिपूर्ण करता हूँ। अपनी हर साँस और पलक झपकने को भी योग से जोड़ने का बोध रखता हूँ। हम सजग रहें कि हम योगी बनकर जिएँ, हमें होश रहे, बोध रहे, हम किसी अज्ञानी की तरह न जिएँ, वरन् प्रभु कृपा से हमें जितना भी बोध प्राप्त है उसके प्रकाश में प्रत्येक कर्म और कार्य करें।

जीवन में कुछ भी अच्छा या बुरा नहीं होता। अज्ञानपूर्वक किया गया कार्य ही बुरा होता है और ज्ञानपूर्वक किया गया कार्य ही अच्छा होता है। क्रोध और भोग, माया और मोह जो सदा ही संतों द्वारा आलोच्य और निंदनीय कहे गए हैं, पूरी तरह निंदनीय नहीं हैं। अगर ये पूरी तरह निंदनीय होते तो प्रकृति इन्हें व्यर्थ में जन्म ही क्यों देती। हर चीज की प्रासंगिकता है, हर चीज की उपयोगिता है। हाँ, इनमें से किसी भी चीज की 'अति' घातक है और आत्मघातक भी। अति हमेशा ख़तरनाक होती है। ज़रूरत है ज्ञानपूर्वक जीने की। अगर आपने क्रोध भी बोधपूर्वक किया तो वह क्रोध नहीं होगा, जीवन का अनुशासन हो सकता है। क्रोध तभी क्रोध होता है जब वह तैश

में आकर अपना आपा खो देता है, अपनी मर्यादा, अपने विवेक, अपने ज्ञान का अतिक्रमण कर बैठता है।

योगी बोधपूर्वक जीता है, और बोधपूर्वक जीने वाला ही क्रोध से, भोग से, लोभ और मोह से धीरे-धीरे मुक्त होता जाता है। हर व्यक्ति की अपनी-अपनी प्रकृति है, लेकिन अगर हम योग का बोध बनाए रखेंगे तो अपनी प्रकृति से ऊपर उठेंगे और परमात्मा की तरफ आगे बढ़ेंगे। गीता कहती है व्यक्ति के अंदर दो ही तत्त्व हैं – एक प्रकृति, दूसरा पुरुष अथवा परमात्मा। प्रकृति अर्थात् माया। केवल बातें करके माया से उपरत नहीं हुआ जा सकता। राम भी नहीं हो पाए, वे भी मानव रूप में नकली हिरण के छलावे में आ गए थे। वे भी माया के मोह में उलझ गए। केवल शास्त्रों को पढ़ लेने से ही माया से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। केवल कहने से प्रकृति के तमोगुण, रजोगुण चले नहीं जाते, बल्कि ज्यों-ज्यों व्यक्ति का योग और बोध बढ़ता है, होश और ज्ञान बढ़ता है त्यों-ज्यों वह प्रकृति से ऊपर उठता है और परमात्मा की ओर उसके कदम बढ़ते हैं।

योग का पहला संबंध स्वास्थ्य से है। शरीर स्वस्थ होगा तभी तो आप अध्यात्म की साधना के लिए तत्पर हो सकते हैं। जिसका शरीर रोगों से घिरा होगा वह अध्यात्म की साधना कैसे करेगा? उसके द्वारा कही जाने वाली बातें केवल अध्यात्म-विलास होंगी, उन बातों से कल्याण नहीं हो पाएगा। इसलिए पहले शरीर को स्वस्थ बनाएँ। जो योग को सीधे मन और आत्मा से जोड़ना चाहते हैं उनसे भी अनुरोध है कि योग को सबसे पहले अपने स्थूल शरीर के साथ जोड़ें और स्थूल शरीर को स्वस्थ, अप्रमत्त, जागरूक, ऊर्जावान, उत्साहपूर्ण बनाने का प्रयत्न करें। किसी को कहा जाए कि ध्यान करो तो वह कैसे करे उसका तो मन ही नहीं टिकता क्योंकि कमर में तो दर्द है। तो पहले कमर का दर्द ठीक किया जाए तब मन लगेगा। पहले ऊँची, बारीक बातों पर न जाएँ। सिलसिलेवार चलें। स्थूल से शुरू करें, तब हल्कीत में परिणाम तक पहुँच सकेंगे। जैसे नर्सरी में दाखिला लेकर फिर क्रमशः ऊँची कक्षाओं की शिक्षा प्राप्त की जाती है। सीधे अगर एम.ए. की क्लास में चले गए तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ने वाला।

इसलिए पहले व्यायाम और प्राणायाम करें, सचेतन प्राणायाम करें। जब ध्यान-साधना करना चाहें तो उसमें भी सर्वप्रथम शरीर को साधें, प्रारम्भिक पन्द्रह मिनट तो काया की अनुपश्यना कर उसे साधें, फिर मन की भी अनुपश्यना करेंगे, मन का योग भी साधेंगे। राजयोग बाद में किया जाएगा, पहले काययोग तो हो जाए।

पहले काययोग सधे, इस हेतु ही तो महावीर ने भी पहले पिंडस्थ ध्यान करने की प्रेरणा दी। बुद्ध भी कायानुपशयना पर जोर देते हैं। पतंजलि भी कहते हैं कि पहले नाभि पर ध्यान धरो। नाभि पर ध्यान धरने से हमें अपने शरीर की स्थिति का ज्ञान हो जाएगा। ध्यान की एक विधि यह भी है कि व्यक्ति साँस के आवागमन से पेट पर जो प्रभाव पड़ता है, व्यक्ति पेट के फैलने और सिकुड़ने पर ध्यान धरे।

मैं भी इस बात पर जोर देता हूँ कि चित्त से साक्षात्कार करने से पहले स्वयं चित्त को शरीर के साथ एकलय कर लो। सीधे चित्त पर सचेतन होना चाहेंगे, तो यह ठहरा 'माया महाठगिनी हम जानी'। यह दो-पाँच पल में ही हमें भरमा देगा और हम कहाँ के कहाँ पहुँच जाएँगे, स्वयं हमें ही इसका बोध नहीं रहेगा। यही वज्रह है पहले शरीर का सचेतन ध्यान हो जाए। योग को साधने का, चित्त को साधने का फार्मूला यह है – एकांत में, शांत वातावरण में बैठो, साँसों की स्पष्ट और सचेतन अनुभूति करने लगे, साँस में प्रवेश करते जाओ, पूरी तरह डूबते जाओ। अगर ऐसा करने पर मन में लयलीनता नहीं बनती है तो साँसों के साथ ओम् के स्मरण का प्रयोग करो; ओ के सुमिरन के साथ लंबी साँस लो और म् के सुमिरन के साथ लम्बी साँस छोड़ो। पहले 20 लम्बी साँस, फिर 20 छोटी, फिर 20 लम्बी। ऐसे न्यूनतम 5 और अधिकतम 9 चक्र पूरे कर लो। चित्त और साँस में सहज ही एकात्मकता सध जाएगी। फिर चाहे आप षट्चक्र पर ध्यान करें, या पंच प्राणकोश पर अथवा शरीर, चित्त की अनुपशयना करें, चित्त में भटकाव नहीं रहेगा। जैसे ही सचेतनता खंडित हो, फिर 20 लम्बी और 20 छोटी साँस का एक चक्र पूरा कर लें।

तो ध्यान से पूर्व, पहले योगासन और प्राणायाम को साधें। बिना प्राणायाम के ध्यान में सचेतनता का सधना आम व्यक्ति के लिए कठिन है। इसलिए पहले शरीर को साध लें। स्वामी रामदेव का यह देश शुक्रगुजार है कि उन्होंने योग को गुफाओं से निकाल कर व्यक्ति के स्वास्थ्य के साथ जोड़ा। आम इंसान का आत्मा, परमात्मा और अध्यात्म से सीधा ताल्लुक नहीं होता। वह तो देखता है कि उसने जो किया उसका उसकी सेहत पर क्या प्रभाव पड़ा; स्वार्थ और रोग से भरी दुनिया में अगर लगता है कि अमुक कार्य करने से हमारा रोग दूर हो जाएगा तो वह पहले उस रास्ते को अपनाएगा। गलत-सही का निर्णय करने की सोच ही नहीं रहती। केवल यही सोच रहती है कि वह ठीक हो जाए। इसलिए कहते हैं कि या तो रोगी ठगावे या भोगी। योग अच्छी विद्या है। भले ही रामदेवजी ने योग सिखाने की भी फीस ली हो, यह उनकी व्यवस्था है, पर उन्होंने योग के महत्त्व को स्थापित अवश्य कर डाला।

आज सभी योगासनों के महत्त्व को समझ रहे हैं। इसका प्रचार-प्रसार विदेशों तक हो गया है। इससे अवश्य ही कुछ-न-कुछ लाभ मिल रहा है। आज कोई मोटापे से पीड़ित है, किसी के सिर में दर्द रहता है, माइग्रेन की शिकायत है, किसी को मधुमेह हो गया है, कोई कमर दर्द से परेशान है, किसी के घुटने दुख रहे हैं। लगभग सभी लोग किसी-न-किसी रोग से ग्रस्त हैं। ऐसी स्थिति में लोगों ने चाहे किसी के भी जरिए किया, योगाभ्यास तो किया। मैं यह नहीं कहता कि योग करने से सभी रोगमुक्त हो गए, पर साइड इफेक्ट तो कुछ नहीं हुआ, लाभ कुछ-न-कुछ जरूर हुआ। हम सभी को प्रतिदिन कम-से-कम बीस से तीस मिनट तक योगाभ्यास अवश्य ही करना चाहिए। अगर कोई आसन या योगक्रिया नहीं आती तो आधा घंटे तेज गति से टहल कर आ जाएँ, यह भी योग का एक प्रकार है।

हमें तो शरीर को एक्टिव करना है। हमें अपनी देह की फिटनेस के लिए योग से दोस्ती कर लेनी चाहिए। सभी सेलिब्रिटीज प्रतिदिन आधा से एक घंटा योग करते हैं तभी तो वे दिन भर ऊर्जावान रहते हैं और अपने कार्य को लक्ष्य तक पहुँचा पाते हैं। कोई भी कलाकार हो, खिलाड़ी हो, उद्यमी हो या अभिनेता-अभिनेत्री हों, सभी ने योग को अपना रखा है। आज कल सफल व्यक्ति ही हर नौजवान का आदर्श होता है लेकिन क्या कभी आप उनकी दिनचर्या देखते हैं? वे सभी प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व जगते हैं और योगासन या टहलने से अपने दिन की शुरुआत करते हैं। स्वस्थ रहने के लिए यह आवश्यक है। दवाओं से परहेज नहीं है, लेकिन तभी लीजिए जब लगे कि अब बिना दवा के ठीक नहीं हुआ जा सकता। अन्यथा शरीर रोगधर्मा तो है ही, दवाधर्मा और हो जाएगा। जीना है तो चार गोली रोज खाओ। हम शरीर की फ़ितरत समझें। शरीर ही रोग पैदा करता है और इसमें ही रोग-प्रतिरोधक क्षमता भी होती है। आप दवा की बजाय योग अपनाएँ। योग हमें ताक़त देता है। योग शक्तिवर्धक टॉनिक है।

आपने क्रान्तिकारी शहीद रामप्रसाद बिस्मिल का नाम सुना होगा। उनके जीवन की कहानी पढ़कर मैं चमत्कृत और आनन्दित हुआ कि कोई व्यक्ति योग के प्रति कितनी सुदृढ़ आस्था रखता है। मुझे पढ़ने को मिला कि 'बिस्मिल' को फाँसी की सजा हो चुकी थी। जिस दिन उन्हें फाँसी लगने वाली थी जेलर उनके पास सूचना लेकर गया कि आज अमुक समय पर आपको फाँसी पर लटकाया जाएगा। जब जेलर बिस्मिल की कोठरी पर पहुँचा तो उसने देखा कि रामप्रसाद बिस्मिल योग-प्राणायाम कर रहे हैं और प्रभु प्रार्थना में लीन हैं, आनन्द-दशा उनके चेहरे पर कायम

है। जेलर आश्चर्यचकित हुआ। उसने कहा – तुम जानते हो आज तुम्हें फाँसी दी जाने वाली है; तुम्हारा शरीर तो मरने ही वाला है ऐसी स्थिति में मैं समझ नहीं पा रहा कि तुम्हें योग करने की क्या ज़रूरत है, किस कारण से तुम यह सब कर रहे हो? रामप्रसाद ने कहा – मुझे पता है आज मैं नश्वर देह का त्याग करने वाला हूँ। इसीलिए दस मिनट अधिक योग कर रहा हूँ ताकि मेरा मनोबल कमजोर न हो। भला जिस योग का मैं जीवन भर निर्वाह करता रहा हूँ उसका मरते समय कैसे त्याग कर दूँ। योग करके मरूँगा। ईश्वर को भी लगना चाहिए कि उसके पास चलता-फिरता स्वस्थ व्यक्ति शहीद होकर आया है। बिस्मिल की बात को उनकी जेल का जेलर भी सेल्यूट मारने से न रोक सका। उसे अहसास हुआ कि मृत्यु को भी ऊर्जा के साथ प्राप्त करने के लिए योग आवश्यक है।

मैं अपनी बात बताता हूँ – दस-पन्द्रह वर्ष पूर्व मुझे कभी कफ रहा करता था, कभी चक्कर आ जाता करते थे, कभी नकसीर चल जाती थी, कभी शरीर में अधिक ऊष्णता बढ़ जाने के कारण खुजली हो जाती थी, लेकिन जब से मैंने योग को शरीर के साथ भी जोड़ा है तब से दवाएँ लेने के अवसर अत्यंत कम आए हैं। जहाँ तक मुझे याद है पिछले पाँच साल में मैंने किसी तरह की दवा का सेवन नहीं किया। जो व्यक्ति प्रतिदिन आधा घंटा योग करेगा उसके शरीर में ऊर्जा का स्तर इतना हो जाता है कि रोग-प्रतिरोधक-क्षमता स्वयमेव बढ़ जाती है। जैसे लोहार चूल्हे में धौंकनी से इतनी हवा भर देता है कि थोड़े से कोयले भी इतनी तीव्रता से जल उठते हैं कि लोहे जैसी कठोर धातु को भी पिघला देते हैं। हम भी लोहार की धौंकनी जैसे हो जाएँ और अपने शरीर को योग व प्राणायाम द्वारा ऊर्जा से भर लें। हमारी देह कितनी भी सुन्न या निष्क्रिय हो गई हो अथवा बुढ़ापा दस्तक दे रहा हो तब भी लोहार की धौंकनी से प्रेरणा लें, प्रतिदिन पन्द्रह मिनट प्राणायाम करें। लाभ ज़रूर होगा। प्राणवायु से हृदय मजबूत होता है, शरीर में रक्त, अस्थि, मज्जा सभी का स्वस्थ निर्माण होता है। योग और प्राणायाम हमें सदाबहार निरोगी रखने में एक वरदान, एक चमत्कार और एक सहयोगी के रूप में मददगार बन सकते हैं।

योग का दूसरा संबंध प्राणों के साथ है। योग प्राणों को स्वस्थ व ऊर्जावान बनाता है, फिर हमारे प्राण चाहे शरीर से, चाहे हृदय से, चाहे नाभि या मस्तिष्क से जुड़े हों। जिस तरह बैटरी को चार्ज करने के लिए इलेक्ट्रिक प्लग में लगाया जाता है उसी तरह अपनी अंदरूनी निष्क्रिय कोशिकाओं को सक्रिय करने के लिए प्राणायाम का उपयोग करना चाहिए। आप देखते हैं साइकिल के ट्यूब में हवा भरी जाती है और वह दो-तीन व्यक्तियों का भार आसानी से वहन कर लेती है। हवा अर्थात्

प्राणवायु! प्राणवायु जीवन की, जगत की प्रत्येक गतिविधि को यहाँ से वहाँ पहुँचाने में मददगार है। जब किसी ट्रक के टायरों में हवा भरकर कई टन माल लादा जा सकता है तो हम अपने शरीर के साथ भी वायु और प्राणवायु का प्रयोग करके अपने रोगी और बूढ़े होते जा रहे शरीर को पुनः दैदीप्यमान, कांतिमान, ऊर्जावान और आभायुक्त क्यों नहीं बना सकते? योग तो हमारे लिए प्राण-शुद्धि का ही एक चरण है।

तीसरा काम जो योग करता है वह है मानसिक शुद्धि। मन के तनाव और चिंताएँ योग के द्वारा 30 से 40 प्रतिशत तक कम की जा सकती हैं। अगर हम योग के साथ उसके अन्य चरण – ध्यान, प्राणायाम, आसन भी जोड़ लेते हैं तो जीवन को शांति और समरसता से भर सकते हैं। योग कोई एक नाम नहीं है, यह एक पूरा चक्र है। सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य से लेकर, ध्यान, आसन, प्राणायाम से जोड़कर जो हमें धीरे-धीरे आगे बढ़ाता है, आत्मविश्वास जगाता है। आत्मविश्वास के संबंध में भाषण तो बहुत दिए जा सकते हैं, उदाहरण भी पेश किए जा सकते हैं कि गैलीलियो ने कम उम्र में ही झूलते हुए लैम्प का आविष्कार कर लिया था, शिवाजी ने केवल चौदह वर्ष की उम्र में किला फतह कर लिया था, कि वाशिंगटन ने उन्नीस वर्ष की उम्र में सेनापति का पद अख्तियार कर लिया था। इन बातों को कहा तो ज़रूर जा सकता है पर इन्हें पाने के लिए जिस आत्मविश्वास की, जिस मनोबल की ज़रूरत होती है वह योग के द्वारा निश्चय ही पाया जा सकता है। जितना अधिक हम योग के संपर्क में रहेंगे जीवन के प्रति हमारी आस्था उतनी ही बढ़ेगी।

योग से मानसिक शुद्धि के साथ-साथ मानसिक शक्ति भी प्राप्त होती है। मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। अगर मन ही पंगु हो गया तो हमें पंगु होने से कौन बचा सकता है। जब तक मन सबल है तभी तक जीवन में विजय है। मन की सबलता से अस्सी वर्ष का डोकरा भी छोकरा है।

योग हमारा संबंध आत्मा और अध्यात्म से, प्रभु के दिव्य प्रेम से जोड़ता है। इस तरह योग हमें स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जाता है। शरीर और स्वास्थ्य से इसका शुभारंभ होता है, लेकिन वही बीज जब फलों से लदा हुआ वृक्ष बन जाता है तब ही उसकी पूर्णता है। जैसे अंकुरित होना बीज का पहला चरण है वैसे ही हमारा स्वस्थ होना पहला चरण है। धीरे-धीरे अंकुरण बढ़ता है, डालियाँ आती हैं, पत्ते निकलते हैं धीरे-धीरे वह बड़ा पेड़ होता है, कभी कोपलें फूटती हैं, कभी फूल आते हैं तब उनसे फल निकलते हैं। अब वह बीज अपनी परिपूर्णता पर पहुँच गया। योग की परिपूर्णता

भी इसी में है कि व्यक्ति स्वास्थ्य से शुरुआत करता है, मानसिक शांति को उपलब्ध किया, दिमाग के तनाव और बोझों से मुक्त हुआ, आत्मा के साथ अपने संबंध जोड़े और शांति-समाधि तथा प्रज्ञा की सर्वोच्च स्थिति को उपलब्ध किया, यही योग की पूर्णता है।

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।

माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आय फल होय।

होगा, सभी कुछ होगा। माली अगर धैर्य रखता है तभी तो बीज को फलों से लदे वृक्ष तक पहुँचाने में सफल होता है। हम भी अपनी आस्था के साथ धैर्य रखें तो पहले चरण में आरोग्य उपलब्ध होगा और आखिरी चरण में अध्यात्म का अमृत बरसेगा। बीज को रोज-ब-रोज खोदने पर वह अंकुरित नहीं हो सकेगा बल्कि सड़कर, सूखकर समाप्त हो जाएगा। प्रारम्भ में एक माह तक योग को जिएँ-स्वास्थ्य तक उसकी सीमा बाँध लें – कि अपनी काया को स्वस्थ करने के लिए योग का उपयोग कर रहा हूँ। उसका लाभ देखते ही अगले चरण में कदम रखें। दस प्रतिशत भी लाभ होने पर आस्थापूर्वक आगे बढ़ चले। तब तन के साथ मन तक भी पहुँच सकेंगे।

हमारे दिमाग में ही मन है, बुद्धि है, चित्त है, अहंकार है, क्रोध-कषाय है। आनंद भी दिमाग में है, प्रेम और शांति भी इसी दिमाग में निवास करते हैं। स्थूल काया को स्वस्थ करने के बाद दिमाग की ओर बढ़ें। दिमाग को ऊर्जावान बनाने के लिए, इसे सजग रखने के लिए, शांतिमय और प्रसन्न बनाने के लिए अगला कदम बढ़ाएँगे। धीरे-धीरे सारे परिणाम आएँगे। बस, पहला कदम उठाने की ज़रूरत है। हर मंज़िल का एक रास्ता होता है और हर मंज़िल को पार करने के लिए कहीं-न-कहीं से शुरुआत करनी होती है। शुरुआत वहीं से करनी चाहिए जहाँ हम आज खड़े हैं।

डॉक्टर आपको रोगमुक्त कर सकता है, पर स्वास्थ्य नहीं दे सकता जबकि योग आपको रोग से ऊपर तो उठाएगा ही, प्रतिरोधक क्षमता भी प्रदान करेगा। योग ऊर्जा भी देता है जिसके कारण रोग कटते हैं और योग से हमारी देह में जो रासायनिक परिवर्तन होते हैं, ऊर्जा का जागरण होता है उससे रोग प्रतिरोधक क्षमता का विकास होता है और रोगों में कमी आती है। योग का उद्देश्य महज रोग काटना नहीं, आरोग्य प्रदान करना है, स्वास्थ्य प्रदान करना है। वही व्यक्ति स्वस्थ हो सकता है जो रोगों से मुक्त होगा।

योग और प्राणायाम हमारे शरीर में ऊर्जा की बैटरी संचालित करते हैं। जिस तरह खिलौनों को चलाने के लिए चाबी भरते हैं या बैटरी डालते हैं, उसी तरह प्राणायाम और योग की चाबी तन को स्वस्थ रूप से चलाती है। इसलिए पहले चरण में ही ध्यान धरने की कोशिश मत करो, चूक हो सकती है, न ही पहले चरण में प्राणायाम करें। पहले चरण में आसन करें – पहले काया को थोड़ा बलवान बना लें, इसे ऊर्जावान और सशक्त कर लें। आसन करते हुए शरीर पर अत्यधिक दबाव न डालें, शरीर थक जाए तो बीच-बीच में दो-पाँच मिनट का आराम कर लें। एक साथ बहुत से योगासन न करें, धीरे-धीरे आदत बनाएँ। अब प्राणायाम करें। चाहे भस्त्रिका, कपालभाति, अनुलोम-विलोम प्राणायाम करें। सभी को धीरे-धीरे अपने शरीर के साथ जोड़ें। मैंने प्राणायाम के कुछ सीधे सरल तरीके इजाद किए हैं, जिन्हें आप साधना-शिविर में आकर सीख सकते हैं।

योग को तन, मन और बुद्धि से जोड़कर, जब इन्हें निरोगी, नियंत्रित, शांत और एकाग्र करने में सफल हो जाएँ तब आत्मा, आत्मचिंतन, अध्यात्म और परमात्मा के प्रति अपने ध्यान को दत्तचित्त करने का प्रयास करें। हम जानते हैं आत्मा तो अदृश्य है वह इतनी जल्दी अनुभव में आने वाली नहीं है। अभी तो प्राणवायु ही पकड़ में नहीं आती, मन ही नियंत्रित नहीं हो रहा, दिमाग भी शांत नहीं हो पाया है तो ऐसा अशांत व्यक्ति आत्मा की अनुभूति की ओर कैसे बढ़ पाएगा। धीरे-धीरे सभी चीजें अपने परिणाम को प्रदान करती हैं।

महर्षि पतंजलि ने योग-विज्ञान देकर हमारे सामने जीवन जीने का आध्यात्मिक तरीका प्रदान किया है। इससे हम स्वस्थ, शांत, ऊर्जावान, बुद्धिमान, आत्मवान और परमात्मप्रिय हो सकते हैं। स्वास्थ्य से समाधि तक का सफर पार करना ही योग है।

आज के लिए इतना ही।

नमस्कार।



योग के प्रेक्टिकल प्रयोग

मेरे प्रिय आत्मन्,

योग विशुद्ध रूप से जीवन जीने का एक तरीका है। यह वह तरीका है जिसे हम 'द वे ऑफ़ गुड लाइफ़' कहेंगे। योग स्वास्थ्य से समाधि तक का एक महान सफ़र है। इससे रक्त-प्रवाह सुचारु रहता है, शरीर के अंदरूनी रासायनिक परिवर्तन सकारात्मक बनते हैं, शरीर की जकड़न, जड़ता, प्रमाद दूर होते हैं, शरीर अधिक स्वस्थ व ऊर्जावान बनता है, पर यदि इसे आध्यात्मिक चेतना के विकास के रूप में लिया जाए तो प्राण-चेतना की शुद्धि, भाव-चेतना की शुद्धि, ज्ञान-चेतना की शुद्धि और विकास में सहायता मिलती है। व्यक्ति जैसी प्रतिभा लेकर जन्म लेता है केवल उसी के सहारे जिया नहीं जा सकता बल्कि उसे पहचान कर विकसित करना होता है। योग भी हमें परिणाम देता नहीं है, वरन् हमें योग से परिणाम प्राप्त करने होते हैं।

दुनिया में कुछ भी ऐसा नहीं है जो स्वयं परिणाम दे, अपितु उसके साथ एकलय होकर हमें उसका परिणाम प्राप्त करना होता है। पुरुषार्थ करने से ही कोई मार्ग हमें परिणाम देगा। अन्यथा कितना ही महान मार्ग क्यों न हो, वृथा है। हमें लगता

है कि गाय हमें दूध देती है, पर नहीं। वह दूध देती नहीं है, हमें बूँद-दर-बूँद उसे निकालना पड़ता है। गाय जो खुद देती है वह कुछ और ही होता है और जो हम प्राप्त करते हैं वह कुछ और होता है।

ऐसा हुआ – एक राजा के समक्ष किसी ने गौ-माता की प्रशंसा की और कहा, आपके राज्य में सब कुछ है, धन है, धान्य है, पर गाय नहीं है। आप गाय मँगवाइए। वह अमृत जैसा दूध देती है, जिसे पीने से पौष्टिकता बढ़ती है, बल-वृद्धि होती है। इसलिए आप बहुत-सी गायें मँगवा लीजिए। राजा ने अभी तक गायें देखी नहीं थीं, सो परदेश से विशेष ऑर्डर देकर गायें मँगवाईं। राजमहल से ही अनुचरों को आदेश दिया कि गाय जो कुछ देती है, ले आओ। स्वर्ण-थाल लेकर अनुचर गायों के पास पहुँचे और थोड़ी देर बाद वापस आकर स्वर्ण-थाल देते हुए राजा से बोले – ‘राजन्! गाय ने यह दिया है।’ राजा ने नाक के पास ले जाकर सूँघा तो नाक बदबू से भर गई। बोला – छिः छिः गाय यह देती है! सोचा – कहीं मेरे अनुचरों ने गलती न कर दी हो, इसलिए दुबारा उन्हें गायों के पास भेजा। थोड़ी देर बाद अनुचर वापस आकर बोले – राजन्! गाय ने इस बार यह दिया। राजा ने उसमें से थोड़ा उठाया और मुँह में रखा, लेकिन थूक दिया और कहा – बड़ा गंदा और दुर्गन्धित है।

अब उस व्यक्ति को बुलाया गया जिसने गायों को लाने की सलाह दी थी। अब तो इसे दंड दिया जाना चाहिए क्योंकि उसने तो कहा था कि गाय अमृत जैसा दूध देती है, जबकि गाय ने तो यह मल-मूत्र-गोबर दिया है। गाय ने जो दिया है वह तो दुर्गन्ध से भरा हुआ है। तब व्यापारी ने कहा – राजन्! जीवन में किसी भी चीज को प्राप्त करने का सही तरीका आना चाहिए। अगर लेने का तरीका नहीं आता तो गाय से भी हमें दुर्गन्धित चीजें ही मिलेंगी और लेने का तरीका आ जाए तो उससे हम अमृत प्राप्त कर सकते हैं। तब व्यापारी गाय के पास गया और राजा के पीने के लिए धार-ब-धार दूध निकालता है, गरम करके थोड़ी मिश्री मिलाता है और पीने के लिए राजा को देता है। व्यापारी कहता है – ‘राजन्! गाय यह देती है, चखिए। राजा चखता है और कहता है – वाकई, यह जो तूने पिलाया है, अमृत के समान है।

योग से भी हम जीवन में किस तरह प्लस परिणाम उपलब्ध कर सकते हैं इसका तरीका आना चाहिए क्योंकि योग भी जीवन के लिए अमृत है। जीवन के पास अगर केवल जीवन है, अमृत नहीं तो ऐसा जीवन केवल चलता-फिरता शव हो जाएगा। लेकिन यदि जीवन के पास योग नाम का अमृत है तो जीवन न केवल भौतिक रूप में सुखी होगा, वरन् आध्यात्मिक चेतना का मालिक बनाते हुए हमें प्रभु

के दिव्य पथ का अनुगामी बना देगा, दिव्य ज्ञान का स्वामी बना देगा, आत्मा के रूप में जीवन का शाश्वत प्रकाश सौंप देगा।

योग तो जीवन में जन्म का द्वार खोलता है। जैसे हिमालय की संजीवनी बूटी से राम-लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हो गई, वैसे ही योग से अनगिनत लोगों की बीमारियाँ कट गईं। लोगों ने फिर से जीवन की नई ऊर्जा, नई उमंग, नई चेतना प्राप्त की। आप चाहे जिस उम्र के हों, चाहे जिस वर्ग के हों, चाहे जिस परिस्थिति में हों, आप योग अपनाइए, आपको शर्तिया फ़ायदा होगा। दुनिया में योग ही एक ऐसी औषधि है जिसका आज तक कभी कोई नकारात्मक परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। योग हमारे लिए भोजन जितना ही ज़रूरी है। आहार, विहार और निहार – व्यक्ति के स्वस्थ रहने के तीन आयाम हैं। आहार अर्थात् सात्त्विक संतुलित भोजन। विहार अर्थात् प्रतिदिन टहलना या व्यायाम। निहार अर्थात् निवृत्त होना। आहार, विहार और निहार ये तीनों यदि समुचित होते हैं तो व्यक्ति खुद अपना चिकित्सक होता है। उसे किसी डॉक्टर की ज़रूरत नहीं रहती।

आज पूरे विश्व में योग के प्रति अद्भुत उत्सुकता है। मुझे जानने और सुनने को मिला कि चीन, जापान, वियतनाम में जो योग-शिविर लग रहे हैं उसमें शामिल होने वाले शिविरार्थी को एक-एक लाख रुपए देने होंगे। उसमें भी इतने लोग शामिल हो गए हैं कि आयोजकों को प्रवेश बन्द करना पड़ रहा है और अगले सत्र में शामिल होने का आश्वासन दिया जा रहा है। व्यायाम कैसे किया जाए, साँस कैसे ली जाए, ध्यान कैसे किया जाए इसे सीखने के लिए एक लाख रुपए; और लोग इतना पैसा देने को तैयार हैं बशर्ते उन्हें जीवन जीने का ऊर्जापूर्ण तरीका मिल जाए।

योग में हम तीन चीजों को शामिल करेंगे – आसन, प्राणायाम और ध्यान। इन तीनों का अभ्यास करने के लिए प्रतिदिन 1 घंटे की आहुति आवश्यक है। 20 मिनट योगासन के लिए, 20 मिनट प्राणायाम के लिए और 20 मिनट ध्यान के लिए समर्पित किए जाएँ। यह 1 घंटे का योगाभ्यास आपके आने वाले 24 घंटों को स्वस्थ, सक्रिय और ऊर्जावान बनाएगा। जो लोग दिनभर कुर्सी या सोफे पर बैठे रहते हैं, वे यदि योग नहीं करेंगे तो उम्र से पहले ही बूढ़े हो जाएँगे। पेटू या मोटू आपको जहाँ-तहाँ मिल जाएँगे, घुटने, कमर, पीठ, गर्दन के दर्द के रोगी इतने बढ़ गए हैं कि ज़मीन पर पालथी लगाकर बैठना अब किसी तपस्या से कम नहीं है। आखिर इन सबके पीछे रीजन क्या है? रीजन एक ही है – लोग भोजन तो भरपूर केलौरी का करते हैं, पर सुबह न तो टहलते हैं, न व्यायाम करते हैं, एक गिलास पानी भी पीना हो तो हाजरिया चाहिए। उठकर वह भी नहीं पिया जाता है। अब शरीर से कुछ मेहनत करोगे नहीं

और खाना-पीना दिनरात जारी रखोगे तो पेटू या मोटू नहीं होंगे तो क्या होंगे? 1 घंटा नियमित योग कर लीजिए और वो भी पूरे दिल से। फिर आप भले ही ज्यादा केलौरी का भोजन करें। योग आपके तन-मन को फिल्टर कर देगा।

योग करने के लिए खुला वातावरण हो, कमरे में करें तो दरवाजे खुले रखें ताकि शुद्ध हवा और प्रकाश हम तक पहुँच सके और उसका भी हमें लाभ मिले। दूसरी बात : योगासन प्रसन्न मनोदशा के साथ किए जाएँ। अगर मन प्रफुल्लित है तो योग हमें अधिक लाभ दे सकेगा। बेमन से, निराशा से किया गया योग समुचित परिणाम न दे सकेगा। व्यक्ति की मनोदशा उसके प्रत्येक कार्य में सहायक होती है। किसी भी कार्य को करने से पहले बाहर से, भीतर से मुस्कुराएँ। यह परम-पिता परमेश्वर को समर्पित सर्वश्रेष्ठ पुष्प है। अब तीन बार 'ॐ' कार ध्वनि, यह ब्रह्माण्ड में व्याप्त परम चेतना को अपनी ओर आमंत्रित करने का तरीका है। इसके बाद तीन बार नवकार-मंत्र, तीन बार गायत्री मंत्र और तीन बार शांति पाठ कर लें। नवकार मंत्र के द्वारा आप संसार की सर्वश्रेष्ठ शक्तियों को नमन समर्पित करते हैं और कामना करते हैं कि समस्त जीवों का मंगल हो और हमारे पापों का नाश हो। गायत्री मंत्र के द्वारा हम भावना करते हैं कि हे भगवान, हमारी बुद्धि आपकी ओर बढ़ती रहे अर्थात् हमारे जीवन के अंधकार में भी आपका प्रकाश सदा व्याप्त रहे। शांति-पाठ के द्वारा हम कामना करते हैं कि संसार में सभी सुखी, निरोगी हों। हम सब एक दूसरे का भला चाहें। हमारे द्वारा किसी को किंचित भी कष्ट न हो।

अब योगासन शुरू करें। वे योगासन जो सीधे-सरल हैं, जिन्हें लगभग हर उम्र के व्यक्ति कर सकते हैं।

योगासन

खड़े रहकर किए जाने वाले आसन

ताड़ासन – इससे शरीर की जड़ता और प्रमाद दूर होगा।

अर्धकटिचक्र आसन – इससे पसलियाँ मजबूत होती हैं, जाँघ और हाथों का तनाव दूर होता है।

पाद-हस्त आसन – इससे पेट के रोग, उदर-विकार और मोटापा दूर होता है।

त्रिकोण आसन – इससे जंघा, बैठक की मांसपेशियाँ और आँतों की मजबूती प्राप्त होती है।

कदम ताल – इससे संपूर्ण शरीर का रक्त-प्रवाह दुरुस्त होता है। शरीर में

ऊर्जा का संचार होता है।

बैठकर किए जाने वाले आसन

शशांक आसन – इससे पाचन-क्षमता बढ़ती है और मेरुदण्ड लचीला होता है।

योग-मुद्रा – यह कमर दर्द ठीक करता है। नाभि खिसकी हुई तो वह भी यथास्थान आ जाती है। शीलव्रत-ब्रह्मचर्य साधना में भी उपयोगी। ध्यान की भूमिका बनाने के लिए श्रेष्ठ आसन।

तितली आसन – शरीर के रिलेक्सेशन में यह उपयोगी आसन है। जंघा और पाँवों के मसल्स मजबूत होते हैं।

पीठ के बल लेटकर किए जाने वाले आसन

पाद-उत्तान आसन – घुटनों के दर्द, पाँव की अंगुलियों में सनसनाहट दूर करने में उपयोगी।

पवन मुक्तासन – यह आन्तरिक नाड़ियों को स्वस्थ करता है, अपान वायु निकल जाती है।

राजा-रानी आसन (नटराज आसन) – कमर व पीठ दर्द को दूर करने के लिए खास उपयोगी आसन।

पेट के बल लेटकर किए जाने वाले आसन

नौकासन – इससे सर्वाङ्गल पेन, पीठ-दर्द ठीक होगा, नाभि भी ठीक होगी।

धनुरासन – इससे मेरुदण्ड मजबूत होता है। शरीर में लचीलापन आता है।

सूर्य नमस्कार भी उपयोगी है। सूर्य नमस्कार की बारह मुद्राएँ करना एक तरह से सभी आसनों का योग है।

इस तरह 20 मिनट योग के लिए जरूर समर्पित करें। योगासनों के पश्चात् शवासन या आनंदासन अवश्य करें।

प्राणायाम

उदर-शुद्धि प्राणायाम – कपालभाति : यह प्रयोग 2 मिनट करें। इससे उदर संबंधी सारे रोग दूर होते हैं।

दिमाग शुद्धि प्राणायाम – भस्त्रिका : इसकी 20 आवृत्ति करें।

नाड़ी शुद्धि प्राणायाम – अनुलोम-विलोम : इसकी 10 आवृत्ति करें।

शक्ति वर्धक प्राणायाम सुदर्शन-क्रिया/क्रियायोग

प्राणायाम और योगासनों के माध्यम से हम दुर्बल तन को सबल और चेहरे को कांतिवान बना सकते हैं। निष्क्रिय कोशिकाएँ जाग्रत और ऊर्जस्वित हो जाती हैं। क्रिया-योग ध्यान करने से पूर्व का वह प्राणायाम है जो हमारे शरीर और श्वास में, मन और श्वास में एकलयता स्थापित कर देता है। ध्यान में जो चित्त दो पल भी नहीं टिक पाता, क्रिया-योग करने से उसे एकाग्र होने में, एक ही बिंदु पर दत्तचित्त होने में बहुत मदद मिलती है। इसमें हम तीन बार 'ॐ' का उद्घोष करें। शंखनाद की तरह। फिर तीन बार दिमाग में ओंकार का अंतरनाद करें। यानी दिमाग को ओंकार-ध्वनि से तरंगायित करें, वाइब्रेट करें। ध्वनि के द्वारा हम बाहरी वातावरण को निर्मल करते हैं और दिमाग में वाइब्रेट करके मंत्र द्वारा दिमाग की कोशिकाओं को जाग्रत करने का प्रयत्न करते हैं। अब नासिका प्रदेश पर सचेतन होकर प्राणायाम करें। 20-20 के क्रम से। अर्थात् पहले 20 लम्बी गहरी साँस लें और लम्बी गहरी साँस छोड़ें। इसके साथ आप 'ओऽम्' और 'सोहम्' को भी जोड़ सकते हैं। 'सो' अर्थात् साँस लेना 'हम्' अर्थात् साँस छोड़ना। अब 20 मध्यम, सहज साँस लें और छोड़ें। इसमें भी 'सोहम्' का प्रयोग कर सकते हैं। एक चक्र पूर्ण।

दूसरे चक्र में भी 20 लम्बी गहरी साँस लें व छोड़ें। 'सोहम्' का प्रयोग चाहें तो करें, आवश्यक नहीं है। 20 सहज, मध्यम साँस लें।

तीसरे चरण में भी ऐसे ही दोहराएँ। प्रत्येक साँस की अनुभूति करते हुए साँस लें व छोड़ें।

अगले दो चक्र में हम 20 लम्बी गहरी साँस लेंगे और छोड़ेंगे। लेकिन अगली 20 साँस तीव्र गति से लेंगे व छोड़ेंगे। अब साँस में लय के साथ ऊर्जा भरेंगे। साँस को तीव्रता व गहराई देकर शरीर के हर अणु को एक्टिव करते हैं। दो चक्र इसके दोहराएंगे।

एक चक्र में 20 लम्बी गहरी साँस लेना व छोड़ना, 20 साँस सहज मध्यमगति की लेना व छोड़ना अर्थात् गहरी साँस लेना व छोड़ना प्राणायाम है और सहज श्वास लेना-छोड़ना श्वास का रिलेक्सेशन है। पहले प्रयास फिर विश्राम।

अब शांत स्वर में 'ओऽम्' का या 'सोहम्' का उच्चारण करें। शरीर को ढीला

छोड़ दें। शरीर, मन, प्राण सभी रिलेक्स। पाँच मिनट तक पूर्ण विश्राम दशा में आ जाएँ। यह है प्राणायाम का क्रिया-योग जो लगभग दस-बारह मिनट का है। यह शरीर की समस्त प्राण-कोशिकाओं और उसकी प्राण ऊर्जा को सक्रिय करने में जबर्दस्त सहायक है। आप क्रियायोग के इन पाँच चक्रों को नौ चक्रों तक भी कर सकते हैं।

प्राणायाम से हम प्राणवायु के द्वारा शरीर की प्राण-चेतना को चार्ज करते हैं। पूरे मन से प्राणायाम करके हमें उसके परिणाम प्राप्त करने होते हैं। मन लगाकर प्राणायाम करने पर हमारे अंदर ऊर्जा का जागरण, ऊर्जा का विस्फोट हो सकता है। इससे हमारे भौतिक व आध्यात्मिक दोनों शरीरों को लाभ होगा। कुंडलिनी शक्ति एवं षट्चक्रों के जागरण में भी मदद मिलती है।

ध्यान

योगासन व प्राणायाम के बाद हम स्वयं को मनोयोगपूर्वक ध्यान के लिए समर्पित करेंगे। ध्यान का अर्थ है दिमाग को शांतिमय बनाना, मन को शांति और निर्मल स्थिति में विलीन करना। ध्यान के लिए हम स्वयं को सजग सचेतन करें। क्रियायोग करने से प्राणायाम और प्रत्याहार तो सध गए हैं। अब हम धारणा कर रहे हैं। संकल्प कर रहे हैं कि अब मैं स्वयं को ध्यान के लिए तत्पर कर रहा हूँ। हाथ की अंगुलियों में अंगुली फँसा दें और उन्हें गोद में रख लें। शरीर और दिमाग को पूरी तरह ढीला रखें। अपनी जागरूकता को, अपनी प्रज्ञा को श्वास-धारा पर केन्द्रित करें। हर श्वास में प्रवेश करते जाएँ, हर श्वास में डूबते जाएँ और अपनी सचेतनता नाभि-प्रदेश पर केन्द्रित करें। नाभि-प्रदेश पर ध्यान धरने से व्यक्ति का संपूर्ण तंत्रिका-तंत्र स्वस्थ होता है। एकाग्रता बनती है।

ध्यान का अर्थ है किसी एक बिंदु पर स्वयं को सजग करना। एक ही तत्त्व पर अपनी लय बनाना या लयलीन कर लेना। अपनी जागरूकता को, अपनी सचेतना को वहाँ पर केन्द्रित कर लेना। ध्यान है मन को लगाना। हम अपने मन को, अपनी बुद्धि को, जागरूकता को, बोध-दशा को, सचेतनता को, मानसिक शक्ति और मानसिक चेतना को कहाँ लगाएँ? अपने दिमाग को हम कहाँ लगाएँ? बुद्धि, सचेतनता, जागरूकता, बोध आदि सभी मन से जुड़े हुए हैं तब फिर हम इस मन को कहाँ लगाएँ? ध्यान में हम अपने मन को ऐसे ही भीतर उतारते हैं जैसे कुएं में बाल्टी। इसलिए मन को नाभि के भीतरी और बाहरी प्रदेश पर कायम करने का प्रयत्न करें।

पहले चरण में तो ध्यान भटकता हुआ प्रतीत होता है, पर क्या अपने बचपन में

आपने लट्ठू घुमाया है?

लट्ठू के ऊपर डोरी (पतली रस्सी) लपेटते हैं फिर उसे ज़मीन पर फेंकते हैं। कुछ क्षण तो वह इधर-उधर डोलता है फिर धीरे से एक पॉइंट पर केन्द्रित होकर घूमता रहता है। मेरे जाने तो लट्ठू का खेलना भी ध्यान है। जो कुछ देर तो इधर-उधर दौड़ता है फिर एक बिंदु पर आकर केन्द्रित हो जाता है। हम अपने ध्यान को लगभग पाँच मिनट नाभि-प्रदेश पर केन्द्रित करें। कुछ सुनना, सोचना या विचार नहीं करना है बल्कि निर्विचार होकर अपनी एकाग्रता को नाभि प्रदेश पर कायम करना है। इससे हमारे शरीर की प्राणचेतना स्वस्थ होगी, तंत्रिका-तंत्र स्वस्थ होगा और एक बिंदु पर एकाग्र होने में सफलता मिलेगी। जब लगे कि मन एकाग्र हो गया है तब अपने ध्यान को हृदय पर कायम करें। अपनी जागरूकता, सजगता, सचेतनता, मानसिक शक्ति, बोध-दशा को अपनी छाती के मध्य क्षेत्र में स्थापित करें - इस भाव और धारणा के साथ कि मैं अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश कर रहा हूँ, अन्तरात्मा से मिल रहा हूँ, अपने हृदय में अपने आत्म-प्रदेशों का संवेदन कर रहा हूँ। यहाँ भी कम-से-कम पाँच मिनट तक अपनी अन्तरात्मा का ध्यान धरें। हृदय पर ध्यान करने से हमारी भाव-चेतना का विकास होता है। हमारे भाव शुद्ध होंगे, भावनाएँ निर्मल और सकारात्मक होंगी। हम अपनी आत्मा के करीब होंगे।

दिमाग से व्यक्ति विचार करता है और हृदय में भावना रखता है। भावना का संबंध ही दिल से है। हृदय पर ध्यान करते हुए एक ही भावना रखें कि मैं अपनी अन्तर्-आत्मा का ध्यान कर रहा हूँ, अपने-आप से मिल रहा हूँ। पाँच से दस मिनट तक हृदय-क्षेत्र में गहराई बनाते रहें। इसके बाद पाँच से दस मिनट के लिए अपने दिमाग में प्रवेश करें और अपने ललाट प्रदेश पर, ज्योति बिंदु पर, आज्ञा-चक्र पर स्वयं की सचेतना तथा बोध-दशा में गहराई बनाएँ। आज्ञा-चक्र पर ध्यान करने से व्यक्ति का सिद्धों की चेतना से सम्पर्क होता है। ललाट प्रदेश पर ध्यान करने का आध्यात्मिक लाभ यह है कि हम प्रभु के दिव्य स्वरूप से जुड़ेंगे, सिद्ध चेतना के साथ सम्पर्क जोड़ने में सफल होंगे और भौतिक लाभ के रूप में ज्ञान-चेतना विकसित होगी। हमारे भीतर सम्यक् ज्ञान का उदय होगा, श्रद्धापूर्ण प्रज्ञा का जन्म होगा।

पन्द्रह मिनट के ध्यान से हम अपनी काया से, देहभाव से, हर भाव से मुक्त हो जाएँ और पाँच मिनट तक अपने भीतर सजग, बोध-दशा बनाएँ। इस देह के प्रति जागरूक होकर हम अपने अस्तित्व में लीन हों। अब केवल बोध-दशा है, साक्षी-दशा है। अब मन शांत है, कहीं कोई भटकाव नहीं है। जिस एक बिंदु पर हमने

पुरुषार्थ पूर्वक ध्यान केन्द्रित किया था अब वह भी करने की जरूरत नहीं है क्योंकि अब हम केन्द्रित हो चुके हैं। अब पाँच से दस मिनट, चाहे जितने समय हमारे योग की जो प्रगाढ़ता बनी है उस समाधि-दशा में अंतरलीन हों। अब हम किसी बिंदु पर केन्द्रित नहीं हो रहे हैं, बल्कि शांत समाधि की दशा में उतर रहे हैं, स्थित हो रहे हैं। जब लगे कि हमारा चित्त अपनी सहज प्रकृति में आ गया है तब जानना कि आपकी एक बैठक पूर्ण हो गई है। आध्यात्मिक चेतना और अतीन्द्रिय-शक्ति को प्राप्त करने के लिए हमें अधिक-से-अधिक ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

यह जो एक घंटा हमने योग को समर्पित किया इसने हमारे तन, मन, प्राण, बुद्धि एवं आध्यात्मिक चेतना सभी को सभी प्रकार से स्वस्थ किया। अब हम स्वस्थ, समर्थ और ऊर्जावान बन चुके हैं। योग तो जीवन जीने का बेहतर तरीका है। किसी भी चीज को अपनाने के लिए एक विधि से, एक मेथड से तो गुजरना ही होगा। कोई-न-कोई ढंग तो अपनाना ही होगा। जब हम उस विधि के अभ्यस्त हो जाएँगे तो स्वतः ही सब सरलता से कर पाएँगे। जैसे तबला सीखने के लिए अंगुलियाँ कैसे चलाई जाएँ, आगे संगत कैसे दी जाए, ताल कैसे मिलाई जाए, यह सब जानना होता है। वैसे ही ध्यान की विधि सीखनी होती है। एक बार ज्ञान हो जाने पर स्वयं ही अंगुलियाँ चलने लगती हैं, तब हमें किसी सहायक या मास्टर की जरूरत नहीं होती। ध्यान और प्राणायाम में तो साँस ही हमारा गुरु है, साँस ही हमारा मास्टर है, साँस ही साधना की सीढ़ी है।

एक बार ढंग से योग, प्राणायाम और ध्यान किसी गुरु के सान्निध्य में सीख लें फिर तो ये हमारे जीवन के अभिन्न अंग हो जाएँगे। जैसे सूर्य का प्रकाश सूर्य के साथ, मनुष्य की छाया मनुष्य के साथ, फूल की खुशबू फूल के साथ रहती है वैसे ही योग हमारी हर गतिविधि के साथ संलग्न हो जाएगा। कहते हैं –

हंसिबो खेलिबो धरिबो ध्यानम्।

जब हंसते-खेलते भी ध्यान धर लोगे तब योग का परिणाम पूर्णता से प्रकट होगा। व्यक्ति के हर कार्य-कलाप और क्रिया से ध्यान की आभा प्रकट होनी चाहिए। जो मन को दुरुस्त करे वह ध्यान, जो प्राणों को ठीक करे वह प्राणायाम और जो काया को स्वस्थ करे उसका नाम है योग। योग यानी जोड़। जो जोड़े उसका नाम योग। जो हमें हमारे प्राणों से, हमारी आत्मा से जोड़े उसका नाम है योग। योग स्वास्थ्य, शांति, प्रज्ञा और मुक्ति का दाता है।

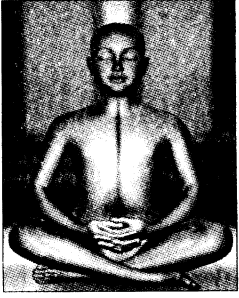
योग – युज्यते इति योगः – जो हमें जोड़ता है वह योग। जो हमें जीवन के

साथ, जीवन के अमृत के साथ जोड़े उसका नाम है योग। अगर आपको अवसाद है तो मैं कहूँगा एक मिनट का हास्य-योग कर लो। हँसने से देह की, दिमाग की सारी कोशिकाएँ एक्टिव हो जाती हैं और टेंशन छू-मंतर। जीवन इस तरह जिएँ कि जीवन का हर चरण ही योग का चरण बन जाए। सीमित भोजन भी योग है। सादा रहन-सहन भी योग है। कपड़ों पर अंकुश लगाना भी योग है।

सहज जीवन जीने का प्रयास करें। सादगी से बढ़कर शृंगार क्या? प्रतिदिन स्नान करें। साबुन का अधिक प्रयोग न करें। हर समय प्रसन्न और मुस्कुराने की आदत डालें। जल्दी सोने की कोशिश करें। सोने के पूर्व कोई अच्छी-सी पुस्तक पढ़ें, प्रभु का ध्यान करें। इस तरह योग के साथ ये कुछ व्यावहारिक जागरूकताएँ भी रखने का प्रयत्न करें।

कुल मिलाकर, हम गृहस्थी में भी एक योगी का जीवन जीते हुए स्वस्थ, प्रसन्न और मधुर जीवन के मालिक बनें, आध्यात्मिक जीवन के स्वामी बनें।

प्रेमपूर्ण नमस्कार।



योग से होगा सतोगुण का विकास

मेरे प्रिय आत्मन्,

आधुनिक समय में मनुष्य बाहरी और भौतिक रूप से बहुत समृद्ध हुआ है लेकिन आन्तरिक रूप से उसे उतनी ही अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। मानसिक रूप से व्यक्ति कम या अधिक विक्षिप्त, अधीर और क्रोधित हुआ है। प्राचीन काल में पिता के वचन को रखने के लिए पुत्र द्वारा चौदह वर्ष का वनवास स्वीकार कर लिया जाता था, लेकिन आज पिता की किसी एक बात को मानने का जज़्बा नहीं रहा है। छोटी-छोटी बातों के लिए पुत्र पिता से बगावत करने को तैयार हो जाता है, बहू सास से अलग रहना पसंद करती है। पति और पत्नी के बीच पलक झपकते ही तलाक की नौबत आ जाती है। भले ही लोगों के हाथ में मोबाइल हो, घर में सुख-सुविधाओं के सारे साधन मौजूद हों, ग्राहकों के साथ मुस्कुराने का प्रयास हो लेकिन घरेलू रूप में वही इन्सान अपनी पत्नी, माता-पिता और बच्चों के साथ प्रेमभरा व्यवहार कर पाने में असफल हो रहा है।

इंसान हाथ में टी.वी. का रिमोट रखकर झटपट चैनल बदलता रहता है, स्थिर होकर एक ही चैनल को नहीं देख पाता। लोगों के भीतर स्थिरता और एकाग्रता नहीं

है। उन्हें क्या करना है और क्या नहीं, वे नहीं जानते। यह ठीक है कि हर इंसान की, हर युग की अपनी कमियाँ होती हैं लेकिन इन कमियों और कमजोरियों को दुरुस्त करने के लिए हमें एक ऐसे सीधे और सरल मार्ग की जरूरत है जो इंसान को भीतर से स्वस्थ, प्रसन्न, एकाग्र, शांतिमय और आनन्दपूर्ण बनाए।

योग ऐसा ही मार्ग है। योग व्यक्ति के विक्षिप्त चित्त को संक्षिप्त करता है। भटकते मन को एकाग्र करता है। व्यर्थ के विचारों में फँसा रहने वाला इंसान सार्थक और सकारात्मक विचारों की ओर बढ़ने लगता है। योग के द्वारा हमारी विचार-शक्ति तो प्रबल होती है, लेकिन विचारों की उठापटक शांत हो जाती है। विकल्पों की उधेड़बुन मिट जाती है, पर संकल्प और संकल्पों की शक्ति चौगुनी हो जाती है। क्योंकि योग का प्रारम्भ ही ऐसे होता है कि व्यक्ति किसी एक बिंदु पर अपनी मानसिक शक्ति को एकाग्र करने का प्रयास करता है। भटकते चित्त पर अंकुश लगाना ही योग है।

योग विशुद्ध रूप से स्वयं को स्वयं से जोड़ने की कला है। योग हमें सिखाता है कि संसार में हमें कमल की पंखुड़ियों की तरह निस्पृह और निर्लिप्त होकर जीना चाहिए और अपने वर्तमान जीवन के साथ मैत्री और प्रेमपूर्ण संबंध स्थापित करते हुए उसे ऊर्जावान, उत्साहभरा, आत्मविश्वास से परिपूर्ण जीवन जीना चाहिए। आज हम देखते हैं कि विद्यार्थी विद्यार्जन के प्रति बहुत गम्भीर हुआ है लेकिन उसने जो लक्ष्य बनाया है, उस लक्ष्य को हासिल न कर पाया तो वह निराश, हताश, उदास हो जाता है। सफलता तो मिलती है लेकिन सामने आई असफलता का सामना करने की ताकत खत्म हो चुकी है। प्राप्त हुई सफलता का आनंद नहीं ले पाता और असफलता से उबरने का साहस नहीं है। जबकि हम जानते हैं सफलता और असफलता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहाँ सफलता का इतिहास लिखा होता है वहाँ विफलता की कहानी भी लिखी होती है। चलते हुए कभी न कभी तो ठोकर लगती है। माँ के गर्भ से तो हम केवल पैदा होते हैं शेष जीवन तो चलते-फिरते, गिरते-पड़ते, उठते-ठोकर खाते ही हमारा निर्माण होता है। कोई भी पत्थर शुरू से गोल नहीं होता, लेकिन लुढ़कते-गिरते पानी की धाराओं का सामना करते हुए कभी वही पत्थर शिवलिंग बन जाता है।

विफलताएँ तो हर किसी को मिलती हैं लेकिन उनका सामना कैसे करें? हमारे पास यह शक्ति अवश्य होनी चाहिए जिससे हम असफलता का सामना कर सकें। पर प्रश्न है कैसे? इसका उत्तर है योग! योग हमें वह शक्ति देता है जो धैर्य प्रदान करता है, सफलता और असफलता के मध्य चित्त का संतुलन बनाकर रखता है।

सुख-दुःख आते हैं, चले जाते हैं। न सफलताएँ शाश्वत रहती हैं और न विफलताएँ हमेशा बनी रहती हैं। जिंदगी तो गोल पहिए की तरह है जो कभी ऊपर और नीचे होता रहता है। परिस्थितियाँ कभी एक जैसी नहीं रहतीं, लेकिन हम जो इन परिस्थितियों से गुजरते हैं सदा वही-के-वही रहते हैं।

एक दफा महान भिक्षु बोधिधर्म अपनी धर्म-यात्रा, शांति-यात्रा के दौरान चीन गए। वहाँ चीन के सम्राट ने अपनी समस्या रखते हुए कहा – भंते, मैं क्रोध से, लोभ से परेशान हूँ, मैं अशांत रहता हूँ, कृपया आप इसका कुछ समाधान करें। बोधिधर्म मुस्कराते हुए बोले – सम्राट, स्वयं को देखकर बताओ कि क्या इस समय भी तुम्हें क्रोध आ रहा है? एक पल सोचकर सम्राट ने कहा – नहीं भंते! इस समय तो मुझे किसी भी प्रकार का क्रोध नहीं आ रहा है। तब बोधिधर्म ने कहा – सोचो, और मुझे बताओ कि इस समय तुम हो या नहीं? सम्राट चौंका और बोला – भंते, मैं तो हूँ।

तब याद करके बताओ जब किसी दिन, किसी क्षण तुम्हें क्रोध आया था तब तुम क्रोध के साथ थे या नहीं थे – बोधि धर्म ने कहा।

कैसी बातें करते हैं भंते! मैं तो कल भी था और आज भी हूँ। जब क्रोध आया था तब भी था और आज क्रोध नहीं है तब भी मैं तो रहता ही हूँ – सम्राट ने बताया।

बोधिधर्म ने कहा – वत्स, जो कभी आता है और चला जाता है वह तुम्हारा स्वभाव नहीं हो सकता, वह तुम नहीं हो सकते और जो किसी के आने और न आने के बाद भी सदा शाश्वत और सतत बना रहता है वही तुम हो। जो आता है और चला जाता है, तुम वह बाहर की तरंग नहीं हो। तुम तो तब भी थे जब क्रोध था और तब भी हो जब क्रोध नहीं है। इसलिए जो सतत है, शाश्वत है उसकी फ़िक्र करो। आने-जाने वाली तरंगों को छोड़ दो!

यही योग का मर्म और रहस्य है कि व्यक्ति ने अपने जीवन से यह सीख लिया कि वह सागर की लहर नहीं है जो कभी आती है और पलक झपकते ही चली जाती है। क्रोध उठता है, चला जाता है, लोभ पल में आता है, पल में विलीन हो जाता है, घमंड थोड़ी देर टिकता है- जो आता है और चला जाता है वह बाहर की तरंग होती है। इस आवागमन के बीच में भी जो बना रहता है वह तुम हो। योग हमें यही समझ और बोध प्रदान करता है।

योग का अर्थ है अपने-आप से जुड़ना; क्रोध से नहीं, जो आता-जाता रहता है उससे नहीं। आये या जाए इसके उपरान्त भी जो तत्त्व विद्यमान रहता है उससे जोड़ने का मार्ग योग प्रदान करता है। केवल बुद्धि के बल पर या शब्दों के तल पर नहीं वरन्

बोध के तल पर, ज्ञान के तल पर, शांति के तल पर जो हमें अपने आपसे जोड़ता है—वही योग है। स्वस्थ होना वास्तव में क्या है? जो स्व में स्थित कराए वही है स्वस्थ। अपने-आप में निवास करने का नाम स्वास्थ्य है। उपवास का अर्थ चौबीस घंटे भूखे रहना या अन्न-जल का त्याग करना नहीं अपितु अपने-आप में निवास करना ही उपवास है। जिस प्रकार दिन भर भटकता हुआ पंछी संध्याकाल में अपने नीड़ पर वापस आ जाता है उसी तरह भटकती हुई चेतना जब वापस अपने आप में लौटकर आ जाती है— इस लौटने का नाम है योग। इसी योग को कोई प्रत्याहार कहता है, कोई प्रतिक्रमण। कुल मिलाकर यह अपने-आप से अपनी दोस्ती है, स्वयं से अपनी मुलाकात है, स्वयं से प्रेम है, स्वयं सुधरने का तरीका है। इसलिए जब आप योग करते हैं तब स्वयं को दुरुस्त करने का पुरुषार्थ कर रहे हैं। जब योग कर रहे हैं तब सजग होकर अपने दिमाग को शांतिमय बनाने का, तनावमुक्त करने का उपक्रम कर रहे हैं।

प्राणायाम और योग करते हुए व्यक्ति अपने दिमाग, मन, चित्त को विश्राममय और शांत बनाते हुए तनावमुक्त करता है। विचारों और विकल्पों को शांत व विश्रामपूर्ण करने का प्रयत्न करता है। जब हम ऐसा कर रहे हैं तो अपने-आप से जुड़ रहे हैं। विकार, वासनाएं, क्रोध तो बाहरी तत्त्व हैं। एक योगी व्यक्ति तो स्वयं को भी अपने शरीर से विभिन्न देखता है। जैसे-जैसे योग की, साधना की गहराई आती है व्यक्ति का मन शांत और निर्मल होता जाता है। वह घड़ी-दो-घड़ी, आधा-एक घंटे के लिए एकांत में बैठकर अपने श्वास-धारा को शांत व मंद करते हुए अपने मन को शांत, निर्मल और एकाग्र करने का प्रयास करता है। योग अर्थात् Relaxation of mind.

योग हम सभी के लिए कल्याणकारी है, फिर चाहे हम विद्यार्थी हों, व्यवसायी हों, गृहणी हों या किसी भी पेशे से जुड़े हों। आज के समय में जबकि सभी अत्यधिक मानसिक दबाव व तनाव से घिर रहे हैं योग अत्यन्त आवश्यक हो गया है। पेशेगत समस्या हो या अध्ययन का बोझ, सबसे मुक्ति पाने का सहज, सरल व सुगम उपाय योग है। योग के द्वारा हम स्वयं को ठीक करते हैं, उत्साहपूर्ण बनाते हैं, ऊर्जावान बनाते हैं। भीतर के विकार, वासनाएँ, जड़ताएँ, मोह-मूर्च्छा सभी को शांत व विश्रामपूर्ण बनाते हैं। इस तरह हम स्वास्थ्य से समाधि की यात्रा का प्रारम्भ करते हैं।

महर्षि पतंजलि जिन्होंने योग-सूत्रों को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करते हुए हमारे सामने ऐसी प्रकाश-किरण थमाई है कि जिसे सैद्धांतिक रूप से समझने पर भी

हमारे अंदर अध्यात्म के प्रति जिज्ञासा जाग्रत हो जाएगी। रेशम के धागे के सहारे ही सही, हम किसी महल के भीतर पहुँचने में सफल हो जाएँगे। कहा जाता है कि एक वजीर को ऐसे महल में कैद कर लिया जाता है जो एक खंभे पर खड़ा है। खंभे पर खड़ी मीनार, अंदर जाने का कोई रास्ता नहीं, अंदर तक कैसे पहुँचा जाए और वजीर को मुक्त होना है। तब वजीर अंदर से रेशम का एक धागा डालता है। उसके आदमी धागे को पकड़ लेते हैं। उसके साथ थोड़ा अधिक मजबूत रेशम का धागा बाँध दिया जाता है। वजीर उस धागे को खींचना शुरू करता है। नीचे से क्रमशः और मजबूत धागा बाँधा जाता है, वजीर ऊपर खींचता रहता है, अंततः एक मोटा रस्सा ऊपर पहुँचा दिया जाता है और वजीर उस रस्से के सहारे आजाद हो जाता है, मुक्त हो जाता है।

पतंजलि के योग-सूत्र रेशम के पतले-पतले धागों की तरह हैं। अगर इन पर चिंतन-मनन किया जाए, इन पर एकाग्रता कायम करेंगे तो ये धागे, धागे न रह जाएँगे, इन्हीं के सहारे हम मुक्ति के रस्से पकड़ने में सफल हो जाएँगे। बुद्धि लगाकर तन्मयता के साथ अगर हम तत्पर होंगे तो ये सूत्र, सूत्र न रहकर सूत्रधार बन जाएँगे, हमारी मुक्ति के, निर्वाण के, प्रज्ञा के, ऋतम्भरा के समाधि के द्वार बन जाएँगे। महर्षि ने योग के द्वारा प्रभु के दिव्य पथ को साधा और सूत्र-रूप में छोटे-छोटे वाक्य देते हुए अपनी अनुभूतियों को पिरोने का प्रयास किया। सूत्र के रूप में उन्होंने बिखरे हुए मोतियों की माला बनाकर हमें प्रदान की है। ये सूत्र हमें स्वयं से जोड़ें और हमारे मन व बुद्धि में योग का अधिक प्रकाश प्रदान करें और हमारी मनोवृत्ति, हमारी लेश्या, हमारे आभामंडल और हमारी चैतन्य दशा में और अधिक सुधार लाएँ।

अब हम योग-सूत्रों में प्रवेश करते हैं। पहला और महत्त्वपूर्ण योगसूत्र है – योगः चित्तवृत्ति-निरोधः। चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। हमारे अन्तर्मन में विचारों, विकल्पों, स्मृतियों, कल्पनाओं के रूप में जो उठापटक चलती रहती है उनका विलय हो जाना, उनका निरोध कर देना ही योग है।

एक पत्नी ने अपने पति से कहा – तुम जितना कमाते हो उसमें घर का खर्चा चल नहीं पाता, व्यवस्थाएँ पूरी नहीं हो पातीं इसलिए तुम और मेहनत करो ताकि पर्याप्त पैसा आ सके। पति ने कहा – मैं तो पर्याप्त मेहनत करता हूँ और पैसा भी काफी कमाता हूँ लेकिन खर्चा इसलिए नहीं चलता कि मैं छः दिन ही कमाता हूँ और तुम सात दिन खर्चा करती हो। यदि तुम निरोध करना सीख जाओ तो मुझे अतिरिक्त मेहनत करने की ज़रूरत न होगी।

निरोध ही योग है। अपने भटकते मन को कि छोटी-सी बात सुनी और उद्वेलित हो गए। इस उद्वेलित होते मन को, तृष्णा में उलझे मन को, लोभी जीव को रोक देना, समझा देना, निरोध कर देना योग है। हे जीव शांत रह, तू कब तक क्रोध करता रहेगा, हे जीव तू कब तक चोरियाँ करता रहेगा, कब तक तू यूँ मोह-माया में उलझा रहेगा – हे जीव अब तो शांत रह। हम चिंतन और मनन करें कि कषायों का यह उद्वेलन कब तक चलता रहेगा। अपने द्वारा अपने को समझाना ही योग है, क्योंकि हमने अपना निरोध किया। निरोध किया अर्थात् ब्रेक लगाया, अंकुश लगाया। प्रवाहित होते हुए मन पर अंकुश लगाया।

एक व्यक्ति मेरे पास आया और कहने लगा कि विचित्र संयोग है मेरी तीन पत्नियाँ काल-कवलित हो गईं। अब मैं क्या करूँ। मैंने कहा – अब तुम नारी जाति पर दया करो। नहीं तो अगली का भी.....

हमने जाना कि अंकुश लगाने का, निरोध करने का नाम योग है। पर निरोध किसका किया जाए? पतंजलि कहते हैं- चित्त की वृत्तियों का निरोध! हमारे भीतर जो बेलगाम इच्छाएँ उठती हैं- कभी यह पाऊँ, कभी वह खाऊँ, कभी यह कर लूँ, कभी वह कर लूँ – उन पर अंकुश! अरे, खुद को पहचानो। हम जानें कि हमारी आन्तरिक स्थिति क्या है, चित्त की क्या दशा है, मन की अवस्था क्या है, हमारे दिमाग के भीतर कैसा अन्तर-प्रवाह है। हम स्वयं को देखें। सबका अपना-अपना व्यक्तित्व है, सबके भीतर अपना-अपना सागर है, सबकी अपनी-अपनी लहरें हैं। हो सकता है किसी के भीतर का सागर शांत हो, किसी का भड़क रहा हो, उसमें तूफानी तरंगें उठ रही हों। हमारे मन के सागर में जो इच्छारूपी, क्रोधरूपी, तृष्णा और मोह माया के रूप में लहरें हैं उन्हें शांत करना ही चित्तवृत्तियों का निरोध है।

दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है। बाह्य रूप में शायद जुड़वाँ लोग एक जैसे दिखाई दे जाएँ पर भीतर से वे भी जुदा-जुदा होते हैं। अन्तर्मन सबका निजी होता है। जिस तरह सागर के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं उसी तरह इस अन्तर्मन के अनेकानेक रूप हैं। जितनी बार ध्यान करेंगे अपने चित्त की अलग-अलग अवस्थाएँ पाएँगे। सागर की लहरें कब कैसे उठती चली जाएँगी पता नहीं होता, ऐसा ही व्यक्ति का मन है। जब खाना खाने बैठता है तो टी.वी. देखते हुए बीवी के पास जाना चाहता है। बीवी के पास प्रेमिका याद आती है, प्रेमिका के पास दुकान का खयाल आने लगता है। ये मन की तरंगें कहाँ जाती हैं पता ही नहीं चलता। हम सभी गिरगिट की तरह हैं। ये सब चित्त की स्थितियाँ हैं।

योग इसीलिए जरूरी है कि हमारे इस उखड़ते, भटकते, उद्वेलित होने वाले मन और चित्त को हम शांत कर सकें। जब हम योग की शरण में आ रहे हैं तो समझ लेना चाहिए कि निरोध ही योग है। पतंजलि के अनुसार चित्त की तीन अवस्थाएँ होती हैं। सुषुप्ति, स्वप्न और जागृति। सुषुप्ति अर्थात् निद्रावस्था, स्वप्न अर्थात् भटकाव अवस्था और जागृति अर्थात् सजगता। मनुष्य या तो नींद में रहता है या सपनों में, विचारों में खोया रहता है या फिर जागृत रहता है। चौथी अवस्था भी होती है जिसे मैं 'परा' कहूँगा यानी वह स्थिति जो इन तीनों ही वृत्तियों से ऊपर उठ गई। उसे निवृत्ति कहेंगे। जो चित्त सुषुप्ति, स्वप्न और जागृति तीनों ही अवस्थाओं से ऊपर उठ गया है – महावीर की भाषा में जो शुक्ल ध्यान की अवस्था में पहुँच गया है – वह स्थिति परा है। परा अर्थात् परम अवस्था। परा अर्थात् मानवीय प्रकृति से ऊपर उठ जाना।

सुषुप्ति यानी खोया हुआ है अपने में, अपने मोह, मूर्च्छा, निद्रा में, प्रमाद में। स्वप्न यानी भटकता रहता है। नींद में तो स्वप्न आते ही हैं दिन में भी सपने दिखाई देते हैं, जो नहीं हो पा रहा उसके सपने। तीसरी है जागृति – यह साधक अवस्था है। साधक को सजगता ही तो चाहिए। स्वस्थ और सफल जीने का आधार ही सजगता है। अपने प्रत्येक कार्य को जागरूकता-पूर्वक सम्पादित करना ही योग है। चलना-उठना-खाना-पीना सोना सब जागरूकता के साथ संपन्न हो। महावीर इसीलिए तो कहते हैं – जतन से जिओ। उनके सम्पूर्ण जीवन का सार उपदेश यही है – यत्न से जिओ, जागरूकता से जिओ। जैन का अर्थ है जतन से जीने वाला। जैन वह है जो जतन से, जागरूकता से जीता है। जो बोधपूर्वक जीता है वह है बौद्ध। जो मन के आत्मविश्वास को कायम रखते हुए जीता है, अपनी हीन-भावनाओं को दूर करके जीता है, उसका नाम है हिंदू। ईमान पर जो अडिग रहे वह मुसलमान। ईश्वर के पथ का जो अनुसरण करता रहे वह ईसाई। जो अपने गुरुजनों के सान्निध्य में बैठ कर जीवन की श्रेष्ठ बातें सीखता रहे वही सिक्ख। अगर गुण के रूप में हिंदू, जैन, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि शब्द जुड़े हैं तो ये सार्थक हैं अन्यथा केवल पहचान भर हैं।

जीवन में चाहिए जागृति। सुषुप्ति-स्वप्न दोनों ही मूर्च्छा-अवस्था हैं। जो जागता है, वह पाता है। जो सोता है, सो पछताता है। कहते हैं : तीन मित्र घूमने के लिए जाते हैं, दिनभर पिकनिक मनाते हैं और रात में वहीं रुक जाते हैं। शाम के समय खीर बनाते हैं और पेट भर खाने के पश्चात् भी एक कटोरा खीर बच जाती है। तीनों ने विचार किया कि इसे ढककर रख देते हैं, सुबह उठ कर इसी का नाश्ता करेंगे और

घर लौट जाएँगे। खीर रख दी गई। रात में तीन-चार बजे होंगे कि एक मित्र को भूख लगी। वह उठा, सामने खीर का प्याला और पेट में भूख। अब तो रहा नहीं गया, उसने कटोरा उठाया और खीर पी गया। कटोरा ढककर रखा और पुनः सो गया। सुबह जब सब जगे तो प्रश्न उठा कि पहले खीर कौन पिये? क्योंकि सभी पीना चाहते थे। एक ने कहा मैं पिऊंगा। क्यों? क्योंकि आज रात मैंने गजब का सपना देखा – मैंने देखा कि भगवान शिव मेरे सपने में आए और कहने लगे चल मैं तुझे अपने साथ हिमालय पर ले चलता हूँ। मैं वहाँ गया पार्वती माँ ने अपने पास रखा हुआ खीर का कटोरा उठाया और मुझे पिलाया इसलिए इस कटोरे की खीर पर मेरा अधिकार है।

दूसरे मित्र ने कहा – सपना तो मुझे भी आया और मेरा सपना तेरे सपने से ज्यादा ऊँचा था। दोनों मित्रों ने पूछा – तेरा क्या सपना था? कहने लगा – राजा दशरथ ने घोषणा कर दी थी कि राम का राज्याभिषेक होगा, लेकिन राम तो जंगल चला गया, सो उन्होंने मुझे ही राम समझ लिया और मेरा राज्याभिषेक कर दिया और अभिषेक करते समय मेरे सामने खीर का कटोरा रखा और कहा – पी जाओ। इसलिए तेरे सपने से मेरा सपना बेहतर है और इस खीर का अधिकारी मैं ही हूँ।

तीसरे मित्र ने कहा – निश्चय ही तुम लोगों के सपने ही महान हैं। मुझे इस प्रकार का कोई सपना नहीं आया, पर एक छोटा-सा सपना तो मुझे भी आया कि रात में हनुमानजी आए और गदा से धमकाते हुए बोले – उठ। डर के मारे मैं उठ गया। उन्होंने कहा – मारूँ क्या गदा से? मैंने कहा – क्या हुआ प्रभु? बोले उठा यह कटोरा और खीर पी। मैंने कटोरा उठाया और खीर पी गया। दूसरे दोनों मित्र चौंके – क्या मतलब? जो हुआ था सो मैंने बता दिया – तीसरे ने बताया – मैंने खीर पी ली।

उन्होंने कटोरा देखा तो खाली था। सोचा – हम लोग फालतू के सपने गढ़ रहे थे यह तो सचमुच ही खीर पी गया। दोनों ने कहा – जब रात में हनुमानजी आए तो तूने अकेले ही खीर पी ली? हमें भी जगा देते। हम भी तो तुम्हारे दोस्त हैं, सब मिल-बाँट कर पी लेते। उसने कहा – मैंने हनुमानजी से कहा था कि प्रभु मेरे साथ मेरे दो दोस्त और हैं, उन्हें भी थोड़ा-थोड़ा हिस्सा दे दें। हनुमानजी ने कहा – तुम्हारे दोस्तों में से कोई भी यहाँ नहीं हैं। उनमें से एक तो हिमालय गया हुआ है और दूसरा राम बनकर दशरथ के दरबार में घूम रहा है। अब मेरे पास कोई दोस्त नहीं था सो मैंने कटोरा उठाया और पी गया।

खीर किसे मिलती है – जो सजग होता है। जो सुषुप्ति और स्वप्न में रहते हैं

उनके हाथ से खीर चली जाती है। सपने देखना बंद करो और जीवन की सच्चाइयों से वास्तविकता से जुड़ो। फैंटेसी अधिक काम की नहीं होती। बड़ी-बड़ी बातों से जिंदगी नहीं बदलने वाली। हमने जो बातें पहले सुन रखी हैं आवश्यक नहीं कि वे आज भी जीवन में कायम हों। हम लोग आगे तो बढ़ते जाते हैं, पर पीछे से खाली होते जाते हैं – आगे पाट, पीछे सपाट। इसीलिए योग-सूत्र के ये छोटे-छोटे वाक्य चमत्कार का काम करते हैं। जी भर के जिओ, पर ऐसी जिंदगी जिसमें शांति हो, माधुर्य हो और आनन्दपूर्ण दशा भी हो। दो शब्द सुनने की क्षमता भी हो। भगवान महावीर ने तो कानों में कीलें ठुका लर थीं। हम दो शब्द तो झेल सकते हैं। जीसस को तो सलीब पर चढ़ा दिया गया। हम कम-से-कम नंगे पाँव तो चल सकते हैं। सुकरात को जहर का प्याला दिया गया हम फीका दूध तो पी सकते हैं! कुछ-न-कुछ तो हम भी कर सकते हैं।

हम हक़ीकत से जुड़ें – ज्ञान वह नहीं है जो किताबों में लिखा है, ज्ञान वह भी नहीं है जो रोज सुना जाता है। ज्ञान वह है जो कम मात्रा में ही क्यों न हो, पर जीवन में जिया जाता है। मटका-भर न सही, चुल्लू भर तो पी सकते हैं? हम अपनी बुद्धि को ज्ञान के ख़जाने से भर ज़रूर लेते हैं पर ढूँढने से भी ज्ञान की रोशनी नहीं मिलती है। धृतराष्ट्र को नेत्रहीन कहा जाता है, लेकिन जिसके पास ज्ञान है, पर उसे आचरित नहीं करता वह प्रत्येक इंसान धृतराष्ट्र है। कोई सिगरेट-बीड़ी पी रहा है, शराब का सेवन कर रहा है, तम्बाकू-गुटखा खा रहा है – अंधा ही तो है – सब कुछ पढ़ रहा – वैधानिक चेतावनी लिखी हुई है फिर भी उपयोग किए जा रहा है, अंधा ही तो है। इंसान ज्ञान को देने की चीज़ तो मानता है पर लेने की चीज़ नहीं मानता।

मैं तो विद्यार्थी हूँ, ज्ञान का पिपासु। हर किसी से ज्ञान लेने को तैयार। मैं मानता हूँ कि ज्ञान जीवन में जीने के लिए है। वह ज्ञान ही क्या जो जीवन में जिया न जा सके; और जिसे तुम जी नहीं सकते वह ज्ञान दूसरों को मत बाँटो। जिसका तुमने अनुभव ले लिया है वही ज्ञान बाँटो। अनुभवहीन ज्ञान प्रकाश नहीं बन पाता। वह केवल शब्दों का आदान-प्रदान भर बन जाता है।

सागर में जैसे लहरें उठती हैं वैसे ही मन में उठने वाली तरंगें वृत्तियाँ हैं। हमारा चित्त भी सागर की तरह है। चित्त जिसे मन भी कहते हैं, हमारे दिमाग का 'विल पावर' है, हमारे दिमाग में छाई ऐसी संस्कार-धारा है जो हमें प्रत्येक कार्य को करने की भीतर से प्रेरणा देती है। जीवन में भी जो कुछ घट रहा है, जो प्रवाह है, जो दबाव बन रहा है वह चित्त से प्रेरित है। इंसान जानता है कि क्या नहीं करना चाहिए लेकिन

जैसे ही भीतर से प्रेरणा आई, उत्तेजना उठी, गुस्सा या वासना जगी कि उसका सारा ज्ञान काफूर हो जाता है और वह वैसा करने के लिए मजबूर हो जाता है। जिस संस्कार के उदय से व्यक्ति यह-वह सब कुछ करने के लिए मजबूर हो जाता है उस विशिष्ट प्रेरणा-शक्ति का नाम ही चित्त है। हमारा यह चित्त शुभ भी हो सकता है और अशुभ भी। गीता कहती है – चित्त के तीन गुण होते हैं – तमोगुण, रजोगुण और सतोगुण।

किसी के चित्त में सत्तर प्रतिशत तमोगुण होता है, बीस प्रतिशत रजोगुण और दस प्रतिशत सतोगुण होता है। सभी में तीनों गुण विद्यमान रहते हैं फिर भी चाहे वह साधारण मनुष्य हो या भयंकर अपराधी। फर्क केवल इतना है कि किसी में तमोगुण अधिक होता है, किसी में रजोगुण और किसी में सतोगुण अधिक होता है। जिसमें तमोगुण ज्यादा होता है वह क्रोधी, अतिक्रोधी, अतिक्रूर, अतिलोभी, अतिघमंडी होता है। वह दूसरे को कुछ समझता ही नहीं है। अरे, अंधकार में रहने वाला दूसरे को क्या समझेगा। रजोगुण वाला दर्प से तो भरा होता है, पर दूसरों की मान-मर्यादा भी रख लेता है। रजोगुण में अहंकार तो होता है पर क्रूरता अधिक नहीं होती। उसके अंदर थोड़ी दया और क्षमा भी होती है, थोड़ा प्रेम भी रहता है। लेकिन सतोगुण अर्थात् वह गुण जिसमें धैर्य, क्षमा, शांति, करुणा, प्रेम, आनन्द-दशा सदा विद्यमान रहती है।

तमोगुण की प्रेरणा से गलत कामों को अंजाम दिया जाता है, रजोगुण की प्रेरणा से स्वयं को स्थापित करने का अहंभाव और अभिमान जगता है और सतोगुण की प्रेरणा से हम प्रभु के दिव्य पथ का अनुसरण करते हैं। योग करने का उद्देश्य भी यही है कि हमारा तमोगुण कम हो। हमारे अंदर अधिक मात्रा में रजोगुण व तमोगुण विद्यमान है। योग, साधना, सत्संग, स्वाध्याय का उद्देश्य यही है कि हमारे अंदर सतोगुण का विकास हो। तमोगुण व रजोगुण घटते जाएँ।

हम जो सायंकाल में प्रतिक्रमण या संध्या करते हैं वह इसलिए कि हे प्रभु, दिनभर में अगर किसी प्रकार का गलत चिंतन हो गया हो, गलत वाणी का उपयोग हो गया हो, गलत कर्म या व्यवहार हो गया हो तो हम बारम्बार क्षमा-प्रार्थना करते हैं। यह सद्भाव है और प्रत्येक व्यक्ति को सोने से पहले यह भाव अवश्य रखने चाहिए। अगर आज हमसे क्रोध हो गया तो समझ लेना कि आज हमारे चित्त में तमोगुण का उदय अधिक था इसलिए क्रोध हुआ। हाँ, अगर कोई आपसे गलत व्यवहार करे फिर भी आप शांति बनाए रख सके अर्थात् सतोगुण की प्रधानता थी इसलिए माफ कर सके। रोज परिवर्तन होता रहता है सागर की लहरों जैसे तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण

का तापमान ऊँचा-नीचा होता रहता है।

अगर हम योग की समझ रखते हैं तो हमें योगी की तरह जीवन जीना चाहिए। कोई हमारे साथ चाहे जैसा व्यवहार करे हम अपनी ओर से सौम्य, सकारात्मक और मधुर व्यवहार करें। स्वयं पर संयम रखेंगे, अंकुश रखेंगे। अगर चित्तवृत्तियों का निरोध योग है तो याद रखें इन वृत्तियों पर अंकुश लगाना संयम है। राम की तरह मर्यादाओं को जिएँ, महावीर की तरह अहिंसा को अपनाएँ, बुद्ध की तरह करुणा की भावना रखें – ये सभी सतोगुण हैं। ययाति की तरह जीने वाले तो केवल वासना के पुतले होते हैं वे केवल तमोगुण को ही जीवन में प्रधानता देते हैं। ऐसे लोग प्रकाश में जन्म लेकर भी अंधकार में समाप्त हो जाते हैं। दुनिया का कोई भी फल अपने बीज से जुदा नहीं होता। अच्छे फलों को प्राप्त करने के लिए हमेशा अच्छे बीज बोते रहना चाहिए।

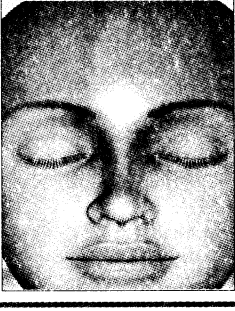
अंत में एक कहानी से प्रेरणा लें। कहते हैं : जर्मन में एक प्रसिद्ध व्यक्ति है ओबर लिन। एक बार ओबर लिन आँधी-ओलों के तूफान में फँस गए। उन्होंने मदद के लिए गुहार की, पर उनकी आवाज़ तेज तूफान में गुम हो गई। ओलों की मार झेलते-झेलते आखिर बेहोश होकर गिर पड़े। थोड़ी देर में ही उधर से एक किसान गुजरा। उसने एक इंसान को बेहोश पड़े देखा तो अपनी बाँहों में उठाकर अपनी झोंपड़ी में ले आया। वहाँ ओबर लिन को होश आया, तो उसने उस किसान की आँखों में देखते हुए कहा, धन्यवाद! तुमने मेरी जान बचाई। मैं तुम्हें क्रीमती इनाम देना चाहता हूँ।

किसान ने हैरानी भरे स्वर में कहा, इनाम किसलिए? मैंने एक मित्र को मुसीबत में देखा, तो जान बचाने के लिए झोंपड़े में ले आया। मैंने महज कर्तव्य निभाया है।

ओबर लिन ने कहा, 'कम-से-कम अपना नाम तो बताओ।' किसान ने कहा, मित्र बताओ, उस परोपकारी का नाम क्या बाइबिल में है? ओबर लिन एक मिनट के लिए मौन हुआ और कहा, 'नहीं।' किसान बोला, तो मुझे भी अनाम ही रहने दो।

बस, जीवन में केवल अच्छे बीज बोते जाओ। वे बीज जो हमारे सद्गुणों को बढ़ाएँ, जीवन में धन्यता का आनन्द प्रदान करें।

अपनी ओर से इतना ही निवेदन करता हूँ।



स्वभाव-परिवर्तन :

योग का पहला चमत्कार

मेरे प्रिय आत्मन्,

मनुष्य की सारी गतिविधियाँ उसके अन्तर्मन से संचालित होती हैं। जीवन के सारे बंधन और उसकी आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए भी अन्तर्मन ही उत्तरदायी होता है। उसके बाह्य संबंध, बाह्य क्रिया और बाह्य गतिविधि अवश्य ही प्रभावकारी व परिणामदायी होते हैं, लेकिन बीज तो अन्तर्मन में ही होता है। सोच-विचार, कर्म या प्रकृति के रूप में जो भी शुरू होता है वह अन्तर्मन से ही आता है।

महर्षि पतंजलि ने हमें उसी अन्तर्मन से साक्षात्कार कराते हुए उसकी शुद्धि, सिद्धि और समाधि के लिए योगसूत्रों का प्रतिपादन किया है। उन्होंने जाना कि मनुष्य का अन्तर्मन ही जीवन की समस्त गतिविधियों का आधार और पुरोधा है। इसलिए योगसूत्रों में मन को विश्लेषित करने का प्रयास किया है।

अन्तर्मन के दो पहलू हैं – मन और चित्त। मन वह है जो विचार और विकल्पों के रूप में अनुभव होता है और चित्त वह है जो हमारी मूल वृत्तियों के रूप में जो तत्त्व अंदर समाहित रहता है उसका ज्ञान करता है। योग का उद्देश्य व्यक्ति को शांतिमय बनाना तो हो सकता है लेकिन मुख्य उद्देश्य चित्त की शुद्धि करना है। चित्त की निर्मल

स्थिति ही वास्तव में योग है।

मन को शुद्ध करना योग का उद्देश्य नहीं है क्योंकि मन तो चित्त की अभिव्यक्ति है। चित्त और मन में तो सागर व उसकी लहरों जितना अंतर है। लहरें अर्थात् मन और उसके विकल्प, सागर अर्थात् चित्त। फ्रायड ने जिसे अचेतन मन कहा है सबकांशस माइंड, भारतीय मनीषियों की भाषा में वही चित्त है। जब हम ध्यान-साधना करते हैं तो मन के रूप में एक तत्त्व का स्पष्ट अनुभव करते हैं, क्योंकि विचार और विकल्पधारा के रूप में वह भीतर बहता रहता है। ऐसी स्थिति में लगता है कि हमें चित्त का अनुभव तो होता ही नहीं। जब हम समुद्र को देखते हैं तो लहरें दिखाई देती हैं लेकिन बिना समुद्र के लहरें कहाँ से आ सकती हैं। लहरें तो उठेंगी ही। मन के भीतर विचार-विकल्प की लहरें तो हिलोरें लेंगी ही। लहरों के उद्वेलन में, उतार-चढ़ाव में फ़र्क आ सकता है, पर लहरें तो उठती रहती हैं।

योग का उद्देश्य व्यक्ति के मन को समाप्त करना नहीं है, अपितु जिसकी वजह से क्रोध, मोह, माया, लोभ, राग-द्वेष जैसी वृत्तियाँ उदित होती हैं उस चित्त का निरोध करना, उसे शुद्ध करना, परिमार्जित करना योग का उद्देश्य है। योग शरीर को स्वस्थ अवश्य करता है, पर उसकी प्रवृत्तियों को समाप्त नहीं करता। आहार, निद्रा, मैथुन जैसी मूल प्रवृत्तियाँ योग करते हुए भी विद्यमान रहती हैं, लेकिन जो अचेतन मन है, भीतर जो चित्त व्याप्त है, जो वृत्तियों का समूह है उनका निरोध करना, उन पर अंकुश लगाना, उन्हें परिमार्जित करना योग का काम है। चित्त और मन की स्थिति पानी में डूबी हुई बर्फ़ की तरह है अर्थात् जो बर्फ़ पानी में डूबी है वह दिखाई नहीं देती यही चित्त है और जो बर्फ़ बाहर नज़र आ रही है वह मन है। विचार-विकल्प के रूप में जो अनुभव होता है वह तो दस प्रतिशत है क्योंकि जब हम सो जाते हैं तो यह दस प्रतिशत मन तो सो जाता है और बचा हुआ नब्बे प्रतिशत वाला चित्त कार्यशील हो जाता है।

ध्यान के द्वारा चित्त का परिमार्जन, निरोध होता है। ध्यान में हमारा लक्ष्य ही यही होता है कि हम अपने चित्त का निरोध करें। पतंजलि कहते हैं – अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष और मृत्यु का भय – ये चित्त के क्लेश हैं। पतंजलि ने कहा है कि चित्त के भीतर क्लेशकारी और अक्लेशकारी दो प्रकार की वृत्तियाँ ऐसी होती हैं जिनके कारण हमें कष्ट, दुःख, वेदनाएँ, आर्तध्यान और रौद्र ध्यान जैसी स्थितियों से गुज़रना पड़ता है। लेकिन कुछ वृत्तियाँ ऐसी होती हैं जो जीवन में सुखदायी लगती हैं। प्रेम, करुणा, शांति, दया आदि वृत्तियाँ हमें सुखकर लगती हैं। योग एवं ध्यान से

हम क्लेशकारी वृत्तियों का क्षय करते हैं ।

मैंने सुना है – एक शिक्षक भगवान की खोज के लिए निकल पड़ा। वह स्वर्गलोक को खोजता हुआ काफी भटकने के बाद आखिर स्वर्ग के द्वार पर पहुँचा ।

द्वारपालों ने शिक्षक को रोक दिया और पूछा – ‘तुम कौन हो?’ जवाब मिला – ‘मैं एक शिक्षक ।’ द्वारपाल ने कहा, ‘ठहरो, प्रभु से पूछकर आता हूँ ।’ थोड़ी देर में द्वारपाल लौटकर आया और कहा, ‘भगवान कहते हैं कि शिक्षक के लिए स्वर्गलोक में कोई जगह नहीं है क्योंकि तुमने शिक्षा के रूप में केवल व्यापार किया है ।’

शिक्षक वापस लौटने लगा कि तभी उसे एक दैवीय आवाज सुनाई दी, ‘हे शिक्षक ! मृत शब्दों और अहंकार की धूल तुम्हारे जिगर से चिपकी हुई है, मौन और ध्यान रूपी जाल से इस धूल को धो डालो, तुम्हें भगवान के दर्शन स्वतः मिलेंगे ।’

शिक्षक अपने भीतर की गहराई में उतर गया, तभी उसने फिर से एक दैवीय आवाज सुनी, शिक्षक मित्र होता है, अपने सहयोगियों का, विद्यार्थियों का, पशु-पक्षियों का, समग्र मानव-जाति का । एक सच्चा शिक्षक प्रभु की सारी सृष्टि की सेवा करता है । यह सुनते ही शिक्षक का हृदय भर आया । उसने कहा, ‘हे प्रभु ! मुझे आशीर्वाद दो कि आज से मैं शिक्षा की सच्ची सेवा कर सकूँ । अपने सहयोगियों व विद्यार्थियों, पशु-पक्षियों और सम्पूर्ण मानव-जाति का मित्र बन सकूँ । आज से मैं आपकी सच्ची संतान बनकर धरती पर लौट रहा हूँ और शिक्षा की सेवा को आपकी ही सेवा मानता रहूँगा ।’

उसने दो क्रम धरती की ओर बढ़ाए ही थे कि तभी स्वर्ग का दरवाजा खुल गया । प्रभु ने दर्शन दिए, आशीर्वाद दिया और कहा, ‘जो अपने अंतर्मन को स्वार्थ, लोभ और अहंकार से मुक्त करके मेरे कार्य में मेरा सहयोग करता है मैं उसी से प्यार करता हूँ । तुम्हारा हृदय शुद्ध हुआ, तुम धरती पर जाओ और मेरे कार्य में सहयोग करो, तुम्हें मेरा आशीर्वाद है ।’

पतंजलि कहते हैं, ‘जहाँ हृदय शुद्ध है वहीं योग है ।’ हम लोग ध्यान के पथ पर चलकर अपने हृदय को शुद्ध करते हैं और श्री भगवान को अपने हृदय में, अपनी आँखों में बसाते हैं ।

पतंजलि के सूत्र हैं – अभ्यास वैराग्याभ्याम् तन्निरोधः । अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष-अभिनिवेशाः क्लेशाः । ध्यानयेः तद् वृत्तयः ।

अभ्यास और वैराग्य से चित्त-वृत्तियों का निरोध होता है । अविद्या, अस्मिता

अर्थात् अहंकार, राग, द्वेष और मृत्यु-भय – ये चित्त के पाँच क्लेश हैं। क्लेश कष्ट और दुःख हैं। ध्यान के द्वारा इन क्लेशकारी वृत्तियों का नाश किया जा सकता है।

हमारे अन्तर्मन में अलग-अलग समय पर अलग-अलग वृत्तियों और विकल्पों का उदय होता रहता है। चित्त का निरोध करने के लिए पतंजलि, महावीर, बुद्ध सभी अपने-अपने ढंग से युक्तियाँ बताते हैं। महावीर ने अनुपश्यना शब्द का प्रयोग किया, बुद्ध ने विपश्यना और पतंजलि निरोध शब्द का प्रयोग करते हैं। निरोध अर्थात् रोकना या अंकुश लगाना, उसका क्षय करना। बुद्ध का कहना है कि इसके लिए हमें चित्त को सचेतनतापूर्वक देखना होगा। वे तीन शब्दों का प्रयोग करते हैं – आतापी, संप्रज्ञानी और स्मृतिमान। तपस्वी बनकर अपने चित्त में उठने वाले राग-द्वेषमूलक सभी बीजों को काटना, नष्ट करना – यह आतापी है। मन में प्रकृति के जो सूक्ष्म व छोटे-छोटे बीज हैं उन्हें काटना। संप्रज्ञानी अर्थात् अपनी प्रज्ञा को, अपनी बुद्धि को अपनी चित्तवृत्तियों के प्रति जागरूक करना। यानी चित्त की हर लहर के प्रति, हर तरंग के प्रति, हर धारा के प्रति अपनी बोध-दशा को गहन करना। स्मृतिमान अर्थात् सचेतन होना। अपनी चित्तदशाओं के प्रति पल-पल जागरूक होना। बुद्ध ने यह भी कहा कि साधक राग-द्वेष से रहित होकर आती-जाती साँस-धारा को देखे, साँसों पर अपनी गहराई बनाए, अपनी देह की संवेदनाओं को देखे, अपने चित्त को देखे। इस साढ़े तीन हाथ की काया में जो भी उदय और विलय हो साधक उसका विपश्यी बने, साक्षी बने, प्रज्ञाशील बने। साधक के लिए ज़रूरी है कि वह निरपेक्ष-भाव में रहे अन्यथा चित्त के जंजाल से कैसे मुक्त हो सकेगा।

महावीर ने चित्त की तहों को, चित्त के कषायों को काटने का दूसरा तरीका बताया – उन्होंने कहा कि चित्त को केन्द्रित करने के लिए व्यक्ति त्राटक करे। कभी लोक को आधार बनाए, कभी झरने को, कभी पानी को, कभी दीपशिखा को, कभी काया को, कहीं भी अपने चित्त को स्थिर करे। साधक पहले पिंडस्थ ध्यान करे, फिर पदस्थ ध्यान करे और अंत में रूपातीत ध्यान करे। पिंडस्थ ध्यान अर्थात् इस देह में अपने ध्यान को स्थित कर देह की भलीभाँति अनुपश्यना करे, फिर चित्त में स्थित होकर पदस्थ ध्यान करे। क्योंकि वे जानते हैं आम इन्सान के लिए सीधे अपने चित्त को स्थिर करना मुमकिन नहीं हो पाता है। इसलिए पदस्थ ध्यान- किसी भी मंत्र का उपयोग कर सकते हैं। जैसे – कोऽहम् – मैं कौन हूँ, मैं कहाँ से आया हूँ, मैं यहाँ से कहाँ जाऊँगा, मेरा परिचय क्या है? क्या माता-पिता ही मेरा परिचय है, मेरे जन्म का आधार क्या है? या ओऽम् या सोहम् या अहम् का श्वासोश्वास के साथ स्मरण करे।

साधक इस पद में, इस बीज मंत्र में लगातार प्रवेश करता जाए, डूबता जाए, खो जाए। पदस्थ ध्यान यानी जिससे चित्त को रमा सको, उसकी अनुप्रेक्षा, चिंतन और मनन। हम लोग 'ओऽम्' का उपयोग करते हैं। आती-जाती श्वास-धारा के साथ धाराप्रवाह और लयबद्ध 'ओऽम्' का स्मरण करते हैं ताकि हमारे चित्त में एकलयता आ जाए। एकलयता आने के बाद महावीर के अनुसार अब व्यक्ति परमात्म-चेतना के ध्यान में विलीन होता जाए। वह सिद्धों का ध्यान धरे। बुद्ध की भाषा में व्यक्ति धर्म की अनुपश्यना करे। पतंजलि के अनुसार व्यक्ति या तो अपने इष्ट प्रभु का ध्यान करे या 'ओऽम्' के स्वरूप का पुनः पुनः चिंतन और स्मरण करे। इससे हमारा चित्त जो नौका रूप है लेकिन विचार और विकल्पों की लहरों में भटकता रहता है, एकाग्रता नहीं बन पाती वह एकाग्र हो जाता है। पतंजलि कहते हैं – एकाग्र होने पर दिव्य चेतना का ध्यान धरो ताकि हम चित्त से चेतना की ओर बढ़ें, भीतर के अंधकार में प्रकाश का उदय हो।

ध्यान साधना का पथ बहुत गहरा पथ है। हम सभी लोग अपने-अपने चित्त के घेरों से, कषायों से, लेश्याओं से घिरे हुए हैं। यह जानते हुए भी कि क्रोध, मान, माया, लोभ जैसे कषाय हम पर जब-तब हावी होते रहते हैं इनके कारण नुकसान भी उठाना पड़ता है, पर हम लोग इनसे मुक्त नहीं हो पाते हैं। जब तक ये कषाय भीतर दबे रहते हैं और इनका उदय नहीं होता तब तक हम सभी बाहर से इंद्रधनुष की तरह सुंदर और होली के रंगों की तरह सुहावने लगते हैं, पर जैसे ही इन कषायों में से किसी एक कषाय का भी उदय हो जाता है तो हम उसके घेरे में घिर जाते हैं। फिर हमारी वही हालत होती है जो मकड़जाल में किसी मकड़ी की हुआ करती है। यों तो कहने में सभी अच्छे हैं, पर किसके मन में क्या है इसका ज्ञान तो व्यक्ति को स्वयं को ही है। प्रश्न है हम अपने चित्त के कषायों और घेरों के यों ही अधीन रहेंगे या चित्त के आवेगों, उद्वेगों और कषायों से मुक्त होने का कोई रास्ता भी तलाशेंगे?

पतंजलि कहते हैं – अभ्यास और वैराग्य के द्वारा हम अपने चित्त का निरोध कर सकते हैं। तन्निरोधः अर्थात् तत् + निरोध। तत् अर्थात् उसका यानी चित्तवृत्तियों का निरोध। निरोध के लिए चाहिए अभ्यास और वैराग्य यानी अनासक्ति।

भीतर की साधना के लिए ही नहीं, जीवन के बाह्य साधनों को साधने के लिए भी अभ्यास करना पड़ता है। फिर चाहे चलना हो, खाना-पीना हो, सोना हो, अध्ययन करना हो या अन्य कोई भी कार्य क्यों न करना हो, हर चीज का हमें अभ्यास करना पड़ता है। यह जीवन की व्यवस्था है कि किसी भी परिणाम को प्राप्त

करने के लिए पूरा-पूरा अभ्यास सम्पादित करना होता है। 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान' हमें इस शाश्वत वचन से जीवन का पाठ ग्रहण करना चाहिए। भला जब निरंतर अभ्यास से कल का मूर्ख आने वाले कल को महाकवि कालीदास बन सकता है तो क्या हम निरंतर अभ्यास करते-करते अपने चित्त पर विजय नहीं पा सकते? व्यक्ति का चित्त और अन्तर्मन ही स्वर्ग और नरक होता है। यदि हमारा चित्त अच्छी भावधाराओं में लगा हुआ है तो वही स्वर्ग और सुख है और यही चित्त अगर गलत और क्लेशकारी धाराओं, वृत्तियों में लगा हुआ है तो यही नरक है।

महावीर कहते हैं – अप्पा कत्ता विकत्ता य। आत्मा ही कर्ता है, आत्मा ही भोक्ता है। अप्पा मित्तं अमित्तं च – व्यक्ति की अन्तरात्मा ही उसका मित्र और शत्रु है। सत्प्रवृत्तियों में स्थित रहने वाली आत्मा ही मित्र है और गलत रास्तों पर जाने वाली आत्मा ही शत्रु है। यहाँ इस दुनिया में न कोई किसी का मित्र है और न ही कोई किसी का शत्रु। यह तो व्यवहार की भाषा है कि आपकी किसी के प्रति दोस्ती है। हकीकत में तो स्वयं से ही दोस्ती होती है, चित्त की एक वृत्ति दोस्त बना देती है और दूसरी वृत्ति दुश्मन बना देती है। रागमूलक वृत्ति जगी तो दोस्त बन गए और द्वेषमूलक वृत्ति जग गई तो शत्रु हो गए। जिसे हम शत्रु मानते हैं वह भी इन्सान है और मित्र भी इन्सान है। पतंजलि कहते हैं चाहे जैसी स्थिति हो अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इन वृत्तियों का निरोध किया जा सकता है। पतंजलि निर्वृत्ति के प्रेरणादूत हैं। निर्वृत्ति अर्थात् वृत्तियों से मुक्ति। वृत्तियों से मुक्त होना ही मुक्ति है, विदेह-अवस्था है।

पतंजलि अभ्यास पर जोर देते हैं। वृत्तियों से मुक्त होने के लिए ध्यान उपयोगी है और ध्यान को साधने के लिए अधिक-से-अधिक अभ्यास आवश्यक है। चित्त की निर्मल स्थिति को प्राप्त करने के लिए हमें धैर्यपूर्वक अधिक-से-अधिक ध्यान करना चाहिए। ध्यान में जल्दबाजी दोष है। यह मार्ग धैर्य का मार्ग है। यहाँ जो जल्दबाजी करता है वह टिक ही नहीं पाता। अधीरता चंचलता की निशानी है और चंचलता ध्यान की दुश्मन।

इस शब्द पर हम ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान दें और वह शब्द है – 'अभ्यास, निरंतर अभ्यास।' यह जो निरंतरता है वही सफलता की नींव है, वही समाधि की चाबी है। निरंतरता बनी रहे तो रस्सी से भी पत्थर को काटा जा सकता है, पत्थरों से इमारतों को बनाया जा सकता है, पथरीली ज़मीनों पर भी ठंडे पानी के कुएं खोदे जा सकते हैं।

मैं कहा करता हूँ – यदि कोई नियमित आधा घंटा स्वाध्याय करे तो पाँच वर्ष

में पारंगत पंडित बन सकता है। बस, केवल नियमितता चाहिए। नियमितता ही परिणाम देती है। मात्र करना नहीं, नियमित, लगातार, सतत् करते रहना परिणाम देता है। वर्तमान समय में न कोई बुद्ध है, न सर्वज्ञ है, न केवली है – फिर हम क्या करें, कैसे चित्त का निरोध करें। बौद्धिक रूप से तो गुरुजन हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं लेकिन आध्यात्मिक रूप से हमारी वृत्तियों को शुद्ध और परिमार्जित करना चुनौतीपूर्ण कार्य है। कहने को तो संत और गुरु हज़ारों हैं, पर ऐसा संत या गुरु तो हज़ारों में दो-चार होते हैं जो हमारे चित्त का कायाकल्प कर दें।

कहते हैं : राजकुमार मेघ ने भगवान की दिव्य वाणी को सुनकर संन्यास धारण कर लिया था। पहला ही दिन था। रात को सोया हुआ था, जिस कक्ष में सोया हुआ था उसमें और भी अनेक संत सोये हुए थे। संतों की आवाजाही और पदचाप से वह धैर्यपूर्वक नींद न ले पाया। वह विचलित हो गया। उसने वापस राजमहल लौटने की मानसिकता बना ली। अलसुबह वह जैसे ही लौटने लगा कि भगवान ने उसके गिरते हुए कदमों को संभाल लिया। भगवान ने कहा, 'वत्स! अपने आपको जीतने के लिए चला था। क्या केवल एक रात में ही फिसल गया?' मेघ भगवान की इस बात को सुनकर अचंभे में पड़ गया कि इन्हें कैसे पता चला कि मैं घर लौट रहा हूँ? वह भगवान के चरणों में जाकर गिर पड़ा। भगवान ने कहा, 'अपने पूर्व जन्म में एक खरगोश पर की गई महान् दया के कारण आज तुम राजकुमार बने। उस जन्म में तुम एक हाथी थे। ताज्जुब तुम एक हाथी होकर भी दयाशील हो गए और आज राजकुमार होकर भी सहनशील और समताशील न बन पाए।' भगवान की इन बातों को सुनकर उसकी आत्मा इतनी उद्देलित हो गई कि पूर्व जन्म के वे दृश्य आँखों के सामने साकार हो उठे। एक विचलित आत्मा फिर से स्थिर हो गई। इस तरह मेघ मुक्त हो गया।

हमारे पास भगवान जैसा सान्निध्य तो है नहीं जो हमारी आत्मा के भीतर प्रवेश करके हमें जगा दे, हमें चेता दे, हमें रास्ता दिखा दे। हम शास्त्र खंगालते हैं, संतों के ज्ञान में से कुछ तलाशने की कोशिश करते हैं, यही सोचकर कि शायद उनके दिव्य ज्ञान में से हमें कोई किरण मिल जाए। अपनी इसी जिज्ञासा और पिपासा के चलते ही तो हम पतंजलि के भी पास पहुँचे हैं। पतंजलि के योग-सूत्रों में से कोई सूत्र निकाल रहे हैं। शायद कोई काम बन जाए, कोई दिशा मिल जाए, कोई चमत्कार हो जाए, कोई रूपांतरण घटित हो जाए। ऐसा रूपांतरण जिसे हम कह सकें – अपूर्व! अपूर्व!! अपूर्व!!!

आज हम एक ऐसी विधि का प्रयोग करेंगे जिसके द्वारा अपनी वृत्तियों के

निरोध का प्रयत्न करेंगे। वैसे भी गुरु तो ज्ञान दे सकता है, मार्गदर्शन कर सकता है, अपनी वृत्तियों का निरोध तो खुद ही करना होगा। अप्प दीपो भव – बुद्ध का प्रसिद्ध वचन है। अपने दिए खुद बनो, अपने गुरु भी खुद बनो और स्वयं को मार्ग प्रदान करो।

तुम इतने छोटे और दूधमुहे बच्चे भी नहीं हो कि मैं तुम्हारा गुरु बनूँ। तुम्हें चलना सिखाऊँ। आप अपना भला सोचने में खुद समर्थ हैं। क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए? यह आपको काफी हद तक भली-भाँति ज्ञान है। मैं तो केवल एक कल्याण-मित्र का काम कर रहा हूँ। न मैं आगे हूँ, न आप पीछे हैं। अपन सब साथ-साथ हैं। फ़र्क़ केवल इतना है कि मेरे हाथ में दीया है और आप मेरे साथ हैं। किसी एक के पास भी दीया हो तो यही कहा जाएगा कि सबके हाथ में दीया है। किसी एक की रोशनी में भी हम लोग अपना सफ़र तय कर सकते हैं। अब फिर चाहे आप मुझे गुरु कहें, मास्टर कहें या आपका कल्याण चाहने वाला जीवन-साथी कहें।

हमें यह याद रखना चाहिए कि सतत अभ्यास से ही कुछ हासिल किया जा सकता है। संभव है प्रारम्भ में सफलता न मिले लेकिन नियमित अभ्यास से शिखरों का स्पर्श किया जा सकता है। चित्त की वृत्तियाँ जो जन्मों-जन्मों से संचित की हुई हैं उनका अवसान करना ही योग की प्राथमिकता है। विचार तो इसी जन्म की उत्पत्ति हैं वे तो फुलझड़ियों की तरह हैं जो उठते हैं और विलीन हो जाते हैं लेकिन चित्तवृत्तियाँ न जाने कितने जन्मों से साथ चली आ रही हैं। इन वृत्तियों का शमन करना ही योग है। न जाने अपन लोग कब से क्रोध किए जा रहे हैं, भोगों को दोहराते चले जा रहे हैं। यानी कुल मिलाकर अब तक जो योग रहा है, वह केवल वृत्तियों का योग रहा है। बोध का योग, होश का योग, ज्ञान का योग रहा नहीं, इसीलिए तो जन्म-जन्मांतर से अज्ञान का योग रहा है, भोगों का भोग रहा है। हम अपनी वृत्तियों के गुलाम हो गए। हम वृत्तियों का ही संचय करते रहे हैं, इन्हीं का पोषण करते रहे हैं। हमें संतोष भी तभी होता है जब हमारी वृत्ति के अनुरूप हमें विषय उपलब्ध होता है। योग वृत्तियों का अवसान करता है, वृत्तियों से मुक्त होने में हमारी मदद करता है।

व्यक्ति एक ही दिन में वृत्तियों से मुक्त नहीं हो जाएगा। इसके लिए अभ्यास की ज़रूरत है, होश और बोध की ज़रूरत है, जागरूकता की ज़रूरत है, अवेयरनेस और अलर्टनेस की ज़रूरत है। जीवन में जो कुछ भी किया जाए उसमें पूरा-पूरा होश और बोध बना रहे। होशपूर्वक कार्य करने वाला एक-न-एक दिन अवश्य मुक्त हो जाएगा। होशपूर्वक किया गया एक सत्कृत्य भी जीवनभर के पापों को धोने में सफल

हो जाता है ।

यदि हम अविद्यावान या अज्ञानी बनकर अपनी वृत्तियों का पोषण करते रहे तो जन्मों-जन्मों तक अपनी वृत्तियों से मुक्त नहीं हो पाएँगे । जिन वृत्तियों को हम आज पोस रहे हैं पूर्व जन्म में भी हमने इन्हीं वृत्तियों का पोषण किया । यदि यही सिलसिला जारी रहा तो हमारा हर जन्म पूर्व जन्म का ही एक पुनर्संस्करण होगा । यदि हम होश और बोध के साथ अपनी वृत्तियों से साक्षात्कार करेंगे, उनका क्षय करेंगे तो धीरे-धीरे बोध की गहराई के साथ वृत्तियों से बाहर निकलते जाएँगे और हमारे भीतर सच्ची शांति का प्रकाश फैलने लगेगा । हम संबोधि के संवाहक हो जाएँगे । हम स्वयं मूल्यांकन कर पाएँगे कि पहले भी वृत्ति का उदय होता था अब भी वृत्ति का उदय होता है लेकिन तब क्लेशकारी वृत्तियाँ मूर्तरूप लेती थीं और अब अक्लेशकारी वृत्तियाँ उदित होती हैं । पहले छोटी-सी बात हो जाती तो तीन दिन तक हावी रहती थी, पलक झपकते ही गुस्सा आ जाता था, छोटी-छोटी बातों से संबंधों में दरार आ जाती थी लेकिन अब अगर कोई कुछ कहता है तो बात ही असर नहीं करती । क्रोध का निमित्त सामने होता है, पर हमें क्रोध नहीं होता । भोग का निमित्त सामने रहता है, पर हमारे भीतर भोग का आकर्षण नहीं होता । यही तो है योग । हिमालय में रहने से भला किसी क्रोध या भोग की कसौटी होती है? चित्त यदि राग-द्वेष के उद्वेलन से ऊपर उठ जाए तो फिर चाहे आप गाँव में रहें या गुफा में, घर पर रहें या मज्जार पर । इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता । बस, ज़रूरत है केवल जागरूकता की, सचेतनता की, मुक्ति की अभिलाषा की ।

ज्यों-ज्यों हमारा बोध और योग गहरा होता जाएगा, वृत्तियों के प्रति हमारी जागरूकता, हमारी संप्रज्ञाशीलता गहरी होती जाएगी, हम वृत्तियों के प्रभाव से मुक्त होते जाएँगे । अंधेरा तभी तक तो प्रभावी रहता है जब तक प्रकाश का उदय नहीं हो जाता । दुनियाभर के अंधेरे को दूर करने के लिए होश और बोध का, अभ्यास और अनासक्ति का एक सूरज काफ़ी है ।

योग विशुद्ध रूप से व्यक्ति को उसके स्वभाव के साथ जोड़ता है, स्वभाव में परिवर्तन लाता है । स्वभाव में परिवर्तन लाना ही योग का पहला चमत्कार है । हो सकता है हमारा अंतरमन, हमारा चित्त गँदला हो, पर क्या आपने नहीं सुना कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा!' अंतरमन अगर गंगा की तरह नहीं है, तो इसे गंगा की तरह बनाया जा सकता है । चित्त की निर्मल स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है । इसके लिए हम ध्यान का अधिक-से-अधिक अभ्यास करें, सचेतनता को अधिक-से-

अधिक सेंटरलाइज करें। माना कि भीतर में गंदगी भी है, पर अगर इस गंदगी को भी यदि रूपांतरित करने की कला आ जाए तो यह गंदगी ही खाद बनकर किसी पौधे को फूलों की खुशबू दे सकती है। साधना परिवर्तन का नाम है, स्वयं को जीत लेने का नाम है। उधर आपके सामने ही खड़ा है एक डॉग। डॉग एक प्रतीक है। भौंकने का, गुर्रांने का, खीझने का, स्वार्थ का। हम इस डॉग को उलट डालें। बन जाएगा 'गॉड'। जीवन का यही तो खेल है। कोई गॉड उलटकर बन गया डॉग और कोई डॉग उलटकर बन गया गॉड। डॉग बन गए यानी पशु की श्रेणी में चले आए वहीं अगर गॉड बन गए तो प्रभु की श्रेणी में पहुँच गए। एक में पतन है एक में उत्थान है, एक में गिरावट है तो एक में खिलावट है।

हम ध्यान से साक्षात्कार करें और ध्यान में अपने चित्त से साक्षात्कार करें। आत्मानुभूति कब होगी यह तो स्वयं आत्मा की अपनी इच्छा पर निर्भर है। देवता कब प्रकट होंगे यह दैवीय शक्ति की इच्छा पर है। हम तो केवल चित्त को निर्मल करने का प्रयत्न कर सकते हैं। बीज बोना हमारा काम है, उसे सींचना हमारा दायित्व है, अपने बोए गए बीजों की रक्षा करना हमारी ज़वाबदारी है। फल कैसा आएगा, फूल किस तरह के खिलेंगे, यह सब तो प्रभु और प्रकृति की व्यवस्थाओं पर निर्भर है। हमारे लिए सुकून की बात सिर्फ़ इतनी-सी है कि हमने प्रयास किया, अभ्यास किया, पुरुषार्थ किया। कहते हैं भागीरथी को लाने में कई पीढ़ियाँ बीत गईं, पर जिसके क़दम चलते रहते हैं वह एक-न-एक दिन अवश्य पहुँचता है। स्वर्ग में रहने वाली गंगा तब धरती पर उतर आती है। पुरुषार्थ के साथ धैर्य और विश्वास तो चाहिए ही।

करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।

रसरि आवत-जावत तें सिल पर पड़त निशान ॥

अथवा यों कहिए -

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय,

माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आय फल होय ॥

अपने आप परिणाम आता है, बस अभ्यास जारी रहे। अगर परिणाम नहीं आया है तो इसका मतलब है कि अभ्यास अभी कमज़ोर है। वह कहानी तो याद है न- जिसमें कहा गया है- भीम रात के अंधेरे में भोजन कर रहा था। अर्जुन जब रात में जगा तो उसने पाया कि भीम पास में नहीं है। वह ढूँढ़ने के लिए बाहर निकला, अमावस की रात, घुप अंधेरा, हाथ को हाथ न सूझे। किसी प्रकार रसोई की ओर बढ़कर उसने आवाज़ दी, 'भीम भैया!' भीम ने कहा, 'हाँ, अर्जुन! मैं यहाँ

रसोईघर में हूँ।' अर्जुन अंधेरे में सँभलकर चलते हुए भीम के पास पहुँचा और पूछा, 'भैया, अमावस की अंधियारी रात में तुम खाना कैसे खा रहे हो?' भीम ने बताया कि वह तो रोज़ ही रात में आकर खाना खाता है। अर्जुन ने कहा, 'पर खा कैसे लेते हो, तुम्हारे हाथ का कौर मुँह में जाता है या नाक में?' भीम ने कहा, 'भैया! वह तो सीधा मुँह में जाता है।' 'पर कैसे?' भीम ने ज़वाब दिया, 'अरे भाई, रोज़ के अभ्यास से।'

'अभ्यास' – यही शब्द अर्जुन को गहन प्रेरणा दे गया। उसने अपना धनुष उठाया और रात के अंधेरे में ही निकल पड़ा लक्ष्य-संधान के अभ्यास के लिए। गुरु द्रोण की आँख खुलती है, धनुष की टंकार सुनकर वे बाहर आते हैं और कहते हैं, यह ज्ञान तो मैंने तुम्हें दिया ही नहीं कि रात के अंधेरे में कैसे तीर चलाया जाए, फिर यह अभ्यास तुमने कैसे शुरू किया। अर्जुन ने कहा, 'गुरुदेव, भीम भैया के शब्दों से प्रेरित होकर।' गुरु द्रोण ने पूछा, 'कौन से शब्द?' अर्जुन ने कहा, 'अभ्यास, निरंतर अभ्यास। जब भीम रात के अंधेरे में निरंतर अभ्यास के कारण भोजन खाना सीख गया तो मुझे लगा कि यह अर्जुन निरंतर अभ्यास करके रात्रि में लक्ष्य-संधान करना क्या नहीं सीख सकता?'

योग भी अभ्यास से जुड़ा हुआ है फिर चाहे वह अभ्यास आसन, प्राणायाम या ध्यान के रूप में किया जाए। अगर हम निष्ठापूर्वक, मनोयोगपूर्वक इसे करेंगे तो निश्चय ही आसन हमारे स्वास्थ्य और शरीर के लिए लाभदायी होंगे। प्राणायाम हमारे प्राणों के ऊर्जा-जागरण में मददगार बनेगा और ध्यान हमारे चित्त की वृत्तियों को निर्मल करने में, चित्त के भटकावों को रोकने में और चित्त को अध्यात्म-भाव की ओर आगे बढ़ने में सहायक होगा। इसके लिए आवश्यकता सतत अभ्यास की है।

पतंजलि कहते हैं अभ्यास और वैराग्य! वैराग्य अर्थात् अनासक्ति। वैराग्य का अर्थ केवल संन्यास लेना ही नहीं है। संन्यास का एक अर्थ वैराग्य भी है लेकिन संन्यासी होकर कुटियाओं को भी महल बनाने के लिए प्रयत्नशील हो जाओगे तो वह संन्यास वैराग्य नहीं होगा। इसलिए वैराग्य है अनासक्ति। अनासक्ति अर्थात् संसार में निर्लिप्त-भाव से ज़िओ। निर्लिप्तता हमें द्रष्टा-भाव की ओर ले जाती है और जो द्रष्टा होता है वह कुछ भी ग्रहण नहीं करता। न किसी कर्म को, न किसी कषाय को, न राग-द्वेष को। अनासक्ति व्यक्ति महायान को पार कर जाता है। आसक्ति ही संसार है और अनासक्ति ही मोक्ष है। आसक्ति का परिणाम है मृत्यु और अनासक्ति का परिणाम है मोक्ष। आसक्ति पुनर्जन्म के बीज बोती है, जबकि अनासक्ति जन्म-मरण की जड़ों को ही उखाड़ फेंकती है।

योग का विज्ञान इतना ही है कि आसक्ति छोड़ो, अनासक्ति का अमृतपान करो। ज़मीन पर रहो, पर ज़मीनों में उलझ मत जाओ। परिवार में रहो, पर परिवार के ही होकर मत रह जाओ। हमें कमल के फूल को हमेशा याद रखना चाहिए जो पानी में रहता है, मिट्टी के गारे में रहता है, फिर भी उससे ऊपर रहता है। यह जो ऊपर उठना है, इसी का नाम अनासक्ति है। यह अनासक्ति ही हमारे लिए मोक्ष का द्वार है।

ज्यादा हस्तक्षेप मत करो, ज्यादा टोकाटोकी मत करो, ज्यादा झुंझलाहट मत पालो। सहजता से जीओ। होनी को हो लेने दो। तुम होनी के हमसफ़र हो जाओ। ज्यादा मीनमेख निकालोगे, ज्यादा नुक्ताचीनी करोगे तो तय है कि तुम्हें प्रतिसंघर्ष ज्यादा करना पड़ेगा। तुम दूसरों की आलोचनाओं और आक्रोशों के ज्यादा शिकार बनोगे। तुम्हारे भाग्य का कौर कोई और नहीं ले सकता तथा किसी और के भाग्य का कौर तुम नहीं छीन सकते, फिर क्यों खुद को उलझाते हो। सहज रहो, सहजता से जिओ।

आपने हाकुइन की कहानी सुनी है – एक बार दो संत नदी किनारे से जा रहे थे। उन्होंने नदी किनारे के कीचड़ में फँसी हुई एक युवती को देखा। उन्होंने देखा कि वह युवती जितना बाहर निकलने का प्रयत्न करती उतनी ही कीचड़ में उलझती जाती। आखिर उस युवती ने उन जाते हुए संतों से गुहार की कि उसका हाथ थाम लें ताकि वह फिसलन भरी कीचड़ से बाहर निकल सके। पहले संत ने इनकार कर दिया और कहा कि यह उसके संन्यास के विरुद्ध है। वह किसी महिला को स्पर्श नहीं कर सकता। इसलिए उसका हाथ नहीं पकड़ सकता। ऐसा कह कर वह आगे बढ़ गया।

पीछे जो दूसरा संत आ रहा था – वह हाकुइन था। उससे भी महिला ने अनुरोध किया कि महात्माजी! आप इधर से जा रहे हैं, ज़रा मेरा हाथ पकड़ लें और मुझे इस कीचड़ से बाहर निकाल दें। आगे नदी गहरी है, मैं डूब जाऊँगी। संध्या का समय हो रहा है, मैं अकेली हूँ। संत ने कहा, 'ठीक है, लो मेरा हाथ पकड़ो और बाहर आ जाओ।' युवती ने हाथ पकड़ा और उठ खड़ी हुई, लेकिन फिसलन भरे कीचड़ का रास्ता बहुत लम्बा था। युवती संत का हाथ पकड़ आराम से चलने लगी और संत ने प्रेमपूर्वक वह रास्ता पार करवा दिया। आगे नदी आ गई। युवती का कद छोटा था। संत ने कहा, 'घबराओ मत, मैं तुम्हें उठाकर अपने कंधे पर बिठा लेता हूँ और इस तरह हम नदी पार कर लेंगे।' संत ने उसे नदी पार करवा दी। युवती अपने गाँव चली गई और हाकुइन अपनी यात्रा पर।

संध्या के समय जब दोनों संत मिले तो पहले वाले ने कहा, 'तुम अभी तक संन्यासी नहीं हुए। तुमने महिला को पकड़ा, उसका हाथ थामा, उसे कंधे पर बिठाया, यह सब करने वाला संन्यासी नहीं हो सकता। दूसरा संन्यासी हँसा और बोला, 'अच्छा, ये बात है, मैंने उसे उठाया, ले गया, पर मैं तो यह सब वहीं-का-वहीं छोड़कर आ गया, तुम तो उसको यहाँ तक ढोकर ले आए। तुम्हें एक बार फिर से संन्यास लेना चाहिए।' पहले ने कहा, 'अगर मैं संन्यासी नहीं हूँ तो तुम्हीं बताओ सच्चा संन्यासी कैसे हुआ जाता है?' तब दूसरे संत हाकुइन ने कहा, 'जीवन में होने वाली प्रत्येक घटना को साक्षी-भाव से देखकर उससे निकल जाना ही वास्तविक संन्यासी होना है।'

मैं इसे अनासक्ति कहूँगा। दिमाग में किसी बात को, किसी वस्तु को, किसी परिस्थिति को, किसी व्यक्ति को ढोना इसी का नाम आसक्ति है, जबकि परिस्थिति के अनुसार होने वाली घटना से गुजर जाना अनासक्ति है। मन में राग-द्वेष की वृत्ति नहीं जगनी चाहिए। राग-द्वेष ही कर्म के बीज हैं और कर्म ही हर जन्म-मरण का, सुख-दुःख का, हानि-लाभ का यश-अपयश का आधार है। सहजता और सचेतनता ही हर उठापटक से, हर ऊहापोह से, हर छातीकूटे से मुक्त होने के सीधे सरल मंत्र हैं।

अनासक्ति अर्थात् सहजता। एक ओर हम अनासक्त रहें, दूसरी ओर सहजता बनाए रखें। इन दो संतों के उदाहरण से समझें – एक ने तो उठाया, नदी पार करवाई और आगे बढ़ गया। उसके मन में उस महिला के बारे में कोई सोच-विचार नहीं है लेकिन दूसरा अभी तक उस बारे में, उसके औचित्य-अनौचित्य के बारे में चिंतन-मनन कर रहा है। साँझ हो जाने तक भी अभी वह उन्हीं विचारधाराओं में बह रहा है, यही है राग और द्वेष। हमारी जो पाँच वृत्तियाँ हैं, उनमें से राग और द्वेष दो प्रमुख वृत्तियाँ हैं। महावीर कहते हैं – व्यक्ति कर्म के कारण भटकता है। कर्म मोह से पैदा होता है और मोह राग और द्वेष से जन्म लेता है।

राग-द्वेष मूल आधार हैं। हम अपनी वृत्तियों का निरोध करना चाहते हैं तो अपनी राग-द्वेषजनित वृत्तियों का निरोध करना होगा। राग-द्वेष के निरोध के लिए साक्षी-भाव में आना होगा, और साक्षी-भाव के लिए स्वयं को हस्तक्षेपों से, टोकाटोकी से मुक्त करना होगा। अच्छा होगा हम यह संकल्प ले लें, यह जागरूकता अपने भीतर स्थापित कर लें कि मैं टोकाटोकी नहीं करूँगा, राग-द्वेष में नहीं उलझूँगा। किसी का जन्म होना या किसी का मरण होना प्रकृति के हाथ में है। मैं भी

प्रकृति का एक हिस्सा हूँ। प्रकृति का धर्म परिवर्तनशीलता है। यह धर्म मुझ पर भी लागू होता है, हर जन्मने वाले पर लागू होता है। फिर मैं क्यों उलझूँ। गीता कहती है : सोचो, सोच-सोचकर सोचो कि तुम अपने साथ क्या लाए और क्या ले जाओगे। जीव अकेला आता है, अकेला जाता है। ये सब तो बीच के कारवाँ हैं और कारवाँ आखिर तो बिखर जाने को ही होता है।

मेरे भाई, जो हो रहा है उसे होने दो। हस्तक्षेप मत करो। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में सहजता से गुजर जाना ही वैराग्य और अनासक्ति है। हमसे जुड़ी हुई एक साधिका हैं – विजया जी। कुछ साल पहले की बात है। वे हमारे पास आई और उन्होंने बताया कि वे सात दिन गुरु-सान्निध्य में रहेंगी। वे जॉब करती हैं। अतः जितनी छुट्टी मिलती है उसके अनुसार हमारे पास आकर ध्यान-साधना करती हैं। उन्हें आए हुए दो दिन ही हुए थे कि उनके भाई का फोन आया कि तुम्हारे घर में चोरी हो गई है, वापस आ जाओ और जो रिपोर्ट वगैरह करना है कर दो, क्या-क्या सामान चोरी गया है आकर देख लो। उसने अपने भाई से कहा – मैं तो सात दिन बाद, जब वापसी की टिकिट है तभी आऊँगी जो भी आप कर सकते हो, कर लेना। मैंने भी कहा – अगर आप जाना चाहें तो चली जाएँ, दो दिन बाद पुनः वापस आ जाइएगा। उन्होंने कहा – अरे, आप कैसी बात कर रहे हैं, जिस परिग्रह को मैं छोड़ नहीं पा रही थी; उस चोर का शुक्रिया अदा करना चाहिए कि उसने उस परिग्रह को मुझसे छुड़वा दिया। जो चला गया सो चला गया। मैं यहाँ सात दिन की साधना के लिये आई हूँ, मैं साधना-भाव में हूँ और मुझे अपने साधना-भाव में रहने दीजिए।

वे रुकी रहीं। मैंने देखा कि उस चोरी के बाबत उन्होंने कोई चर्चा भी नहीं की और भाई को भी कह दिया कि इस संबंध में दुबारा फोन भी न करें। मैंने पाया कि वे सात दिनों तक उसी साधना-भाव में तत्पर रहीं। जब सातवें दिन वे जा रहीं थीं तब मैंने अन्तर्मन से उन्हें साधुवाद दिया। उनकी तितिक्षा, उनके धैर्य और अपरिग्रह-भाव ने मुझे आत्मविभोर कर दिया। मुझे लगा कि इसे कहते हैं अनासक्ति, यह है साधना-भाव, इसे कहते हैं सहज वैराग्य-दशा।

जो जीवन में आने वाली प्रतिकूल घड़ियों में भी अपना साधना-भाव स्थिर रखता है वही वैरागी हो सकता है। साधना के लिए इसी भाव की ज़रूरत है। केवल संन्यास ले लेना ही वैरागी बनने के लिए पर्याप्त नहीं है। साधु भी वैरागी होते होंगे, पर सच्चा वैराग्य वही है जो हमारे जीवन से मोह, मूर्च्छा, परिग्रह के प्रति हमारी आसक्ति को हटाए, कम करे।

प्रत्येक व्यक्ति में कमियाँ और दोष होते हैं। कोई भी पूरी तरह दूध का धुला नहीं होता। लेकिन यदि हम कमियों और दोषों को ही गिनते-निकालते रह गए तो किसी का भी सम्मान और सदुपयोग नहीं कर पाएँगे क्योंकि गुण-दोष तो सभी में होते हैं। हाँ, अगर हम विशेषताओं पर ध्यान देंगे तो उन विशेषताओं को याद करके उसकी कमियों को क्षमा करके आगे बढ़ सकते हैं। यह हम पर है कि हम अच्छाइयों को मूल्य देते हैं या कमियों पर नज़र डालते हैं। सकारात्मक सोच और साधना-भाव में जीने वाला कमियों और दोषों को क्षमा कर विशेषताओं का सम्मान करता है। ऐसा करना सम्यक् दृष्टि पाना है, सम्यक्त्व धारण करना है।

साधना की दृष्टि बहुत गहरी होती है, बाह्य उथल-पुथल में उसे नहीं देखा जा सकता। साधना की गहराई को समझने वाले ही समझ सकते हैं। यदि वह किसी के प्रति टिप्पणी करेगा तो उसे अहसास रहेगा कि उसने ग़लत किया और उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था। जो ग़लत है उसका समर्थन न करें व अच्छाइयों का सम्मान करना सीखें। जब भी हम साधना करें तो यह बोध रखें कि –

जब मैं ध्यान कर रहा हूँ, साधना कर रहा हूँ, तब परिवार, समाज, व्यापार संबंधी बातों को अपने दिल से हटाकर ध्यान के लिए बैठ रहा हूँ। अगर ध्यान करते हुए बार-बार उनकी याद आती है तो हम आतापी होकर, संप्रज्ञाशील होकर, आत्म-स्मृतिमान होकर नहीं बैठे हैं, बस केवल बैठ भर गए हैं। हमें भान होना चाहिए कि हम अपने चित्त की शांति और निर्मलता के लिए ध्यान कर रहे हैं। इसके अलावा सब मन की खटपट है। यादें आना, उनके प्रति क्रियाशील होना मन की खटपट है। ध्यान करने वाला पहले चरण में ही शांति के द्वार से भीतर प्रवेश करता है। अपनी ज्ञान और बोध-दशा को बरकरार रखते हुए ध्यान के आसन पर आसीन हो रहा है। तब वह अपने भीतर की प्रत्येक वृत्ति के प्रति, प्रत्येक उदय-विलय के प्रति पल-पल जागरूक रहता है। साथ ही यह बोध भी रखता है कि मैं अपने भीतर की शांति, मौन और साक्षात्कार के लिए योग और ध्यान कर रहा हूँ।

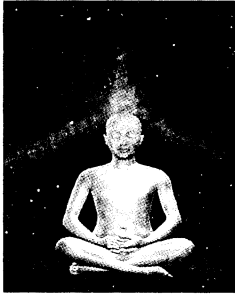
जिनके भीतर यह बोध नहीं होता उन्हें हर बार प्राणायाम करके अपने चित्त को लयलीन बनाना पड़ता है। जिन्हें बोध गहरा होता है वे सहज में ही पलकें खुली हों या बंद, वे हर वक्त अपने चित्त की शांति के प्रति जागरूक रहते हैं। बोध, ज्ञानदशा, होशदशा, जीवन के दैनंदिनी कार्यों के प्रति हमेशा सजग रहते हैं। अगर पसीना भी बह रहा है तब भी उसकी प्रत्येक बूँद के प्रति वह जागरूक है कि यह है शरीर का स्वभाव। साधक का पहला और आखिरी चरण है बोध। बोध रखने पर ध्यान के पहले भी और ध्यान के बाद भी अपनी वृत्तियों का निरोध करने में सफल हो

सकेंगे। घंटा दो घंटा ध्यान कर लेने भर से कोई मुक्त नहीं हो सकता। आप जानते हैं महावीर को भी साढ़े बारह वर्ष तक तपस्या करनी पड़ी, बुद्ध भी छः वर्ष तक लगातार तपस्या करते रहे। हम क्या करते हैं? उन्होंने तो अपना सब कुछ होम कर दिया, सतत लगे रहे। हम तो योग की बातें ज्यादा करते हैं और वे लोग योग ज्यादा करते थे। हम तो दो बैठक करके ही खुद को ध्यानी और योगी समझने लगते हैं। उन्होंने ध्यानयोग के लिए अपने प्राणों को खपा दिया। उन्होंने केवल ध्यान योग में प्रवेश नहीं किया, वे उसमें डूब गए, खो गए, लीन हो गए। और तब जो प्रकट हुआ वह योग नहीं, अनुत्तर योग था, बोध नहीं संपूर्ण संबोधि था। उनके पास केवल खुद का ही नहीं, चराचर का संपूर्ण ज्ञान था। खुद की ही नहीं, सारे जगत की समस्याओं का समाधान था।

योग कोई दो-चार बैठकों से नहीं सधता। जब हम इसे धूप और छाया की तरह अपने जीवन से जोड़ते हैं, अपने तन-मन की हर तरंग को योगमय बनाते हैं, तभी समाधि और संबोधि का प्रकाश हमारे भीतर साकार होता है। योग हमें अभ्यास और वैराग्य तो देता ही है, इन दोनों को साधने का मार्ग भी देता है। हमें अपने व्यावहारिक जीवन में भी योग का बोध बनाए रखना है कि मुक्ति मेरा लक्ष्य, निर्वाण मेरा लक्ष्य है। मुझे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना है। वृत्तियों से मुक्त होना है, न कि इनमें उलझे रहना है। हम अपनी ओर से भरपूर प्रयास करें। गलती होना स्वाभाविक है, लेकिन उसे बार-बार दोहराएँ नहीं, उसे धो डालें। विरक्ति का भाव रखें। बोध और होश को बनाए रखें। सतत स्मरण रखें कि हम योग और ध्यान के प्रति निष्ठाशील हैं। हमारे कदम सदा अध्यात्म के प्रकाश की ओर हों।

आज के लिए इतना ही,

नमस्कार।



कैसे तोड़ें अज्ञान का चक्रव्यूह

मेरे प्रिय आत्मन्,

प्राचीन कहानियाँ प्रतीकात्मक होती हैं। उनकी प्रामाणिकता और इतिहास इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितनी कि उन कहानियों और प्रसंगों के पीछे छिपी प्रेरणा की भावना है, उद्देश्य है। हम उनमें छिपे हुए सत्यों से, आदर्शों, प्रेरणाओं का प्रकाश हासिल करें।

महाभारत की प्राचीन कहानी है कि अभिमन्यु और अन्य पाँडव बंधु युद्ध के मैदान में पहुँच चुके हैं और कौरवों की ओर से पाँडवों को परास्त करने के लिए एक विशिष्ट व्यूह-रचना की गई है। धनुर्धारी अर्जुन को जरासंध भरमाकर दूसरी दिशा में ले गया है। पाँडवों ने जब देखा कि इस व्यूह-रचना में वे परास्त हो जाएँगे तभी अभिमन्यु खुद ही कहता है, 'काकाश्री, मैं व्यूह-रचना में प्रवेश करना तो जानता हूँ पर उससे बाहर निकलना नहीं जानता।' पाँडव कहते हैं, 'कोई दिक्कत नहीं है, हम तुम्हारे साथ हैं, तुम व्यूह-रचना को तोड़ते हुए आगे बढ़ो, हम पीछे चलते हैं।' अभिमन्यु हिम्मत करके उस व्यूह-रचना में प्रविष्ट हो जाता है। वह व्यूह-रचना इस तरह की थी कि अन्य पाँडव बंधु उसमें कदम नहीं रख पाते और व्यूह-रचना बंद कर

दी जाती है। अभिमन्यु अकेला आगे बढ़ता जाता है। वह अकेला रह जाता है, फिर भी साहस के साथ कौरवों से युद्ध करता है। यहाँ तक कि द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण सभी के साथ मुकाबला करने की कोशिश करता है, लेकिन अन्ततः वह वीरगति को प्राप्त हो जाता है।

इस कहानी को हम अपने जीवन में प्रतीकात्मक रूप से ग्रहण करेंगे। जैसे अभिमन्यु व्यूह-रचना में उलझ गया, वैसे ही हम सभी लोग भी अपने-अपने चित्त के जंजालों में उलझ जाते हैं। हम उसमें कदम रखना तो जानते हैं, प्रवेश तो कर जाते हैं, पर उसमें से वापस बाहर कैसे निकला जाए यह नहीं जानते। अधिकांश लोग यह कहते मिल जाएँगे कि उन्हें गुस्सा, क्रोध बहुत आता है और जानना चाहते हैं कि इसे कैसे शांत किया जाए। अर्थात् व्यक्ति अपने चित्त के जंजालों में कदम रखना तो जानता है पर उसमें से वापस कैसे बाहर निकला जाए यह नहीं जानता। चित्त के बहुत से विकार और उपद्रव हैं जिनमें क्रोध भी एक है। चाहे बालक हो या वृद्ध सभी की शिकायत है कि उसे गुस्सा आता है। मैं देखता हूँ कि गुस्सा सर्वव्यापी रोग बन चुका है। समृद्धि तो सभी चाहते हैं लेकिन लगता है समृद्धि तो गुस्से में आई है। इस क्रोध के कारण ही आज का व्यक्ति तनाव में है।

क्रोध के कारण ही व्यक्ति व्यक्ति से टूट रहा है, परिवारों का विघटन हो रहा है, यहाँ तक कि समाज और देश भी टूटन से ग्रस्त हो रहे हैं। हिंसा और अराजकता बढ़ रही है, आत्महत्याएँ हो रही हैं। चाहे गुस्सा हो, चाहे माया या लोभ हो या अन्य प्रपंच हों, राग-द्वेष हों, ये सभी चित्त के जंजाल हैं। हम सभी अपनी-अपनी वृत्तियों के चक्रव्यूह में उलझे हुए हैं। समस्या यह है कि कोई भी अपनी वृत्ति को समझने की कोशिश ही नहीं करता और समाधान भी दूसरे के द्वारा चाहता है। खुद की समस्या का समाधान दूसरों से कैसे करवाओगे। दूसरा हमारी समस्याओं का कारण नहीं जान सकता। हम खुद ही उन कारणों से रू-ब-रू होते हैं जो हमारी समस्याएँ निर्मित करते हैं।

हमें क्रोध दूसरों की गलती पर आता है, खुद की गलती पर नहीं। जिस दिन हमने स्वयं की गलती पर क्रोध किया हमारी जिंदगी ही बदल जाएगी।

कहते हैं एक व्यक्ति जैन विद्यालय में पहुँचा। वहाँ ध्यान-साधना के पाठ सिखाए-पढ़ाए जाते थे। उसने वहाँ के गुरु से कहा, 'कृपया मुझे बताइये मैं कौन हूँ। इसका मुझे परिचय और ज्ञान दीजिए।' गुरु ने इतना सुनते ही उसे अपने विद्यालय से हाथ पकड़कर बाहर निकाल दिया। उसे गुस्सा आ गया, सोचने लगा - यह क्या

तरीका हुआ, मैं तो जानकारी चाहता था, मेरा तो प्रश्न ही आध्यात्मिक था, मुझे आध्यात्मिक जिज्ञासा थी कि मैं जानूँ मैं कौन हूँ, प्रश्न का उत्तर तो दिया नहीं, धक्के मारकर बाहर कर दिया।

वह मुख्य गुरु के पास गया और उनसे शिकायत की, 'भन्ते! मैंने आपके शिष्य से पूछा कि मैं कौन हूँ, इसका ज्ञान देने के बजाय उन्होंने मुझे धक्के मारकर बाहर निकाल दिया। गुरु उसकी बात सुनकर हँसा और कहा – मेरे शिष्य ने बिल्कुल ठीक किया। क्योंकि तुम्हारा सवाल ही ऐसा था। उस व्यक्ति ने कहा – मैंने ऐसा कौन-सा सवाल कर दिया? गुरु ने कहा – मूर्ख, जो सवाल तुझे खुद से करना चाहिए था वह तू मेरे शिष्य से पूछ रहा है? भला इस प्रश्न का ज़वाब मेरा शिष्य कैसे दे सकता है? जानना है स्वयं को और पूछ रहे हो दूसरे से?

समस्या यही है कि हम स्वयं से नहीं पूछते। गुरु ने कहा – इस सवाल का ज़वाब चाहते हो तो एकांत में जाकर बैठो और पलकें झुकाकर भीतर की आँखों को खोलो और ध्यानस्थ होकर यह सवाल तब तक स्वयं से करते रहो जब तक तुम इस सवाल के ज़वाब से संतुष्ट न हो जाओ।

हम सभी वृत्तियों के व्यूहचक्र में उलझे हुए हैं। हरेक व्यक्ति स्वयं से ही बंधा और घिरा है। संसार के सभी संबंध इन घेरों के चलते ही निभाए जाते हैं वरना कौन किसका? जन्म के साथ माता-पिता हो सकते हैं, लेकिन पत्नी कब आई, पति कब आए? पति-पत्नी तो बीच का संयोग है लेकिन हम उन संबंधों को ढोते रहते हैं। ये संबंध वृत्तियों का मोहजाल और चक्रव्यूह है। इसमें व्यक्ति घुस तो जाता है लेकिन चाहकर भी बाहर नहीं निकल पाता। कितनी अजीब बात है, व्यक्ति शादी तो पच्चीस वर्ष की उम्र में करता है लेकिन ताउम्र उस संबंध को निभाता और ढोता रहता है।

भगवान महावीर का एक सिद्धांत है— लेश्या अर्थात् वृत्तियाँ। मन की, वाणी की, काया की वृत्तियाँ जो हमें अपने घेरे में घेर ले, लेश्या है। अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की वृत्तियाँ हो सकती हैं। महर्षि और महान पुरुष जो भी हुए हैं – वे स्वयं की मुक्ति का मार्ग देखते हैं और हम सांसारिक प्राणियों को भी वह मार्ग देते हैं। मार्ग यही है कि व्यक्ति भीतर की वृत्तियों और संस्कारों के जाल से कैसे बाहर निकले।

व्यक्ति तभी बाहर निकल पाता है जब जीवन में कोई बड़ी ठोकर लगे। वह ठोकर जो उसकी आत्मा को जगाए, उसके दिल को बदले, यहाँ तक कि उसके स्वभाव में प्रवेश कर जाए। महावीर का विवाह हुआ, उनके बच्चे भी हुए, लेकिन महावीर ने जब अपने माता-पिता की चिताओं को देखा तो उनकी सोई हुई चेतना

जग गई कि यह शरीर तो नाशवान है, सबका शरीर तो जल ही जाना है। ओह, मैं व्यर्थ ही अपनी पत्नी और बच्ची के मोह में उलझा हुआ हूँ। मेरे माता-पिता मेरे मोह में उलझे हुए थे, मुझे निकलना चाहिए। मुझे मोह की जंजीरों को काटना होगा, और उस ओर बढ़ना होगा जहाँ मुक्ति का स्वाद मिलता हो। महावीर निकल गए। उन्हें ठोकर लगी। भर्तृहरि को ठोकर लगी अमृतफल से। वह अमृतफल जो उन्हें किसी सौदागर ने दिया था कि अपने किसी प्रिय को देना। अपनी पत्नी से अत्यधिक प्रेम करने वाले भर्तृहरि ने वह फल पत्नी को दे दिया। पत्नी का प्रेम महावत से था, उसने महावत को दे दिया। महावत का प्रेम गणिका से होता है। गणिका ने फल पाकर सोचा – मैं अभागिन इस अमृतफल को खाकर क्या करूँगी? इसका सही हकदार तो हमारा नेक-नीयत राजा है। फल लौटकर भर्तृहरि के पास आ जाता है। भर्तृहरि चौंक गए, उस फल को देखकर उन्हें ठोकर लगी – अहो, जिस पत्नी के लिए मैं दिन-रात बेचैन रहता था, मैं नहीं जानता कि वह तो मुझ से इतनी विरक्त है!

ठोकर! जिंदगी में इंसान को ठोकर लगनी ही चाहिए! एक ठोकर अठारह पुराणों से कहीं ज्यादा ताकत रखती है। हे प्रभो! तू इंसान को जिंदगी में एक ठोकर अवश्य दे। पुस्तकें पढ़कर ज्ञानी नहीं हुआ जा सकेगा, सत्संग सुनने से भी व्यक्ति ज्ञानी नहीं होगा। उसे ज्ञान तभी होगा जब जीवन में कोई बड़ी ठोकर लगेगी। वह अज्ञानी और मूढ़ है जो ठोकर खाकर भी नहीं जगता। वह बार-बार एक ही पत्थर से ठोकर खाता रहता है, फिर भी नहीं संभलता। ज्ञानी वही है जो एक बार की ठोकर से संभल जाता है और अज्ञानी बार-बार ठोकरें खाया करता है। ठोकरें ही इंसान को जगाती हैं, इंसान की जिंदगी बदलती हैं। जिसने अपनी जिंदगी में जितनी ठोकरें खाई वह उतना ही पका हुआ घड़ा कहलाएगा। हर ठोकर अपने आप में एक वेद है, एक पुराण है, एक कुरआन है। ठोकर एक जीता-जागता शास्त्र है। ठोकर अपने आप में एक गुरु है। समझदार व्यक्ति या तो खुद ठोकर खाकर संभल जाता है या दूसरों को ठोकर खाते देखकर उनसे जीवन की समझ ले लेता है। जो ठोकर खाकर भी न संभले, ठोकर-पर-ठोकर खाता जाए, उसे अज्ञानी न कहेंगे तो और क्या कहेंगे? वह अज्ञानी भी है और मूर्च्छित भी। इस दुनिया में तो जो जागे सो ही जागे, बाकी तो सब सोए ही रहे। सोए भी ऐसे कि कुंभकर्णी निद्रा टूट ही न पाई।

ठोकर तात्कालिक होती है। ठोकर लगते ही आप बदल गए तो बदल गए वरना सोचते रहे तो कभी कुछ नहीं हो पाएगा। हमारे यहाँ एक शब्द है – ‘मसानिया बैराग।’ बड़ा ज़बर्दस्त शब्द है यह। जब श्मशान में किसी को फूँकने जाते हैं तब तो देह की नश्वरता और संसार की असारता की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, कुछ विरक्ति

भी उत्पन्न होती है लेकिन थोड़े दिन बीतते-न-बीतते वही वापस पुराने ढर्रे पर आ जाते हैं। ठोकर लगी भी, लेकिन कुछ हासिल नहीं हुआ। सोचते रहने पर आज तक कोई कुछ नहीं कर पाया है। जो करना है अभी और तुरंत कर डालो। नहीं तो केवल देखते ही रह जाओगे।

ठोकर लगने पर इंसान जगता है, निमित्त मिलने पर इंसान बदलता है। रोज-रोज ठोकर नहीं लगती, रोज-रोज निमित्त नहीं मिलते। यह तो कभी-कभी ईश्वर के घर से संकेत होता है कि बंदे संभलना है तो संभल जा, वरना ठोकरें खाते-खाते ही मर जाएगा। जब जागें, तभी सवेरा। एक तो सूरज सवेरे का संदेश लाता है, दूसरा आपके जागृत होने से सवेरे का संदेश मिलता है। जन्म वह नहीं है जो माँ-बाप देते हैं असली जन्म वह है जो हम खुद को खुद देते हैं। जब हमने स्वयं को नया जीवन दिया तो वह है सच्चा जन्म। मरने से पहले स्वयं को जन्म अवश्य दे दें। यही जीवन की दीक्षा है। जीवन को पाना सच्चा जन्म नहीं है, जीवन को बदलना सच्चा जन्म है। धुएँ की तरह जिए तो क्या जिए? धुएँ की तरह धूँ-धूँ कर जीना तो मरने से बदतर है। दीपक की तरह जलना, प्रकाशित होना ही व्यक्ति की सच्ची साधना है।

हम सोचें - अगर हमारी जिंदगी में केवल एक ही दिन बचा हो जीने के लिए तो हम कैसे जीना चाहेंगे? अपना दिन क्या आलस्य में बिताएँगे, रोते-बिलखते-सोते हुए बिताएँगे या हम पूरा दिन सार्थक बनाएँगे? सुबह उठकर पूजा-पाठ भी करेंगे, प्रार्थना भी करेंगे, मित्रों से मिलेंगे, परिवार को एकत्रित कर खाना भी खिलाएँगे, थोड़ा घूमने-फिरने भी जाएँगे। कुछ अच्छी पुस्तक या शास्त्र भी पढ़ना पसंद करेंगे। दिन भर में अनेक काम कर डालेंगे। क्योंकि आज जीवन का आखिरी दिन है। भला जब भगवान फ्री में इतने दिन दे देता है तो दिनों की कोई क्रीमत नहीं होती। अगर भगवान हर दिन की क्रीमत ज्यादा न सही, केवल 500 रुपए भी लेना शुरू कर दे तो जैसे दैनगी पर लगाए गए मजदूर के हर घंटे का उपयोग करने के प्रति आप सजग रहते हैं, वैसे ही आप अपने हर दिन, हर दिन का हर घंटा, शायद मिनट-टू-मिनट का भी उपयोग करेंगे।

शुल्क लगते ही आदमी संभल जाता है। फीस से ही डॉक्टर की क्रीमत होती है और फीस से ही वकील की। अरे भाई, जीवन की भी फीस होनी चाहिए। जब एक डेमेज गुर्दे को नया लगाओ तो दस लाख की फीस चुकानी पड़ती है और हार्ट ब्लॉक हो जाए तो हार्ट सर्जरी की 5 लाख फीस लगती है। जितनी बड़ी फीस, वह चीज उतनी ही क्रीमती।

अब तो हर चीज़ बिकती है और जब व्यक्ति क्रीमत चुकाता है तो उसकी कद्र भी करता है। जो मुफ्त में मिलता है उसे कोई ढंग से न तो सीखता है और न ही याद भी रखता है। ढेरों योग-केन्द्र शुल्क वसूल कर जो भी सिखाते हैं वह बहुत अच्छा लगता है, उसमें गरिमा भी नज़र आती है, स्टेटस दिखाई देता है। लेकिन वही फ्री में हासिल हो जाए तो फोकटिए की क्रीमत फोकट जितनी ही होती है। मिट्टी का ढेला फोकट में मिलता है, तो देख लो धूल की क्रीमत कितनी होती है। सोने का ढेला हज़ारों का होता है, तो उसकी क्रीमत भी हज़ारों में होती है।

व्यक्ति जानता है कि अगर धन खर्च करके साँस लेने का तरीका भी सिखाया जाए तो गर्व से सीखोगे। विदेशों में साधु-संत प्रवचन भी देते हैं तो लोगों को टिकट लेकर ही प्रवेश मिलता है और यहाँ गली-सड़क-चौराहों पर भागवत् और सत्संग चलते रहते हैं, तो न तो उनको कोई ज़्यादा तवज़्जो दी जाती है और न ही उनको जीवन में उतारा जाता है। दुनिया का रिवाज़ है : फोकट को फैंका जाता है और रोकड़ को समेटा जाता है।

जीवन में लगने वाली ठोकर अपने-आप में एक अवसर है और अवसर अपने-आप में ही एक पूंजी है। जो अवसर का उपयोग करते हैं, वे अवसर से जीवन की पूंजी कमा लेते हैं। जो अवसर का उपयोग नहीं करते उनकी जेब फटी-की-फटी रह जाती है।

व्यक्ति जीवन को सार्थक दिशा तब ही दे सकेगा जब ठोकर लगेगी या मूल्य चुकाना पड़ेगा अर्थात् कोई-न-कोई ख़ास घटना या ख़ास त्याग होगा तभी व्यक्ति अपने जीवन को सार्थक आयाम देगा। सार्थक आयाम देने वाला व्यक्ति ही चित्त के जंजालों से मुक्त होने का पुरुषार्थ कर सकेगा। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा हम अपने चित्त की वृत्तियों पर अंकुश लगा सकते हैं, ध्यान और योग साध सकते हैं। कुछ वृत्तियाँ तो ठोकर लगने से कट जाती हैं, पर जीवन में रोज़-ब-रोज़ तो ठोकर नहीं लग सकती क्योंकि हमारे चित्त में जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों का ऐसा घनत्व है कि उन्हें काटने के लिए ध्यान के सघन अभ्यास की आवश्यकता है। पतंजलि कहते हैं ध्यान के द्वारा हम अपने चित्त की क्लेशकारी वृत्तियों का क्षय कर सकते हैं।

हम देखें कि वृत्तियाँ क्या हैं, वे कैसी होती हैं, उनका प्रभाव कैसा होता है? चित्त के भीतर उठने वाले संस्कारों के घनत्व का नाम ही वृत्ति है। वृत्ति वह है जो हमें कार्य करने की प्रेरणा देती है। हमारे भीतर से जो दबाव बनाते हैं वह दबाव वृत्ति है। हमारी प्रवृत्ति को जो करने की प्रेरणा दे वह वृत्ति है। प्रवृत्ति पौधे की तरह है और

वृत्ति है बीज की तरह। तीन शब्द हैं – वृत्ति, प्रवृत्ति और निवृत्ति। वृत्ति की प्रेरणा से प्रवृत्ति होती है। वृत्ति और प्रवृत्ति के अंतर्द्व द्व से ऊपर उठ जाने का नाम निवृत्ति है।

वृत्तियाँ दो प्रकार की होती हैं– क्लेशकारी और अक्लेशकारी। क्लेशकारी वृत्तियाँ वे होती हैं जिनके उदय से हमारे चित्त में क्लेश, दुःख और संत्रास मिलता है। हम चिन्ता और तनाव में आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान से घिर जाते हैं – यह हैं क्लेशकारी वृत्तियाँ। क्लेशकारी वृत्तियाँ भी पाँच प्रकार की होती हैं –

पहली है : अविद्या। यानी सत्य को सत्य न जानना, असत्य को असत्य न जानना बल्कि सत्य को असत्य और असत्य को सत्य जान लेने का नाम ही अविद्या है। शरीर को आत्मा और आत्मा को शरीर मान लेने का नाम ही अविद्या है। शरीर को शरीर मानो और आत्मा को आत्मा जानो– इस ज्ञान का नाम विद्या है। शरीर और आत्मा भिन्न तत्त्व हैं– भिन्न घटक हैं– यह वह ध्यान के द्वारा ध्यान के समय जाने। काया की प्रेक्षा-अनुप्रेक्षा करते हुए इस भेद-विज्ञान को जाने। व्यवहार में तो हम कह देते हैं कि हम वस्तुओं से, वस्त्रों से या मकान, घर, दुकान से अलग हैं पर क्या वाकई में अलग हो पाते हैं? जब भी बोलेंगे तो ‘मैं’ और ‘मेरा’ जुड़ ही जाएगा। कहने को तो अलग हैं, पर ‘मैं’ और ‘मेरे’ का आरोपण, हर वस्तु, हर जगह, आँगन-स्थान के प्रति बना रहता है। ध्यान और योग हमें यह सिखाता है और प्रक्रिया भी देता है कि सबसे स्वयं को अलग देखो। अभी शरीर और आत्मा की बात ही नहीं है। पहले कपड़ों से स्वयं को अलग देखो। मेरे का आरोपण होने के कारण ‘मेरा कपड़ा’, अन्यथा मेरा कपड़ा कहाँ है? कपड़ा तो सूत का है। हकीकत में इसे अपने बोध और ज्ञान में जानो कि कपड़ा मुझसे अलग है। साधक जब ध्यान में बैठे तो जाने कि जहाँ वह बैठा है वह ज़मीन पहले भी थी और उसके जाने के बाद भी ज़मीन वहीं रहेगी। यह ज़मीन मेरी नहीं है, ज़मीन सिर्फ ज़मीन है। ममत्व के आरोपण के कारण मेरी दिखाई देती है, वरना मेरा कुछ भी कहाँ है। ध्यान करने वाला इस बोध को रखता है कि सब कुछ मुझसे अलग है। यह भेद-विज्ञान ही व्यक्ति को अविद्या से विद्या की ओर लेता है। जैसे हंस नीर-क्षीर का विवेक रखता है वैसे ही साधक, ध्यानी, योगी, जागरूक व्यक्ति हर चीज़ को ज्ञान में अपने से भिन्न देखता है। ममत्व नहीं होता, इसलिए वस्तु का, स्थिति का, परिस्थिति का, व्यक्ति का, पदार्थ का प्रभाव नहीं पड़ता। दोनों स्थितियों में सहज रहता है। आसक्ति नहीं रह पाती, वृत्तियों का दबाव नहीं बन पाता और इसी तरह वृत्तियाँ क्षीण होती हैं। इसलिए वस्तुओं को भिन्न देखने का अभ्यास करो। जब वस्तुएँ भिन्न नज़र आने लगेंगी तब माता-पिता, भाई-बहिन, पत्नी-बच्चे इनसे भी स्वयं को भिन्न देखने का अभ्यास करने लग जाएंगे। तब

वास्तविक रूप से अपनी अन्तर्दृष्टि में यह ज्ञान साकार होने लगेगा कि हम सब भिन्न हैं। हम जानने लगेंगे कि माता-पिता हमें जन्म देते हैं, जन्म के माध्यम हैं। अन्यथा जन्मों से यही होता चला आ रहा है, कुछ दिनों का संयोग मिलता है, फिर नई दुनिया की ओर चल पड़ते हैं। हर जीव किसी अज्ञात लोक से आता है और फिर वापस किसी अज्ञात लोक की ओर चला जाता है। यही संसार का सत्य है।

हम सभी को इसका बौद्धिक ज्ञान तो है लेकिन वास्तविक तौर पर नहीं है। यदि हक़ीकत में यह ज्ञान हो जाए तो आसक्ति टूट जाए। जीवन, जगत, व्यवस्था, परिस्थिति, व्यक्ति, वस्तु, पदार्थ के प्रति अपने आप आसक्ति और मोह टूट जाए। संग-साथ है तो आनन्द ले रहे हैं अन्यथा यह तो छूटने-टूटने ही वाला है। नदी-नाव संयोग है। जब हम संबंधों को अलग देखने में समर्थ हो जाते हैं तो अपने शरीर को भी अपने से अलग देखने में समर्थ हो सकते हैं। जान सकते हैं कि यह शरीर और आत्मा भी भिन्न हैं। यह शरीर भी एक-न-एक दिन छूट जाने वाला है। जिन इन्द्रियों से प्रेरित होकर शुभ और अशुभ कर्म करते रहते हैं वे सब इस शरीर के साथ ही छूट जाने वाली हैं। यह मन का भी भ्रम और विभ्रम है कि एक को देखकर मन को अच्छा लगता है और एक को देखकर मन को बुरा लगता है। इस उठापटक को देखकर धीरे-धीरे मन यह जानने लगता है कि जब शरीर ही अपना नहीं है तब क्या अपना है।

बुद्धि ने तो जान लिया कि यह शरीर नश्वर है लेकिन अनुभूति के तल पर, अन्तर्दृष्टि में, अन्तर्ज्ञान में, हमारी संप्रज्ञाशीलता में अभी तक यह ज्ञान नहीं आ पाया है कि शरीर हमसे जुदा है, भिन्न है, एक-न-एक दिन यह श्मशान का मुसाफिर हो जाने वाला है। इसलिए भेद-विज्ञान अविद्या से विद्या की ओर बढ़ने का मार्ग है। अज्ञान को तोड़ने का एक ही मार्ग है व्यक्ति आतापी बने, तपस्वी बने। वह अपनी ज्ञान-दृष्टि को हर समय जागरूक बनाकर रखे। ज्ञानी होकर जिए, पंडित होकर नहीं। शास्त्रविद् न बने, ज्ञानी बने। ज्ञानी होने के लिए बहुत अधिक पुस्तकें पढ़ने की ज़रूरत नहीं है, खुद की जागरूकता बनाकर, स्मृति जगाकर, स्वयं की मुक्ति की भावना को रखकर उसके प्रति संजीदा होकर जिएँ। इन्हीं से व्यक्ति मुक्त होगा।

श्रीमद् राजचन्द्र के बालवय की घटना है। उनके किसी दूर के रिश्ते के चाचा का निधन हो गया था। घर के लोग उस शव को लेकर श्मशान की ओर चले। बालक राजचंद्र भी पीछे हो लिया और एक पेड़ पर चढ़ गया। वहाँ से देखने लगा कि क्या हो रहा है, ये लोग क्या कर रहे हैं। उसने अपने चाचा की चिता सजते हुए देखी, मुखाग्नि

देते हुए देखा। वह चिता सुलगते हुए, शरीर को जलते हुए देखता है, राख देखता है, राख के फूलों को इकट्ठा करते हुए देखता है। उनको देखते उसे बोध हो जाता है कि शरीर नश्वर है, जाने वाला है, देह मरणधर्मा है, एक-न-एक दिन बिखर जाने वाला है। सबका परिणाम राख है, इसके प्रति आसक्ति और मोह व्यर्थ है। वहीं से अविद्या के बीज में से विद्या के बीज का अंकुरण होता है क्योंकि यह घटना वास्तव में घटी, ठोकर लगी, निमित्त बना और भीतर की आँख खुली, भीतर का सम्यक्त्व जगा और तब राजचन्द्र का जन्म हुआ। उन्होंने शुरू से ही शरीर को भिन्न जाना। वे अध्यात्म के शिखर-पुरुष हुए। गजब के।

मैं अक्सर साध्वी विचक्षण श्री जी का उल्लेख किया करता हूँ क्योंकि मेरे जीवन में भेद-विज्ञान के प्रकाश का जिसने काम किया वह साध्वीश्री ही हैं। उन्हें छाती में कैंसर की गठान हो गई थी। उसमें से खून, मवाद, पानी रिसता रहता था लेकिन उन्होंने हर दिन, हर पल, हर क्षण देह और आत्मा के भिन्नत्व का ज्ञान रखा। उन्होंने जाना कि यह देह अलग है और 'मैं' अलग हूँ। डॉक्टरों बताते हैं कि उन्हें भयंकर पीड़ा होती होगी, लेकिन उन्होंने अपने चेहरे से किंचित भी इसका आभास नहीं होने दिया। सदा मुस्कराते हुए आगंतुकों से मिलती रहीं और हाथ में रही माला से निरंतर जाप-स्मरण करती रहीं। उन्होंने भेद-विज्ञान को जिया! तब मेरे गीत की रचना हुई— 'व्याधि में भी रहे समाधि'। आज जब मेरे शरीर को कुछ अस्वस्थता होती है तो मैं स्वयं को और देह को भिन्न देखता हूँ और जानता हूँ कि जो हो रहा है वह इस शरीर को हो रहा है। आत्मा तो इन सबसे परे है उसे कुछ नहीं हो रहा, उसे कुछ नहीं हो सकता। शरीर भिन्न है, मैं भिन्न हूँ। जीवन में जो भी अनासक्ति घटित हुई है उसका कारण भिन्नत्व को जानना है। इसीलिए संबंधों के प्रति, जमीन-जायदाद के प्रति आसक्ति नहीं बन पाई। सबसे प्रेम है, सबका सम्मान है, सबके प्रति आदर है, सभी से दुलार है, लेकिन आसक्ति के मोह बंधन नहीं है।

ध्यान के द्वारा व्यक्ति अपनी वृत्तियों का क्षय करे। आपने गजसुकुमाल की कहानी सुनी होगी। बताते हैं कि गजसुकुमाल ने मुनि-जीवन अंगीकार किया और जंगल में जाकर साधना करने लगे। वहाँ उनके सिर पर मिट्टी की पाल बाँध दी गई और उसमें जलते अंगारे रख दिए गए, लेकिन मुनि अपनी साधना में लीन रहे। उनका पूरा शरीर जलने लगा और रात के अंधेरे में गीदड़, लोमड़ियाँ, भेड़िये उनके शरीर के मांस को नोच-नोच कर निकालने लगे लेकिन वे साधना में अडिग रहे। जिनके नाम स्मरण मात्र से कर्मों का क्षयोपशम होता है उस साधक ने इस शरीर की नश्वरता को भलीभाँति जाना होगा, तभी इस तरह की बात मुमकिन हो सकती है।

नहीं तो हम लोगों से एक मच्छर का काटना भी बर्दाश्त नहीं हो पाता और उन्होंने अंगीठी बर्दाश्त कर ली; धन्य हैं। ऐसे सिद्ध संत और भेद विज्ञानियों को धन्य है, ऐसे आत्मज्ञानी संत-पुरुषों को धन्य है। ऐसी ऊँचाई पर हम भी कभी पहुँचें।

भगवान महावीर ने कहा है चार भावनाएँ ध्यान से पहले भी भाओ, ध्यान के बाद भी भाओ- अनित्य, अशरण, अन्यत्व और एकत्व। अनित्य अर्थात् संसार का प्रत्येक पदार्थ क्षणभंगुर है, हर संबंध टूट जाने वाला है। अशरण- संसार में कोई किसी का शरणभूत नहीं होता। सारे नदी-नाव संयोग हैं। अन्यत्व - जो अपने से भिन्न है उसे भिन्न देखो, शरीर हमसे अलग है, इसे भिन्नत्व के बोध में लाओ। एकत्व- जीव अकेला आता है और अकेला जाता है। गीता में कृष्ण कहते हैं - हे जीव ! बार-बार सोचो कि तुम अपने साथ क्या लाए थे और जाने के बाद क्या साथ ले जाओगे। जीव कुछ भी साथ में लाता ले जाता नहीं है - इसे बोध में, चिंतन में लाना है। इस पर मनन करो, मनन से मार्ग मिलता है।

साधक के लिए दो चीजें जरूरी हैं - एक ध्यान, दूसरा मनन। अपने बोध से हर चीज को जानो और उसका चिंतन-मनन करो। एक दिन में कोई सिद्ध योगी नहीं बनता, चिंतन-मनन करते-करते, ध्यान-साधना करते हुए, होश-बोधपूर्वक जीते हुए धीरे-धीरे कमल की पंखुरियों की तरह मुक्ति की ओर चार क्रम बढ़ाने लगता है। अज्ञान है इसलिए हम मोह-मूर्च्छा में उलझे हुए हैं। अज्ञान के कारण व्यसन करते हैं, अज्ञानतावश ही बार-बार एक ही पत्थर से ठोकर खाते हैं। अज्ञानता के कारण 'मैं' और 'मेरा' नज़र आता है। सभी जानते हैं क्रोध बुरा है, झूठ, चोरी आदि प्रपंच बुरे हैं लेकिन भीतर का अज्ञान और अविद्या इतनी गहरी है कि बाहर का ज्ञान काम नहीं आ पाता। हम सभी पर अविद्या और अज्ञान हावी हैं, आत्मभाव गौण है, शरीर-भाव मुख्य है। जीवन का भाव गौण है जगत का भाव मुख्य है। खुद में प्रतिष्ठित होने का भाव कम है, जगत में प्रतिष्ठित होने का भाव ज्यादा है। खुद को खुद से प्रभावित करने का भाव कम, दूसरों को प्रभावित करने का भाव ज्यादा है।

जब तक अविद्या और अज्ञान हावी हैं तब तक यही संसार सच है। यहाँ के सुख ही सुख हैं, यहाँ की चीजें ही हमें अपने आधिपत्य के अधीन नज़र आती हैं। वेदों ने कहा है - तमसो मा ज्योतिर्गमय, असतो मा सद्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय - हम प्रार्थना करें - हे प्रभो ! हमें अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल, अविद्या से विद्या की ओर ले चल, असत्य से सत्य की ओर ले चल, मृत्यु से अमृत की ओर ले चल। गायत्री मंत्र भी यही कहता है- हे ईश्वरीय पराशक्ति तू हम अज्ञानी बालकों को जो

अविद्या से घिरे हुए हैं विद्या की ओर, सन्मति की ओर, श्रेष्ठ बुद्धि की तरफ लेकर चल, ताकि तेरी प्रेरणा से हमारे जीवन में सदा नेक, अच्छे और पवित्र कार्य होते रहें। भीतर की भावनाएँ अगर प्रकाशवान हैं, इनमें अगर ध्यान, योग, ईश्वर, भगवत् चेतना, अरिहंत, वीतराग-चेतना, ओंकार का ध्यान आदि का श्रेष्ठ आलम्बन लेते हैं तो निश्चित ही हमारी अविद्या में विद्या का प्रकाश प्रसारित होगा।

तात्पर्य यही है कि स्वयं को मुक्त करना हमारे ही हाथ में है, व्यूह-चक्रों से निकलना भी हमारे ही हाथ में है। लेकिन जान लें कि वृत्तियों के चक्रव्यूह में से निकलना बहुत बड़ी साधना है, तपस्या है, संन्यास है। फिर भी कहीं से तो प्रारम्भ करना ही होगा। ज्यों-ज्यों ज्ञान का प्रकाश फैलेगा, त्यों-त्यों अज्ञान का अंधकार कम होगा। अज्ञान के अंधकार को दूर करने का चिराग आपके भीतर प्रकाशित हो, इसी शुभ भावना के साथ नमस्कार।



अज्ञान और अहंकार पर कैसे पाएँ विजय

मेरे प्रिय आत्मन्,

एक राजकुमार ने श्री भगवान के सान्निध्य में संन्यास ग्रहण किया। संतों को आहारचर्या के लिए स्वयं ही जाना होता है। वह भिक्षु भी भरी दोपहरी में नंगे पाँव चलने को उद्यत हुआ। थोड़ी दूर चलते ही उसके पाँव जलने लगे और भूख-प्यास भी सताने लगी। नगर के मध्य पहुँचा ही था कि उसके मन में विचार उमड़ने लगे कि आज मैं भिक्षु बन गया तो घर-घर में आहारचर्या के लिए जाना पड़ता है। अगर मैं राजमहल में होता तो अनेक सेवक मेरे आहार की व्यवस्था कर रहे होते।

संतों के द्वारा आहार लेने स्वयं जाना उनके अहंकार को तोड़ने का सीधा सरल तरीका है। इंसान का स्वभाव अहंकार और अहंभाव से घिरा रहता है। इसीलिए भारतीय संतों में आहार-चर्या की परंपरा आई। संत चाहे कितने भी बड़े कुल का क्यों न हो वह छोटे और बड़े दोनों कुलों में समान भाव से जाकर आहार-चर्या करे ताकि उनका अहंभाव टूटे।

संत भिक्षु अपने राजपरिवार और सेवकों के संबंध में सोच ही रहा था, उसके मन में तरह-तरह के संकल्प-विकल्प, चित्त में क्लेश और संक्लेश उभर रहे थे तभी

एक दासी उनकी सेवा में उपस्थित हुई और बोली – भंते, आप ऊपर की कोठी में पधारें। हमारी मालकिन ने आपको आहार-चर्या के लिए आमंत्रित किया है। भिक्षु का चित्त जो संक्लेश से भर रहा था, प्रसन्न हो गया कि अब ज्यादा भटकना नहीं पड़ेगा। खुद ही चलकर कोई मेरे सामने आ गया है और आहार के लिए अनुरोध कर दिया। वह उस दासी के साथ कोठी में प्रविष्ट हो गया और आहार लेने लगा। तभी उसके मन में आया कि अगर वह राजमहल में होता तो खीर व पूड़ी की भी व्यवस्था हो जाती। उसका सोचना था कि मालकिन विशेष थाली लेकर उपस्थित हो गई और कहा – भंते, आप यह आहार लीजिए। वह यह देखकर चौंक गया कि थाली में नाना प्रकार के पकवान रखे हुए हैं। उसे विचार आया कि आज तो मैं जैसा सोचता हूँ वह सब कुछ उपलब्ध हो रहा है। भिक्षु ने वहीं आहार किया, अब धीरे-धीरे प्रमाद आने लगा। यह स्वाभाविक ही है कि खाना खाने के बाद प्रमाद-आलस आता ही है। वह सोचने लगा अब वापस अपने स्थान पर लौटकर जाऊँगा, लेकिन अगर यहीं कहीं आरामपूर्वक लेटने की व्यवस्था मिल जाती बहुत आनन्द रहता। तभी मालकिन ने कहा – भंते, आपके लिए शैय्या लगा दी है, आप यहीं पर विश्राम कीजिए। वह सो गया कि कुछ गर्मी महसूस हुई। विचार उठा कि महल में होता तो दास-दासी पंखा झल रहे होते। इधर विचार उठा उधर दो सेविकाएँ आईं और पंखा झलने लगीं। तभी प्यास महसूस हुई और पानी हाजिर हो गया। उसे ख्याल आया कि क्या बात है आज मेरे सारे मनोरथ पूर्ण हो रहे हैं। लगता है यह महिला मेरे चित्त की वृत्तियों को पकड़ती है, यह मेरे मन की धाराओं को पकड़ने में समर्थ है तभी विचार उठने के साथ ही सारे कार्य तत्परता से हो रहे हैं।

वह डरा, उसे लगा मैं राजकुमार था वहाँ तक के सारे संकल्प-विकल्प उभर कर आ गए, कहीं कुछ और अन्य विकल्प उभर आएँ और मुझे यहाँ से नज़र नीची करके जाना पड़े इससे बेहतर है मैं यहाँ से शीघ्र चला जाऊँ। जाते हुए भिक्षु का उस महिला ने मुस्कराकर अभिवादन किया और अपने काम में लग गई।

अगले दिन जब वह युवा भिक्षु आहार लेने के लिए रवाना होने लगा तभी उसके गुरु ने कहा – वत्स, कल जहाँ आहार लेने गए थे आज भी वहीं जाना। भिक्षु ने सम्मानपूर्वक इंकार करते हुए कहा – मैं अन्य किसी भी जगह जा सकता हूँ, पर उस जगह नहीं जा सकता। गुरु ने इंकार का कारण पूछा। भिक्षु ने कहा – मुझे लगता है वह महिला हमारे मन के विचारों को पढ़ने में समर्थ है क्योंकि जैसा मेरे मन में उभर कर आता है वह तत्काल उसकी व्यवस्था कर देती है। वहाँ खतरा है, पता नहीं कब कैसे क्या विचार आ जाएँ।

गुरु ने कहा – वत्स आज जाना तो तुम्हें वहीं होगा लेकिन जाते समय अपने चित्त की वृत्तियों और मन के विचारों-विकल्पों के प्रति जागरूक होकर जाना, स्मृतिमान और संप्रज्ञाशील होकर जाना। अपनी श्वासधारा, पदयात्रा और आवागमन पर पूरी तरह जागरूक होकर जाना। जाना तो वहीं है केवल अपनी जागरूकता को साथ रखना। गुरु का आदेश था, सो राजकुमार भिक्षु को वहीं जाना पड़ा, लेकिन आज वह चल रहा है, जागरूकता के साथ। आज न कोई विचार है, न विकल्प, न खाने की इच्छा है और न कोई भोगेषणा है। वह सहज में चलता चला जा रहा है। न कोई दासी ही बुलाने आई है, वह सहज ही वहाँ पहुँचता है, आहार ग्रहण करता है और वापस लौट आता है।

गुरु ने पूछा – कहो, वत्स आज की आहार-चर्या कैसी रही? भिक्षु ने कहा भंते आज की आहार-चर्या ने तो आनंद दे दिया, क्योंकि कल जो कमियाँ थीं आज नहीं दोहराई गई। आज तो आपने जीवन-शुद्धि का, मन के काया-कल्प का, जागरूक होकर जीने का ऐसा मंत्र प्रदान कर दिया है कि अब चित्त के क्लेश-संक्लेश मेरा अनुसरण नहीं करेंगे।

चित्त के क्लेश-संक्लेश उसी का अनुसरण करते हैं जो प्रमत्त होकर, निद्रित या मूर्च्छित होकर जीवन जीता है। महर्षि पतंजलि योग-सूत्रों की बात करते हुए चित्त से सीधा साक्षात्कार करवाते हैं। जब कोई भी व्यक्ति पहले-पहल अपने चित्त से साक्षात्कार करता है तो उसे न कोई प्रकाश दिखाई देता है, न ही कोई उच्च भावनाएँ नजर आती हैं। उसे सबसे पहले अपने संस्कार, जन्मों से संचित वृत्तियाँ, कषाय, कर्म-प्रकृति के बीज और भीतर की प्रवृत्तियों से परिचय होता है।

चित्त का पहला क्लेश है- अविद्या (अज्ञान)। ज्ञान व्यक्ति के जीवन और आत्मा के लिए वरदान है और अविद्या-अज्ञान अभिशाप की तरह है। ज्ञान वह पंख है जिसके द्वारा दुनिया तो क्या स्वर्ग की यात्रा भी की जा सकती है और अज्ञान कुत्ते की ऐसी पूँछ है जो न तो गुह्य प्रदेशों को छिपा सकता है और न ही मक्खी-मच्छर उड़ाए जा सकते हैं। इसी तरह अज्ञानी-अविद्यावान का कोई उपयोग नहीं होता। ज्ञान के द्वारा हम अपने चित्त का मार्गदर्शन कर सकते हैं, चित्त के क्लेश और संक्लेशों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

अज्ञानी तनावग्रस्त, चिंतातुर, मोहातुर, क्रोधित, आर्तध्यान और रौद्र ध्यान करता ही रहता है जबकि ज्ञानी जीवन के ज्ञान, भेद-विज्ञान और तत्त्व-ज्ञान से परिचित होने के कारण वह हर परिस्थिति को भलीभांति समझता और जानता है। वह जानता है जिसका जनम है उसका मरण है, जिसका उदय है उसका विलय है।

जो सूरज उगता है वह अस्त भी होता है। लाभ के साथ हानि और संयोग के साथ वियोग भी है। जानने के कारण ज्ञानी व्यक्ति अपने चित्त में संक्लेश नहीं करता। अविद्या और अज्ञान के कारण हम दुःखों से घिरे रहेंगे। इसके विपरीत ज्ञान होने पर हर परिस्थिति से सामना करने का धैर्य और अन्तर्दृष्टि रहेगी।

भगवान महावीर सुई-धागे का उदाहरण देते हुए कहते हैं— जिस तरह धागे में पिरोई हुई सुई खोती नहीं है, ठीक उसी तरह ज्ञान रूपी धागे में पिरोई हुई आत्मा भी इस संसार में भटकती नहीं है। जब आत्मा पर अज्ञान का आवरण हावी रहता है, तभी वह संसार में भटकती है। अज्ञान का आवरण होने पर चाहे जितना ज्ञान का प्रकाश दिया जाए उसे उल्लू की तरह दिन में सूर्य दिखाई नहीं देता। चाहे दिन हो या रात, केवल ज्ञान चाहिए। ज्ञानी को ज्ञान का प्रकाश दिन में भी उजाला देता है और रात को भी रोशनी प्रदान करता है। ज्ञान जीवन का प्रकाश है। चित्त के तमस् को, तमोगुण एवं रजोगुण को दूर करने का यह ऐसा सतोगुण है जिसके द्वारा हम भीतर की विजय प्राप्त करते हैं। हम अपने अज्ञान पर ज्ञान का अंकुश लगाएँ। ज्ञान की लगाम से हम अपने अज्ञान रूपी घोड़े पर विजय पाएँ।

संसार में संतों, मुनियों, ऋषियों का इसीलिए तो मान-सम्मान है कि वे सही मार्ग प्रशस्त करते हैं। जो बातें माता-पिता, विद्यालय-महाविद्यालय नहीं सिखा-समझा पाते वे बातें संतों-ज्ञानीजनों के सान्निध्य में सध जाती हैं। आखिर क्यों? क्योंकि उनके जीवन में ज्ञान का प्रकाश है, चारित्र की ज्योति है। उसे वे जीते हैं। इसीलिए उनका सीधा प्रभाव पड़ता है।

ज्ञान सहायक व विधायक है, अज्ञान खतरनाक होता है।

मैंने सुना है : एक विदेशी महिला भारत आई। उसने एक अन्य महिला के हाथ में मेंहदी रची हुई देखी तो पूछा तुम्हारे हाथ में इतनी ललाई और ऐसी सुंदर डिजाइन कैसे आ गई। उसने बताया कि मेंहदी लगाई थी उससे हो गई। वह महिला वापस अपने देश पहुँची, मेंहदी के पत्ते मंगाए और अपने हाथों पर बाँध लिया। तीन घंटे बाद जब खोलकर देखा तो पाया कि कुछ भी नहीं हुआ। उसने सोचा मुझे तो बताया था कि मेंहदी से हाथ लाल होते हैं, पर ऐसा नहीं हुआ। अगली बार जब वह भारत आई तो बताया कि मेंहदी से उसके हाथ लाल हुए ही नहीं। पूछा गया कि उसने क्या किया था। तो बताया कि हाथों में पत्ते बाँध लिए थे। महिला हँसी। आखिर उसने उसे सही विधि बताई कि पहले पत्ते पीसो, भिंगोओ, फिर लगाओ। ऐसा ही किया गया और उसके हाथों में मेंहदी का रंग चढ़ गया। इसीलिए मैंने कहा कि जीवन में ज्ञान जरूरी है; अज्ञान खतरनाक होता है।

जीवन में ज्ञान की क्रीमत है। हर पहलु के ज्ञान की क्रीमत है। चित्त का दूसरा संक्लेश है अहंभाव, अस्मिता। जीवन के सारे व्यामोह, क्रोध, कषाय सभी इस अहंभाव से जुड़े हुए हैं। इसलिए आवश्यक है कि अहंभाव को विनम्र बनाया जाए। जब तक 'मैं' भाव रहेगा, अहं बना रहेगा। जब भी इस 'मैं' को किसी भी प्रकार से किसी भी रूप में ठेस पहुँचती है तो वह क्रोध से भर जाता है। क्रोधित हुए अर्थात् क्लेश-संक्लेश जग गया, भीतर से अनियंत्रित हो गए, व्याकुल हो गए। ज्ञानी व्यक्ति विनम्रता का पुजारी होता है और अज्ञानी अहंकार का पुतला। अज्ञानी अहंकार का शिष्य और ज्ञानी विनय का भक्त। हमारा अहंकार सोड़ावॉटर की शीशी में रही हुई गोली की तरह काम करता है। जैसे गोली भीतर की गैस को बाहर और बाहर की हवा को अंदर नहीं जाने देती वैसे ही हमारा अहंकार न तो दूसरों के सद्गुणों को भीतर आने देता है और न ही भीतर के दुर्गुणों को बाहर निकलने देता है। भीतर का कचरा अहंभाव के कारण बाहर नहीं निकल पाता।

लोग हमारे पास आते हैं और कहते हैं उनमें कोई कमी हो तो बताएँ। लेकिन मैं जानता हूँ कोई भी स्वयं की कमी या बुराई सुनना पसंद नहीं करता। सबको सिर्फ अपनी प्रशंसा चाहिए। लेकिन याद रखें - प्रशंसा ऐसा मीठा ज़हर है, जो जितना पिएगा, उतना नुकसान होगा। इसलिए कभी प्रशंसा की अपेक्षा मत रखो अपितु अपने कार्य को बेहतर बनाने का प्रयास करो। सच्चे माता-पिता, सच्चा गुरु कभी भी अपनी संतान, अपने शिष्य की मुँह पर प्रशंसा नहीं करेगा। वे उसे कमियों की ओर इशारा करेंगे, क्योंकि वे चाहते हैं कमियाँ सुधर जाएँ। वे चाहते हैं दुनिया उनकी तारीफ़ करे, तारीफ़ों का क्या? माता-पिता अपने बच्चे को, गुरु अपने शिष्य को प्रोत्साहन अवश्य दें लेकिन कमियाँ ज़रूर बताते रहें ताकि खोट निकल जाए। सोना शुद्ध है यह वह क्या कहे दुनिया कहेगी कि सोना ख़रा है। गुरु का काम ठोक-पीटकर घड़ा बना देता है। जो व्यक्ति घड़ा बनने को तत्पर है उसी व्यक्ति का गुरु की शरण में जाना सार्थक है। कबीर का दोहा है -

कबीरा गर्व न कीजिए, नेक न हैंसिए कोय ।

अजहुं नाव समुन्द में, ना जाने क्या होय ॥

कबीर कहते हैं व्यर्थ का अभिमान अपने भीतर मत पालिए और किसी की हैंसी मत कीजिए, किसी का उपहास मत उड़ाइए। 'अजहुं नाव समुन्द में- ' अभी नाव समुद्र में ही है- अभी तक तुम कुछ बन नहीं गए हो, अभी तक कुछ पाया नहीं है- 'ना जाने क्या होय'! कब किसकी नाव इस दुनिया में डूब जाए, पता नहीं चलता। व्यर्थ का अभिमान छोड़ो, न जाने कब किससे कौन-सा काम निकालना पड़े

जाए पता नहीं चलता। कब क्या हो जाए कोई नहीं जानता। अपने कुल, ज्ञान, गोत्र का अभिमान न करें। विनम्रता होनी चाहिए। विनम्रता जीवन का ऐसा रक्षा-कवच है जिसके द्वारा अनेकानेक संकटों को काटा जा सकता है। जो नमता है वह सभी को प्रिय लगता है। इसीलिए तो कहा है—

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥

केवल बड़ा होने से कुछ नहीं होता, गुण होना चाहिए। ज्यों-ज्यों गुणों में परिपक्वता आती है, विनम्रता का समावेश होता है, अहंभाव टूटता है त्यों-त्यों इंसान और-और झुकता है। जो नहीं झुकता, वह भूसा रह जाता है। अधिक दानों वाला पौधा झुक जाता है। भूसा हमेशा खड़ा रहता है। जो विनम्र है उसने जीवन के पाठ पढ़े हैं।

एक समय की बात है : हमने दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति को कुछ विशिष्ट कार्य के लिए मिलने का संदेशा पहुँचाया। उन्होंने कहा – गुरुजन मेरे यहाँ आए यह शोभा नहीं देता मैं स्वयं ही दोपहर में चार बजे उनकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा। हम लोग उनसे पहले कभी मिले नहीं थे, यह पहली मुलाकात होने वाली थी। शाम को चार बजे के लगभग एक वृद्ध सज्जन आए। हमारे आसपास अन्य लोग बैठे हुए थे। ज्ञान-चर्चा चल रही थी। तभी देखा कि दरवाजे में प्रविष्ट होकर उन्होंने कोने में रखी कुर्सी उठाई और लेकर आने लगे। मैंने अपने पास बैठे हुए एक बच्चे को संकेत दिया कि वह कुर्सी ले आए। धीरे-धीरे चलते हुए वे हमारे पास आए और कहने लगे, ‘प्रभु, अगर आपको आपत्ति न हो और आपकी आज्ञा हो तो मैं कुर्सी पर बैठ जाऊँ घुटनों की तकलीफ के कारण ज़मीन पर बैठने में असमर्थ हूँ।’

मैंने कहा – प्रभु, आप यह क्या कह रहे हैं, कोई भी ऊपर तभी बैठता है जब उसे पाँवों में असुविधा होती है अन्यथा कोई गुरुजनों के सामने ऊपर बैठना पसंद नहीं करता। आप आराम से कुर्सी पर विराजिये। वे बैठ गए और हम अपनी ज्ञान-चर्चा में लग गये। आधा-पौन घंटे बाद जब सब चले गये तब मैंने उन बुजुर्ग महानुभाव से पूछा – फरमाइये दादाजी, आपकी क्या सेवा की जाए? मेरा इतना कहना था कि उन्होंने कहा – प्रभु, आपने ही तो याद किया था। हमने? मैंने सोचा। उन्होंने कहा – आपने मेरे घर संदेशा पहुँचाया था और मैंने चार बजे आने का समय दिया था। मुझे खयाल आया। मैंने पूछा – क्या आप कुलपति महादेय हैं। ‘जी, हाँ’ – उन्होंने कहा।

मैंने तब जीवन में यह सीखा और जाना कि इसे कहते हैं असली ज्ञान और असली विनम्रता। जिस व्यक्ति में इतना धैर्य है कि वह अपनी कुर्सी खुद उठा रहा है, पौन घंटे तक प्रतीक्षा करता रहा, यह कहने की बजाय कि आपने मुझे याद किया, बताइये क्या काम है? इतना धैर्य! चर्चा शुरू हो गई। चर्चा के दौरान मैंने उनसे कुछ पूछा तो उन्होंने अत्यंत सरलता से कहा – मैं नहीं जानता कि इसका क्या अर्थ है, उत्तर है। आप मेरे अज्ञान को क्षमा करें।

मैंने अपने जीवन में पहली दफा इतने विद्वान और उच्च पद पर आसीन व्यक्ति द्वारा इतने विनम्र शब्दों का प्रयोग देखा। मैंने जाना कि किसी व्यक्ति को अपने अहं को किस हद तक तोड़ देना चाहिए यह उसका उदाहरण है।

अहंकार को तोड़ने का सबसे सीधा सरल मंत्र है नमस्कार। वर्तमान युग का सबसे बड़ा दोष है कि लोग झुकना नहीं जानते। सभी अकड़ कर रहना पसंद करते हैं। एक समय था जब लोग पंचांग नमस्कार करते थे, अब तो ज़रा भी कमर और घुटने नहीं झुकते, खड़े-खड़े ही नमस्कार कर लिया जाता है। यह अहंकार का पोषण है। अगर कोई झुक सकता है तो कृपया पूरा झुकिये। यह दूसरे के लिए झुकना नहीं है स्वयं के अहंभाव को तोड़ने के लिये झुक रहे हैं।

जैनों का प्रसिद्ध मंत्र है : नवकार मंत्र। नवकार मंत्र का पहला शब्द है : णमो। णमो का अर्थ है नमस्कार। णमो का एक और अर्थ है : 'ण' – अर्थात् नहीं, 'मो' – यानी मैं – अर्थात् जहाँ मैं नहीं तू ही तू है। तू जो सर्व व्यापी है उसके सामने मेरा अस्तित्व ही क्या है! रावण और कंस जैसे लोग जो तुझे चुनौती देते थे वे ही न रहे तो मेरी औक्रान्त क्या? आकाश को देखो और प्रेरणा लो कि मुझे ऊँचे और ऊँचे उठना है। धरती से प्रेरणा लो कि गुरूर किस बात का, अन्ततः तो इस मिट्टी में ही मिल जाना है।

अहंभाव- चित्त के क्लेशों और संक्लेशों को निमंत्रण देने का द्वार। एक महान और विद्वान संत हुए हैं उपाध्याय यशोविजय महाराज। कहते हैं ये इतने विद्वान थे कि चार महीने तक उन्होंने केवल आठ अक्षरों पर ही प्रवचन दिया – संयोगा विष्णुमुक्कस्स – चार महीने तक इन शब्दों का विवेचन करते रहे, अलग-अलग दृष्टिकोण से। उनकी इस विद्वत्ता से प्रेरित और प्रभावित होकर उस समय के राजा ने 'विशारद' की पदवी प्रदान की। विशारद पदवी मिलने से जब वे चलते तो उनके आगे चार ध्वजाएँ रहती थीं। लोग देखते ध्वजा वालो महाराज आ रहे हैं। चलते-चलते, घूमते-घूमते हुए वे दिल्ली पहुँचे। वहाँ उनके प्रवचन हुए। चार ध्वजाधारी संत के खूब ठाठ-बाट थे। उनके प्रवचनों में एक बुजुर्ग अनुभवी महिला भी आई

थी। वह खड़ी हुई और उसने यशोविजयजी से कहा – महाराज! मेरा आपसे एक प्रश्न है। क्या प्रश्न है – उन्होंने पूछा। बोलीं – महाराज जी, अपने धर्म में गणधर गौतम स्वामी जी हुए हैं, कृपया बताइये कि आप अधिक ज्ञानी हैं या गौतम स्वामी जी अधिक ज्ञानी थे। भरी सभा के मध्य यशोविजय जी ने कहा – गौतम स्वामी जी तो हमारे पूर्वज हैं। वे हमसे अधिक ज्ञानी थे। तब उस बुजुर्ग श्राविका ने पूछा – भगवन्! मुझे बताइए जब गौतमस्वामी जी चलते थे तो कितनी ध्वजाएँ फहराकर चलते थे।

यशोविजय जी को समझ में आ गया कि यह महिला क्या कहना चाहती है। अर्थात् गौतम स्वामी चौदह ‘पूर्वों’ के ज्ञानी होने के बावजूद सीधे सरल ढंग से चल दिया करते थे और मैं उपाध्याय यशोविजय जिसने चार शास्त्र क्या पढ़ लिये, चार माह तक एक शब्द पर व्याख्यान क्या दे दिया, अपने आगे चार ध्वजाएँ लेकर चलता हूँ! उनका अहंभाव टूट गया। उन्होंने उस महिला से क्षमा माँगते हुए कहा – माँ, आज तुमने मेरा गुरुर तोड़ दिया। उन्होंने ध्वजाओं को यमुना में प्रवाहित करवा दिया। कहा कि अब ध्वजाओं के साथ नहीं, बल्कि अनुभवी और बुजुर्गों का सान्निध्य लेते हुए अपने अहंभाव को छोड़कर और नमन भाव को स्वीकारते हुए चलेंगे।

हमें अपने अहंभाव को तोड़ना है तो छोटों को भी ‘आप’ कहने की आदत डालें, बड़े-बुजुर्गों के पाँव छुएँ। अहंभाव को तोड़ने के लिए पुरुष लोग कभी-कभी गृहकार्य भी कर लिया करें। महिलाएँ तो करती ही हैं आप भी कर लिया करें। आपने देखा होगा महिलाओं में पुरुषों की अपेक्षा अहंभाव कम होता है। जाति का मद टूटे इसलिए कभी-कभी बाथरूम संडास भी साफ कर दिया करें। गाँधीजी तो हरिजनों के यहाँ जाया करते थे। रामकृष्ण परमहंस हरिजनों की बस्ती में जाते थे सफाई करने के लिये।

हमें अलग-अलग तरह के मद, मान, अभिमान, अहंकार को तोड़ने के रास्ते खुद को ढूँढ़ने पड़ेंगे। देह की सुंदरता का भी कैसा अभिमान! डायना-प्रिंस चार्ल्स की पत्नी केवल इसलिए प्रसिद्ध नहीं थी कि वह खूबसूरत थी या ब्रिटेन के राजघराने की बहू थी। वह प्रसिद्ध थी, क्योंकि सेवाभावी थी। वह अनाथालयों में जाती, बच्चों की देखभाल करती, हॉस्पिटल्स में जाती, रोगियों की, एड्स पीड़ितों की भी सेवा करती। कैंसर पीड़ितों की सेवा करती। उसकी एक तस्वीर बहुत प्रसिद्ध हुई जिसमें एक एड्स पीड़ित बच्चे ने उसका माथा चूम लिया था। डायना ने बिना प्रतिक्रिया किये उस बच्चे को हाथों में उठा लिया। अन्य कोई होता तो न जाने कैसी-कैसी

प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करता। किसी को कुछ भी हो सकता है। लेकिन यही विनम्रता है, जीवन का सद्गुण है, निरभिमानता है कि सहजता से कहीं भी चला जाए और सहजता से सभी के साथ व्यवहार करे। हम अपने अहंभाव को समझें और उसे तोड़ने का रास्ता भी खुद ही निकालें।

मैं रास्ते सुझाता हूँ – कभी झाड़ू लगा लो, कभी अपनी कार खुद ही धो लो, कभी बाथरूम साफ़ कर लो, प्रतिदिन बड़े-बुजुर्गों को नमन करने की आदत डालो, प्रतिदिन प्रभु की प्रार्थना, भक्ति करो। समर्पण के नाम पर लड्डू-पेड़े, चावल मत चढ़ाओ। ये हम क्या अर्पण कर रहे हैं? ये सब तो खुद प्रभु हमें दे रहे हैं। इसी से तो हमारा भरण-पोषण होता है। हम उन्हें क्या चढ़ाएँगे जबकि देने वाला ही वही है। दुनिया के किसी भी भगवान को कुछ नहीं चाहिए, शनि महाराज को तेल, गणपति को लड्डू, महावीर को आपके चावल या दीपक नहीं चाहिए। अगर चढ़ाना ही चाहते हो तो अपना अहंभाव चढ़ाओ। और कहो— प्रभु, जो करता है वह तू ही करता है। मेरे जीवन की खुशहाली में तेरी ही भूमिका है। तेरा अनुग्रह है तो मैं फल-फूल रहा हूँ अन्यथा मैं तो कुछ भी नहीं। बस प्रभु, कृपा रखना। आशीष बनाए रखना।

चित्त के संक्लेशों से मुक्त होने के लिए ज्ञान को महत्त्व दो और अज्ञान की जंजीरों को तोड़ो। खुशहाली में कर्त्ताभाव मत जोड़ो लेकिन गलती हो जाने पर तुरंत जानो कि गलतियाँ हमारे अज्ञान के कारण हो रही हैं। खुशहाली होने पर अहंकार भाव न हो जाए। इसलिए अपनी सफलता का श्रेय हमेशा ऊपरवाले को दो, दूसरों को दो। श्रीराम ने जब लंका विजय कर ली, रावण का वध कर दिया तब चारों ओर उनकी जय-जयकार होने लगी। तब श्रीराम ने कहा – यह मेरे अकेले की जीत नहीं है, यह आप सब लोगों की जीत है। आप सभी के सहयोग से ही लंका विजित हो सकी है। रावण को परास्त करना मेरे अकेले के वश में न था।

अपनी सफलता का श्रेय दूसरों को देना अहंकार तोड़ने की पहली सीढ़ी है। जब अहं पैदा होता है तो चित्त में क्लेश आता है जो हमारे लिए हानिकारक है। यदि हम अपनी सफलता का श्रेय ईश्वर को, गुरुजनों को, माता-पिता को, अपने शिक्षकों को, अपने बड़े भाई-बहिन को देते हैं, अन्यो को अपनी सफलता में सहभागी बनाते हैं तो हमारी सफलता का आनन्द दोगुना हो जाता है। तब वह आनन्द केवल स्वयं के लिए नहीं होता, उसमें अन्य लोग भी शरीक हो जाते हैं। अरे, वह आनन्द ही क्या जो तुम्हें अकेले उठाना पड़े। दस-बीस लोगों के शामिल हो जाने से वह आनन्द उत्सव बन जाता है। तब वह आनन्द कभी दीपावली और कभी होली बन जाता है।

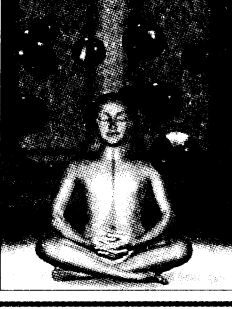
बात इतनी-सी है कि हम अज्ञान तजकर ज्ञान की ओर बढ़ें, अबोध-दशा को छोड़कर बोध-दशा की ओर बढ़ें, ताकि हमारे चित्त के क्लेश-संक्लेश दूर हो सकें। हमें प्रतिदिन सत्संग और स्वाध्याय करने की सीख अपने जीवन से जोड़नी चाहिए। ज्ञानीजनों का सान्निध्य मिले, तो उनके पास बैठकर सत्संग करना चाहिए। ऐसा अवसर न हो, तो खुद ही अच्छी पुस्तकें पढ़ने की, स्वाध्याय करने की आदत जीवन के साथ जोड़ लेनी चाहिए। शरीर के पोषण के लिए तो हम दिन में दो-पाँच बार चाय-नाश्ता-भोजन ले लेते हैं, पर बुद्धि के पोषण के लिए हम ध्यान कहाँ देते हैं? बचपन तो हमने शिक्षा और ज्ञान को समर्पित किया, पर यौवन में उस ज्ञान का संस्कार क्यों नहीं रखते?

ज्ञान तो हमारे जीवन का प्रकाश है, हमारी शक्ति है। ज्ञान तो अंधे की आँख है। बिना ज्ञान का इंसान तो अंधा ही है। हम ज्ञान को तवर्ज्जो दें। यदि आपके पास ज्ञान है, यदि आप शिक्षित हैं, तो दूसरों को ज्ञान का प्रकाश बाँटें। यह ईश्वर का कार्य है। अच्छे विचारों को, अच्छी रोशनी को दुनिया में बाँटो। ज्ञान जितना बढ़ेगा, दुनिया से आतंक, उग्रवाद, स्वार्थ, छल उतने ही कम होंगे। अज्ञानी लोग ही गलत काम करते हैं। हम ज्ञान को महत्त्व दें। अपने बच्चों में भी ज्ञान के पुष्प खिलाएँ।

ज्ञान विनम्रता का पोषक होता है, विद्या ददाति विनयम् - विद्या विनय देती है। हम अहंभाव की बजाय नम्रता की ओर अपने कदम बढ़ाएँ। अहंभाव से क्रोध आ जाता है, कषाय उत्पन्न हो जाते हैं, मदहोशी छा जाती है, दूसरों की उपेक्षा और अपमान कर बैठते हैं। ये अवगुण हमसे दूर हों। आज हमने सीखा कि ज्ञान को, शिक्षा को, बुद्धि बढ़ाने को महत्त्व दें। ज्ञानपूर्वक जीने को महत्त्व दो। अहंभाव से जुड़े चित्त के क्लेश-संक्लेश को दूर करने के लिए विनम्रता, मुस्कान, शांति, आनन्ददशा जैसे भावों को महत्त्व दें। हर व्यक्ति स्वयं को अच्छा बनाए। योग हमें अच्छा बनाता है, योग आनन्ददाता है। योग हमारे लिए रास्ता खोलता है, पर तभी जब हम अपनी बंद खिड़कियों को खोलेंगे, अपनी आँखें खोलेंगे और अपने हृदय को वैसा करने के लिए प्रस्तुत करेंगे।

आज अपनी ओर से इतना ही अनुरोध करता हूँ।

प्रेमपूर्वक नमस्कार।



मानसिक क्लेशों से कैसे पाएँ मुक्ति

मेरे प्रिय आत्मन्,

महर्षि पतंजलि ने हजारों वर्ष पूर्व मानव के मनोविज्ञान को पहचानते हुए मन, चित्त और आत्मा की बारीकियों को समझने व बताने का प्रयास किया था। मन व चित्त की बारीकियों को समझते हुए पाँच प्रकार के क्लेशों व संक्लेशों को मानव-जीवन से दूर हटाने की प्रेरणा दी थी। अज्ञान मानव जीवन का पहला आंतरिक क्लेश है। अहंभाव दूसरा आध्यात्मिक संक्लेश है। राग तीसरा, द्वेष चौथा और मृत्यु का भय पाँचवाँ संक्लेश है। हम अपने जीवन में सुख, शांति, सफलता पाना चाहते हैं। जो भी महानुभाव सुख, शांति, सफलता और आनन्द पाना चाहते हैं वे सबसे पहले अपने जीवन से क्लेश-संक्लेश अर्थात् अशांति, चिंता, तनाव के निमित्तों से स्वयं को दूर हटा लें।

हमारा जीवन जलयान की तरह है और मन उस जहाज के कप्तान की तरह है। कप्तान यदि प्रशिक्षित है, जागरूक है तो निश्चित ही वह अपने जीवन के जहाज को शांति, आनन्द और सफलता के तट की ओर ले जाने में सफल हो जाता है। दूसरी ओर यदि कप्तान मूर्ख, अशिक्षित या लापरवाह है तो वह अपने जीवन के जहाज को

डुबो देता है। हमारा शरीर तो मन की प्रेरणा से ही चलता है। मन यदि मूर्ख है तो शरीर के द्वारा मूर्खताएँ ही दोहराई जाएँगी। स्वस्थ, सकारात्मक, प्रसन्न मन जीवन और जीवटता से भरा है तो वह अपने जीवन के जहाज़ को आनन्द से कुशलतापूर्वक अपनी मंज़िल की ओर ले जाने में सफल होता है।

ऐसे समझें कि एक व्यक्ति की कामना थी कि वह पानी के जहाज़ पर जाकर सैर करके आए। इस हेतु वह चाहता था कि कप्तानी भी खुद ही करे। उसकी इच्छा थी, लेकिन पिता ने ऐसा नहीं करने दिया। एक दिन पिता की मृत्यु हो गई और वसीयत में उसे पानी का जहाज़ मिल गया। उसके तो मन की मुराद पूरी होने आ गई। स्वयं को जहाज़ का कप्तान बना लिया। पानी के जहाज़ की सभी जानकारीयाँ प्राप्त करने लगा। वह प्रशिक्षित तो नहीं था, जागरूक भी न था केवल दिल की तमन्ना थी कि जहाज़ चलाऊँ और वह भी कप्तान बनकर। निकल पड़ा समुद्र में जहाज़ लेकर, पतवारें चल रहीं थीं, जहाज़ आगे बढ़ रहा था। वह अपने केबिन में से निकल कर डेक पर आया, वहाँ देखा कि एक व्यक्ति बहुत बड़ा-सा चक्का घुमा रहा था। इस चक्के का कार्य पतवारों को दाएँ या बाएँ घुमाने का था। लेकिन वह अशिक्षित इसे क्या जाने उसने सोचा यह आदमी यहाँ क्या कर रहा है जबकि पतवारें तो दूसरे लोग चला रहे हैं यह व्यर्थ ही चक्के को आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ घुमा रहा है। जहाज़ तो पतवारों से चलता ही जाएगा। उसने आज्ञा दी कि इस व्यक्ति को हटा दिया जाए, इसकी यहाँ कोई ज़रूरत नहीं है। एक अनुभवी नाविक ने अपने कप्तान से कहा – सर, इसके बिना जहाज़ को खतरा हो सकता है। उस मूर्ख कप्तान ने कहा – यह मेरा आदेश है, हम लोग स्वयं ही निगरानी रख लेंगे। कप्तान का आदेश पूर्ण हुआ और आप समझ सकते हैं कुछ देर बाद जहाज़ चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो गया। हजारों जानें गईं और जो बच गए होंगे वे उस मूर्ख कप्तान को कभी क्षमा नहीं कर पाए होंगे।

हमारा जीवन जहाज़ की तरह और मन कप्तान की तरह है। मन प्रशिक्षित होगा तो जीवन आनन्द, सफलता, शांति के तट की ओर बढ़ता जाएगा। अशिक्षित मन से जीवन नष्ट हो जाएगा, जीवन-नैया डूब जाएगी। हम देखें और सोचें कि हमारी क्या स्थिति है। मन सध गया है या बंदर की तरह उछल-कूद कर रहा है? कहीं हमारा मन क्रोध की हवाओं से, विषय-वासना की हवाओं से हमारे जहाज़ को पथ-भ्रष्ट करता हो, इधर-उधर डोलाता हो या खतरा पैदा करता हो। देखें यह मन किधर जा रहा है – ग़लत किताबें, ग़लत संगत या विपरीत वातावरण में तो रस नहीं ले रहा है? रूप में आसक्त तो नहीं हो रहा, जीभ के स्वाद में लोलुप तो नहीं हो रहा

या अच्छी-बुरी बातों को सुनने के लिए कान उत्कंठित हो रहे हों।

महर्षि पतंजलि चित्त के क्लेशों की चर्चा ही इसीलिए करते हैं कि व्यक्ति अपने मन को और मन की कमजोरियों को समझे और अपने मन, चित्त और हृदय को प्रशिक्षित कर सके कि क्या किया जाए और क्या न किया जाए।

मन का मार्गदर्शन करना जीवन का मार्गदर्शन करना है। मन मूल है। मन जीवन की व्यवस्थाओं का संचालक और प्रेरक है। मन में पैदा होने वाला क्षणिक क्रोध, क्षणिक मोह, क्षणिक वासना – ये सब होते क्षणिक हैं, पर क्षणिक क्रोध, मोह, वासना देखते-ही-देखते क्षणभर में ही अपना सारा प्रभाव-दुष्प्रभाव डाल देते हैं। चंडकौशिक ज्वलंत उदाहरण है। पूर्वभव में संत बना वह चंडकौशिक अपने शिष्य पर क्रोध कर बैठा। संत अपने शिष्य को क्रोधवश मारने के लिए दौड़ा, शिष्य तो बच निकला, पर संत खंभे से टकरा गया। वहीं गिर पड़ा, मर गया और मरकर चंडकौशिक साँप बना। यह है क्षणिक क्रोध, जिसके चलते संत मरकर साँप बना। इसी तरह क्षणिक मोह वह करते हैं। धन्ना और शालिभद्र – दोनों जवाई-साले ने साथ-साथ दीक्षा ली। वे स्वयं को तपा रहे थे। जीवन की अंतिमवेला में उन्होंने 'संथारा' ले लिया। उनके स्वजन-परिजन उनसे मिलने आए। उन्होंने मिन्नत की कि एक बार आँख खोलकर वे उनको निहार लें। धन्ना तो ध्यान में ही रत रहा, पर शालिभद्र ने आँखें खोल ली। परिणाम ये निकला कि धन्ना तो मुक्त हो गया, पर शालिभद्र क्षणिक मोह के चलते केवल देवलोक ही उपलब्ध कर पाया।

क्षणिक क्रोध, क्षणिक मोह, क्षणिक वासना – ये सब चित्त के संक्लेश बनकर व्यक्ति को उलझाते हैं, फँसाते हैं।

कहते हैं जब अभिमन्यु चक्रव्यूह में फँसकर मारा जाता है तो उसकी माँ सुभद्रा विक्षिप्त हो जाती है। सुभद्रा का पागलपन देखकर श्रीकृष्ण कहते हैं – बहिन, लगता है तुमने अभी तक अपने मन को ठीक से समझा नहीं है, मन को ठीक से समझाया नहीं है इसीलिए आज तुम इतना प्रलाप कर रही हो। तुम जानती हो अभिमन्यु ही एकमात्र ऐसा योद्धा रहा जो पूरी कौरव सेना से लड़ा। आने वाला युग उसी का उल्लेख करेगा और माताएँ ईश्वर से प्रार्थना करेंगी कि हमारे घर में भी अभिमन्यु जैसी संतान हो। वह वीरगति को प्राप्त हुआ है। सुभद्रा ने कहा – कृष्ण तुम स्वयं माँ बनते तो तुम्हें पता चलता कि माँ की ममता क्या होती है? यह आलाप-प्रलाप भी सुभद्रा नहीं कर रही, यह तो माँ है जो बिलख रही है। तब कृष्ण ने कहा – अगर यह माँ की ममता है तो इसके अंतिम संस्कार से पहले तुम इसे इस बंधन से

मुक्त कर दो ताकि यह उच्चतम गति को प्राप्त कर ले अन्यथा ममता के बंधन के कारण यह पुनः तुम्हारी ही कोख से जन्म लेने को विवश हो जाएगा।

चित्त के क्लेश और संक्लेश इसीलिए हमारे द्वारा दूर कर दिए जाने चाहिए और मन को प्रशिक्षित कर लेना चाहिए। अन्यथा ऐसा न हो कि द्रोपदी द्वारा सुकुमालिका के भव में यह भाव किये जाते हैं कि वह भी पाँच पतियों के साथ आमोद-प्रमोद करे और अगले जन्म में यह घटित हो जाए। इसलिए हमारे मन के क्लेश और संक्लेश नियंत्रित रहें अन्यथा जन्म-जन्मांतर तक ये हमारे साथ चलते रहेंगे! भारभूत बने रहेंगे। हमें ध्यान रखना चाहिए कि मन हमारे जीवन की बहुत बड़ी शक्ति है। हमारा मन जो चंचल और भटकता हुआ कहलाता है – इसके लिए गीता कहती है – अगर यह मन स्थिर हो जाए तो प्रभु के साक्षात्कार में भी सहायक हो जाता है। मन में उत्साह व उमंग होने पर वह दुष्कर कार्य भी सहजता से संपादित कर लेता है। सारा खेल मन का है।

मन एक शक्ति है। यह उस हथौड़ी की तरह है जो माईकल एंजलो के हाथ में जाए तो सुंदर मूर्ति का निर्माण कर देती है और सेंधमार के हाथ में पड़ने पर मूर्ति को तोड़ डालेगी, आतंकवादी के हाथ में पड़कर हत्या का सबब बन जाएगी। शक्ति तो वही है उपयोग करने वाले पर निर्भर है कि वह कलाकार है, सेंधमार है या किसी अपराधी प्रवृत्ति का है। जैसी हमारी मनोवृत्ति, चित्तवृत्ति होगी जीवन में मिलने वाले समस्त साधनों का वैसा उपयोग करेंगे। इसीलिए गुरु की भी आवश्यकता है ताकि उसके चरणों में बैठ कर हम अपने मन को नहला सकें, गंगास्नान करवा सकें, मन को प्रशिक्षित करें। हमारा मन जो मदमस्त साँड़ की तरह उछलता-कूदता रहता है उस पर अनुशासन का अंकुश लग सके। भटकता हुआ मन क्रोध और वासना की अग्नि में जला हुआ मन सही, स्वस्थ, सकारात्मक, आनन्द पूर्ण बन सके, हमारी समाधि, मुक्ति में यह सहायक बन सके, इसीलिए गुरु, ज्ञान, शास्त्र, सत्संग आवश्यक है।

यहाँ पर हम अपने चित्त के संक्लेशों से मुक्ति पाने के लिए चित्त को प्रशिक्षित करने का अभ्यास व पुरुषार्थ कर रहे हैं। अज्ञान हमारे चित्त का पहला कष्ट है, पहला आंतरिक दुःख है। अहंभाव दूसरा कष्ट तथा राग तीसरा व द्वेष चौथा कष्ट है। कहने को तो राग व द्वेष अलग दिखाई देते हैं पर हैं एक ही सिक्के के दो पहलू। उन सहोदरों की तरह है, जो एक ही माँ के गर्भ से पैदा हुए हों। पर दोनों ही घातक हैं। राग थोड़ा अच्छा लगता है, सुहाता है, क्योंकि राग से ही संसार का निर्माण होता है। द्वेष घातक है, स्वयं को भी नुकसान पहुँचाता है और दूसरों को भी। लेकिन अन्ततः

दोनों ही घातक साबित होते हैं। काँटे से काँटे को निकालकर दोनों को ही फैंक देना श्रेयस्कर है। घूप में खड़े रहने से बेहतर छाया में खड़े रहना है, लेकिन घर लौटने के लिए छाया का मोह भी त्यागना होता है। राग हमें पास में खींचता है और द्वेष पर धकेलता है। राग से चिंता पैदा होती है और द्वेष से भय का जन्म होता है। किसी व्यक्ति के भीतर चिंता, तनाव, ईर्ष्या, भय आदि मानसिक आवेग, मानसिक रोग हैं, तो उसे स्वस्थ, प्रसन्न और सफल कैसे कहेंगे? क्लेश-संक्लेश इसीलिए हटाए जा रहे हैं कि व्यक्ति चिंताओं से न घिरे, भय से बोझिल न हो, ईर्ष्या के भँवरजाल में न उलझे।

राग चिंता का मूल है। एक बच्चा अगर माँ से कहकर जाए कि वह अमुक समय पर वापस आ जाएगा और किसी कारणवश न आ सके तो माँ उसकी मंगलकामना नहीं करती, बल्कि विभिन्न अशुभ विचार चित्त को कष्ट देने लगते हैं, चित्त में अशांति और अस्थिरता आ जाती है। राग और मोह की वजह से हमारे भीतर चिंताएँ पैदा होती हैं। लेकिन सोचें यही घटना पड़ोस में घटती है तो क्या हमें चिंता होती है? नहीं क्योंकि वह पड़ोस का बच्चा है हम उसकी फ़िक्र नहीं लेते। राग चिंता का केन्द्र-बिंदु है इसलिए हमें अपना जीवन सहजता से जीना चाहिए – न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर – सबके साथ कर्तव्य पालन करते हुए जीवन जिएँ। राग-द्वेष को समाप्त करने का सबसे सरल तरीका यही है कि अपना जीवन सहजता से ज़िओ। आरोपित या प्रदर्शित जीवन से बचो।

किसी महानुभाव ने मुझसे पूछा – सुख किससे मिलता है? मैंने कहा – शांति से इन्सान को सुख मिलता है। पुनः पूछा – शांति किससे मिलती है। मैंने जवाब दिया – राग और द्वेष इन दो तत्त्वों को छोड़ने से चित्त में स्थिरता आती है। पूछा गया – राग और द्वेष कैसे छूटते हैं। मैंने कहा – अनासक्ति से छूटते हैं। बोले – अनासक्ति कैसे घटित हो सकती है? मैंने कहा – सहजता से। सहजता वह सरल साधन है जो हमें चिंता और तनावों से मुक्त करता है।

सहज मिले सो दूध सम, माँगा मिले सो पानी।

कहत कबीर वह रक्त सम, जामें खींचा-तानी॥

जो सहजता से मिल जाए वह श्रेष्ठ है और जिसमें खींचतान हो, क्लेश हो वह रक्त के समान कष्टकारी हो जाती है। हमें अपना जीवन सहजता से जीने की आदत डालनी चाहिए।

हम अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के साथ देखेंगे कि राग-द्वेष

कहाँ-कहाँ पैदा होता है। रोटी, कपड़ा और मकान हमारी मूलभूत आवश्यकता है। रोटी अगर नरम है तो ठीक, ज़रा कड़क हो गई तो दिमाग भी हो जाता है कड़क। सब्जी में नमक का संतुलन बराबर है तो अच्छी लगेगी, नमक कम-ज्यादा हो जाने पर क्रोध आ जाता है। खाना भी खाया तो 'यह' अच्छा लगता है और 'वह' अच्छा नहीं लगता है। अच्छा लगना राग है और अच्छा न लगना द्वेष है। राग-द्वेष किन्हीं विशेष वस्तुओं या स्वजन-संबंधियों से ही नहीं होता, यह तो पल-पल ताने-बाने की तरह गुँथा हुआ रह सकता है। आप जानते हैं संत मतदान क्यों नहीं करते? क्योंकि उसमें छंटनी करनी पड़ती है और संतों की तो सभी के लिए यही मंगलकामना रहती है कि कोई भी जीते बस जनता का ख्याल रखे, भलाई के कार्य करे।

संत जो आहार-चर्या के लिए जाते हैं उसे 'गोचरी' कहा जाता है। अर्थात् गौ के समान कुछ इधर से ले कुछ दूसरी जगह से और जब आवश्यकता के अनुरूप आहार मिल जाए तो वापस आ जाए। संत के पास चुनाव का स्थान नहीं है कि वह जो अच्छा लगे उसी को ग्रहण करे। सिर्फ आवश्यकतानुसार ही आहार लेना होता है। इसे 'मधुकरी वृत्ति' भी कहते हैं अर्थात् भँवरे के समान हर फूल, हर घर से थोड़ा-थोड़ा आहार लिया जाए।

इसी तरह कपड़ों के बारे में होता है। रोज़-ब-रोज़ कपड़ों के डिजाइन बदलते रहते हैं - यह किस वज़ह से ? यह राग के नए-नए तरीके ईजाद हो रहे हैं। मकानों की साज-सज्जा बदल रही है पुराने मकान तोड़े जा रहे हैं नए बन रहे हैं। अपने-अपने रागों के पोषण हो रहे हैं, द्वेष के साधन निर्मित हो रहे हैं। चार ही तो अग्नियाँ हैं - राग, द्वेष, क्रोध और काम-वासना। ये अग्नियाँ व्यक्ति को जलाती हैं, संसार में उलझाती हैं, अटकाती हैं। राग और द्वेष की चक्की के दो पाटों में व्यक्ति पिसता रहता है और तब कबीर कह उठते हैं -

चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय।

दो पाटन के बीच में, साबुत बचा न कोय॥

राग-द्वेष के निमित्त बदल जाते हैं, बन जाते हैं। इसीलिए कहता हूँ - ना काहू से दोस्ती - ना काहू से बैर- सहज भाव से अपना जीवन जिउँ। अगर बड़ाई (प्रशंसा) कर रहे हैं तो आपका बड़प्पन है, नफ़रत कर रहे हैं तो आपकी कमज़ोरी है। साधक तो वही रहता है पर नज़रें बदलती रहती हैं यह सब राग-द्वेष के कारण होता है। साधक की पहचान ही यही है कि वह राग-द्वेष रहित होकर सहजता से

जिए।

मेरी शांति का राज ही सहजता है। मैं आसक्ति के दलदल में नहीं हूँ। सबसे प्रेम है, पर किसी से आसक्ति नहीं है। आसक्ति दुःख देती है। प्रेम ईश्वर के करीब ले जाता है। मन को आसक्तिमय नहीं, प्रेममय बनाएँ। आसक्ति में एक अपना होता है। एक पराया। प्रेम में कोई पराया होता ही नहीं है।

एक संत हुए हैं – इनायत शाह क़ादरी, सूफी परम्परा के संत हुए हैं और उनके शिष्य हुए हैं बुल्लेशाह, यह तब की कहानी है जब बुल्लेशाह संत नहीं हुए थे। कहते हैं फ़क़ीर क़ादरी अपने बगीचे की रखवाली कर रहे थे उसमें ढेरों आम्रवृक्ष लगे हुए थे। तभी एक नवयुवक वहाँ आया और फ़क़ीर साहब का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने लगा। फ़क़ीर अपनी मस्ती में थे उनका ध्यान नहीं गया। युवक ने फिर से ध्यान खींचना चाहा, फिर भी उन्होंने उस ओर नहीं देखा। तब युवक ने ऊपर की ओर नज़र उठाई और कहा – बिस्मिल्लाह। और फ़क़ीर ने देखा कि पके हुए आम खुद-ब-खुद नीचे ज़मीन पर गिर पड़े।

इनायत क़ादरी ने देखा और सोचा कि इस युवक के बिस्मिल्लाह कहते ही आम नीचे गिर गए हैं ज़रूर यह नौजवान कुछ खास है, इसमें कुछ दम है। उन्होंने अपनी नज़र उठाते हुए कहा – कौन है? वह युवक खुश हो गया कि आखिरकार वह संत इनायत क़ादरी साहब का ध्यान अपनी ओर खींचने में सफल हो गया। वह दौड़कर उनके पास पहुँचा और कदमों में हाज़िर हो गया। पूछा – क्या चाहते हो, तुम्हारी क्या समस्या है। बुल्ला ने कहा – साहिब, मैं तो रब को पाने के लिए आपकी ख़िदमत में आया हूँ – यह कहते हुए वह उनके पाँवों में गिर पड़ा। संत ने उसे संबोधित करते हुए कहा – बुल्ले, अगर रब को पाना है तो नीचे नहीं, ऊपर उठ। उसे आध्यात्मिक नज़रों से देखते हुए संत साहिब कहते हैं – रब को क्या पाना, रब को पाना है तो इधर से उखाड़ और उधर को लगा। इतना कहकर फ़क़ीर तो वहाँ से चले गए। और बुल्लेशाह भी फ़क़ीर बन गये उन्होंने भी जीवन भर सभी को एक ही संदेश दिया – अगर तू रब को पाना चाहता है तो इधर से उखाड़ और उधर को लगा।

योग की समाधि को उपलब्ध करने के लिए भी मैं यही सूत्र उद्धृत करूँगा; यदि हम योग में प्रवृत्त होना चाहते हैं, परमात्मा की ओर दो कदम बढ़ाना चाहते हैं, तो इधर से उखाड़ और उधर लगा। जगत में, मोह-माया में, राग-द्वेष में जो हमारा मन फँसा हुआ है उसे यहाँ से उखाड़ और प्रभु की ओर लगा। हम इसीलिए भटक रहे हैं क्योंकि उधर तो लगना चाहते हैं, पर इधर से उखड़ना नहीं चाहते। इधर से

उखाड़े बिना उधर नहीं लंग सकते। मन को अगर रब में लगाना है तो जग से हटाना पड़ेगा। दो नावों में सवारी नहीं की जा सकती। राग-द्वेष से निकलने का एक मात्र सहज और सरल तरीका है इधर से उखाड़ और उधर लगा। जितना उखाड़ोगे उतना पाओगे, हाँ उखाड़ोगे ही नहीं तो पाओगे कहाँ से।

हमें खुद ही फ़ैसला करना है कि हम किसे चाहते हैं ईश्वर को या संसार को? व्यक्ति के अंदर जितनी गहरी वासना होती है उतना ही गहरा जब प्रभु का स्मरण होता है तभी प्रभु इंसान के करीब होते हैं। अगर प्रभु करीब नहीं हैं तो इसका मतलब है हमारी वासनाएँ अधिक गहरी हैं। प्रार्थना तो वीतरागता की करते हैं, पर भावनाएँ राग की हैं, कामनाएँ भी राग की हैं। इसलिए केवल प्रार्थनाओं से काम नहीं चलेगा, मन को विकारों से भी उखाड़ना पड़ेगा क्योंकि प्रार्थना तो होठों से होती है और कामनाएँ मन व दिल में उठा करती हैं। भीतर से जब तक कोई इंसान उखाड़ेगा नहीं तब तक दूसरी ओर लग नहीं पाएगा। जितना उखाड़ोगे उतना पाओगे। अगर उखाड़ोगे ही नहीं तो पाओगे कहाँ से।

कल तक जहाँ न राग था न द्वेष था, आज अचानक मोह की ऐसी जंजीर बनी कि राग में आ गए और कल कुछ ऐसा भी हो सकता है कि द्वेष उत्पन्न हो जाए। इसलिए पता नहीं चलता कि हम राग और द्वेष के पाटों में कब तक पिसते रहेंगे, कब तक इस दलदल में फँसे रहेंगे। यह तब तक जारी रहेगा जब तक हम अपनी सहजता में, अपनी आत्म-जागृति को उपलब्ध नहीं कर लेते। अगर हम शांति-पथ के अनुगामी बनना चाहते हैं तो सहजता के पथ के अनुयायी बनें और सदा स्मरण रखें – सहज मिले तो दूध सम –। ज्यादा खींचतान करनी पड़े तो छोड़ दो। ज्यादा खींचा-तानी टेंशन है। जो भी सुख में, शांति में मददगार हो वही स्वीकार्य हो और यही अगर अशांति के निमित्त बन जाए तो छोड़ दो। हमारा जन्म केवल दिनों को व्यतीत करने के लिए नहीं हुआ। शांति और सुकून सबसे पहले होने चाहिए। यह तभी होगा जब हम सहजता का अनुगमन करेंगे। सहज होने पर राग-द्वेष में नहीं उलझ पाएँगे।

राग को जीतने के लिए चित्त की स्थिरता ज़रूरी है। चित्त की स्थिरता के लिए अनासक्ति को साधना होगा। अनासक्ति तभी आएगी जब हम सहज होंगे। राग से उपरत होने के लिए सहजता ज़रूरी है। एक ही सूत्र, एक ही मंत्र, एक ही गीत, एक ही पद याद रखिए – सहज मिले सो दूध सम। इस एक अकेले मंत्र से मुक्त हो जाएँगे, हर चिंता, हर तनाव, हर सरपच्ची से। दूसरा है द्वेष। पौद्गलिक सुखों की अभिलाषा करना राग है तो दूसरों के द्वारा होने वाले अनुचित व्यवहार से हमारे मन में

पलने वाली ग्रंथि का नाम ही द्वेष है। द्वेष से ही भय और डर पैदा होता है। द्वेष ही तनाव का जनक है। इससे मनोविकार बढ़ते हैं, ईर्ष्या का, प्रतिस्पर्धा का जन्म होता है। प्रतिक्रियाएँ, उग्रताएँ आती हैं, क्रोध होता है। राग से कामवासना बढ़ती है तो द्वेष ईर्ष्या, वैर-वैमनस्य, दुःख-दौर्मनस्य को जन्म देता है। मैंने वर्षों पहले जो साधना की वह वीतद्वेष होने की थी। मैंने अपने को देखा, चित्त की दशाओं को, जीवन-शैली को परखा और जाना कि मेरे लिए वीतराग हो पाना फिलहाल संभव नहीं हो रहा है। मैं अपनी अंतरदशा को, मन को वीतराग होने के स्तर पर नहीं देख पा रहा हूँ तो वर्षोंवर्ष पहले यह संकल्प लिया कि मैं स्वयं को वीतद्वेष बनाऊँगा। संसार के किसी भी प्राणी के प्रति अपनी ओर से द्वेष, वैर-वैमनस्य के भाव किसी भी स्थिति में नहीं आने दूँगा। मेरे चित्त की प्रसन्नता, शांति, सहजता में किसी ने मूलरूप से मदद की तो वह है वीतद्वेष होने का संकल्प। किसी के प्रति भी वैर-विरोध नहीं।

भगवान महावीर ने बहुत महत्वपूर्ण सूत्र दिया है – खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमन्तु मे, मित्ति मे सव्व भूएसु वैरं मज्झं न केणई। द्वेषभाव को मिटाने के लिए यह अमृत सूत्र है – खामेमि सव्व जीवे – मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, सव्वे जीवा खमन्तु मे – संसार के सारे प्राणी मुझे भी क्षमा करें। मित्ति मे सव्व भूएसु – मैं संसार के समस्त प्राणियों का मित्र हूँ। वैरं मज्झं न केणई – मेरा किसी के प्रति किंचित भी वैर-विराध नहीं है।

किसी के प्रति वैर-विरोध, वैमनस्य आ भी जाए तो तत्काल अपने मन को संभालो, सुधारो, सहेजो। जैसे कि कृष्ण ने सुभद्रा से कहा था कि वह ठीक से अपने मन को नहीं समझा पाई वैसे ही जानो कि तुम भी ठीक से अपने मन को नहीं समझ पाए, नहीं समझा पाए इसीलिए ये वैर-विरोध की भावनाएँ उठ गईं। जैसे ही महसूस हो कि आपसे गलती हो गई तत्काल सॉरी कह दें। सॉरी कहने में संकोच मत खाओ। प्रतीक्षा मत करो कि दूसरा आपके आगे झुके तब आप सॉरी कहें। महत्त्व आपका है क्योंकि वीतद्वेष होने का संकल्प आपने लिया है, न कि उसने। इसलिए अपनी गलती स्वीकार कर लो, उसको उपहास मत बनाओ। दूसरे को अहसास हो जाए कि सचमुच आप अपनी गलती मान रहे हैं।

गलती मानते ही मैटर फिनिश हो जाता है। मुँह सुजाए, मुँह चढ़ाए कब तक बैठे रहोगे। ऐसे तो आक्रोश और बढ़ता जाएगा। हम अधिक देर तक टेंशन में रहेंगे। टेंशन को जितनी जल्दी हटाओगे, उतनी ही समझदारी है। नहीं तो तुम जलते रहोगे, दिल जलता रहेगा। खुद को भट्टी बनाना भला कोई बुद्धिमानी की बात है? इसलिए

माफ़ी माँग लो, माफ़ कर दो। क्षमा से बढ़कर कोई धर्म नहीं। शांति से बढ़कर कोई सामायिक या समाधि नहीं। प्रेम से बढ़कर कोई पुण्य नहीं और आनंद से बढ़कर कोई अमृत नहीं।

अपने यहाँ एक पर्व मनाते हैं — संवत्सरी-पर्व। इस दिन जैन समुदाय के लाखों-करोड़ों लोग एक-दूसरे से क्षमावणी करते हैं। वे आगे होकर दूसरे से साल भर में तनिक भी अगर वैर-विरोध हुआ, जाने-अनजाने भी किसी के दिल को ठेस लगी हो तो क्षमा-प्रार्थना करते हैं। जो व्यक्ति पन्द्रह दिन में समस्त जीवों से क्षमा प्रार्थना कर लेता है वह व्यक्ति भव्य जीव कहलाता है। इसीलिए पाक्षिक प्रतिक्रमण किया जाता है। पन्द्रह दिन में न कर पाए तो एक माह में कर लें, एक माह में भी न कर सकें तो चार माह पूर्ण होने पर तो अवश्य ही अपनी ओर से क्षमापना कर लें। जो व्यक्ति चार माह में भी क्षमापना नहीं करता वह अपने कर्मों को भव-भवांतर तक आगे बढ़ाता है। अगर चार माह में भी न कर पाए तो वर्ष में एक बार संवत्सरी को तो अवश्य ही जिन-जिनके प्रति वैर-वैमनस्य, दौर्मनस्य के निमित्त बने उनसे क्षमा प्रार्थना कर लें।

जिम में जाकर सीना चौड़ा नहीं होता, बल्कि सीना उनका चौड़ा होता है जो अपनी गलती को स्वीकार करके क्षमा माँग लेते हैं और गलती करने वाले को अपनी ओर से क्षमा करने का बड़प्पन दिखाते हैं। स्वर्ग उन्हीं के लिए हुआ करता है जो गलती करने वालों को माफ़ कर देते हैं। ईश्वर उन्हीं से प्यार करते हैं जो दयालु और क्षमाशील होते हैं।

छिमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।

कहाँ 'रहीम' हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥

कहते हैं : ऋषियों में यह चर्चा चल पड़ी कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश – इन तीन देवों में श्रेष्ठ कौन है? सबके अपने-अपने तर्क थे। कोई निर्णय न हो पाया। आखिर यह ज़िम्मा भृगु ऋषि पर छोड़ा गया। भृगु ऋषि पहले ब्रह्मा जी के पास गए और जाकर ब्रह्मा जी के बराबर के आसन पर बैठ गए। ब्रह्माजी को बुरा लगा। धरती का एक संत भगवान की बराबरी करे। ऋषि ने ब्रह्मा जी के मन के भाव पढ़ लिए। वहाँ से पहुँचे महादेव के पास। ऋषि ने इस बार तो हद कर दी। सीधे महादेव के आसन पर ही बैठ गए। महादेव की त्योंरियाँ चढ़ गईं। ऋषि वहाँ से बिष्णु के पास पहुँचे। बिष्णु के साथ तो वे इतनी बदतमीज़ी से पेश आए कि लक्ष्मी जी तो हिल गईं। भृगु सीधे शेषनाग की शय्या पर चढ़ गए और बिष्णु की छाती पर सीधे लात दे मारी।

विष्णु क्रोधित नहीं हुए। उल्टा, भृगु ऋषि के पाँव दबाने लगे और टिप्पणी की – ऋषिवर ! आपके पाँव में चोट तो नहीं लगी?

और तब से मशहूर हो गया ‘कहा विष्णु को घटि गयो जो भृगु मारी लात’। अगर किसी ने अपमान भी कर दिया तो अपना क्या बिगड़ा। विष्णु की शांति और क्षमा ने ही विष्णु को पूज्य बनाया।

दुनिया में जीसस की पूजा क्यों की जाती है? महावीर क्यों पूजे जाते हैं – क्योंकि उन्होंने सूली पर चढ़ाने वालों को, कानों में कीलें ठोकने वालों को भी क्षमा कर दिया था। तभी तो हम उन्हें आज भी याद करते हैं। हमें विश्वमित्र होना चाहिए न कि विश्वशत्रु। सर्वे भवन्तु सुखिनः – सभी सुखी हों हमारे कारण किसी को भी ठेस और कष्ट न पहुँचे। यह वीतद्वेष की साधना है। इसे जीने के लिए जीवन में प्रेम, शांति और क्षमा को महत्त्व देना होगा। गौतम बुद्ध कहते हैं – न ही वैरेण वैराणि सम्मन्तिथ कुदाचन, अवैरेण च सम्मन्ति एस धम्मो सनंतो’ – वैर कभी भी वैर से शांत नहीं होता – प्रेम शांति और क्षमा से ही वैर शांत होगा, यही सनातन धर्म है।

आज कोई शक्तिशाली है तो तुम पर बल प्रयोग करता है, कल तुम शक्तिवान होकर उसे अपने बल के अधीन बना सकते हो। यह जन्मों-जन्मों का चक्र है जो कमठ और पार्श्वनाथ की तरह चल सकता है। आज के युग में भी देखा जा सकता है कि सत्तासीन विपक्ष का नानाविध विरोध / दमन करता है, कल जब विपक्ष सत्तासीन हो जाता है तो वह बदले निकालता है। प्रकृति का धर्म ही परिवर्तनशीलता है। कभी पहिया ऊपर और कभी नीचे होता है। यह उतार-चढ़ाव तो चलता ही रहता है।

महर्षि पतंजलि कहते हैं ये उतार-चढ़ाव तो चलने ही वाले हैं, लेकिन जो योग में प्रवृत्त हो जाएँगे वे चित्त के क्लेश और संक्लेशों में और हर विपरीत परिस्थिति में भी सहजता से जिएँगे और आनन्दित रहेंगे। हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश – ये सब चलते रहेंगे लेकिन योग-साधना अपनाने चित्त के क्लेश-संक्लेशों से आवृत्त नहीं होगा वरन सहजता और आनन्द का परिचय देगा। वह अपने को उद्वेलित नहीं करेगा। वह क्रोध, काम, वासना के अंधे प्रवाह में नहीं बहता, वह जागरूकता के साथ जीता है। वह निश्चितता और आनन्दभाव से जीता है। वह मृत्यु के भय से भयभीत नहीं होता है। जो मृत्यु-भय से भयभीत हो जाएगा वह नचिकेता कैसे बन पाएगा। डरपोक मृत्यु से घबराते हैं और जिसने विजय प्राप्त कर ली वे नचिकेता बनकर मृत्यु का सामना करने के लिए खुद प्रस्तुत हो जाते हैं। आत्म-ज्ञान हँसी खेल नहीं है, न ही कोई पुड़िया है जिसको फाँका जा सके। आत्म-ज्ञान उन्हें ही

मिलता है, जो मृत्यु से भी साक्षात्कार करने को तत्पर रहते हैं। उन्हें काया की नश्वरता का बोध हो जाता है। बचपन में एक फिल्म देखी थी उसका एक डायलॉग बहुत प्रसिद्ध हुआ था – जो डर गया सो मर गया – लेकिन इसकी हकीकत को किसी ने स्वीकार नहीं किया कि निर्भयता से जियो। जीवन में हिम्मत चाहिए। सबसे पहले मृत्यु-भय को छोड़ो, जो मृत्यु से डरे वह पहले से ही मरा हुआ है। जिसने भय को, डर को ही अपने जीवन से निकाल दिया उसका मृत्यु भी क्या बिगाड़ पाएगी।

हर व्यक्ति चित्त के पाँच क्लेशों – अज्ञान, अहंकार, राग-द्वेष और मृत्यु के भय से घिरा हुआ है। वही इनसे बाहर निकल पाता है जो सहजता से, सकारात्मक रुख अपनाकर, आत्म-जागरूक होकर जीता है। इसलिए धैर्यपूर्वक, आनन्द, क्षमा और शांतिभाव से अपना जीवन जिउँ। प्रभु से अपनी दिव्य प्रीति लगाएँ, अपने मन में श्री प्रभु को बसाकर उसका ध्यान लगाएँ। मुक्ति का यही रहस्य है। राग-द्वेष के अन्तर्द्वन्द्व से बाहर निकलने का एक मात्र रास्ता इधर से उखाड़ो और उधर लगाओ। यही तपस्या है, साधना है, अनासक्ति और मुक्ति है।

मुक्ति का कमल शांति के धरातल पर खिलता है। अपन सभी इस शांति और मुक्ति को उपलब्ध हों, इसी मंगल कामना के साथ प्रेमपूर्ण नमस्कार।



योग का प्रथम द्वार

यम

अंधेरे तो हैं,
रहेंगे, घेरेंगे
बिन बुलाए आएँगे
लगा मुखौटे,
दिव्यता और भव्यता के
हरि गुण गाएँगे
छुपाने को कुटिलता,
चंदन लगाएँगे
अंधेरे तो हैं
अंधेरे घेरते हैं
घेरने दो
अंधेरों से क्या लड़ना
क्या उनसे झगड़ना

अंधेरो से लड़ोगे,
 तो थकोगे, हारोगे
 संताप से भरोगे
 स्वयं को और दुर्बल करोगे।
 शांति जो लगातार उपलब्ध है
 उसे ही नष्ट करोगे
 करोगे चीत्कार
 कोई न सुनेगा पुकार।
 अंधेरे तो हैं, रहेंगे, घेरेंगे
 बिन बुलाए आएँगे
 सत्य झुठलाएँगे
 अंधेरे हैं, बस उन्हें देखो और जानो
 उनकी कुटिलता पहचानो
 और जलाओ निजदीप, बनो संदीप
 ज्योति का भाव हृदय में पलने दो
 प्रकाश कितना ही हो मद्धिम
 अंतस में उसे ही भरने दो।
 प्रकाश का बोध जीवन में उतरने दो
 अंधेरे तो हैं, रहेंगे, घेरेंगे
 बिन बुलाए आएँगे
 देख अन्तस् प्रकाशित चुपचाप
 लौट जाएँगे।

सदियों से हमारे जीवन में अंधकार का अस्तित्व रहा है। इसी अंधकार के उन्मूलन के लिए हर वर्ष दीपावली मनाते हैं। दीप जलाते हैं। इसी भावना के साथ कि थोड़ा-सा अंधकार दूर कर सकें। जीवन में छाई निराशा, हताशा, दीन - भावनाओं के अंधकार को दूर करने में समर्थ हो सकें। जो व्यक्ति अपने अन्तर्तमस को समझेगा वही प्रकाश के लिए पहल कर सकेगा। जिसे प्रकाश पाना है वही योग की शरण में आएगा। तभी वह अपने भीतर के तमस को, काराओं को, चित्त के क्लेश और संक्लेशों को काटने का पुरुषार्थ करेगा। इसीलिए महर्षि कहते हैं - इंसान की चित्त-वृत्तियों का निरोध ही योग है।

आप जानें कि योग सामान्य वस्तु नहीं है कि व्यक्ति योग के द्वार पर क्रदम रखे

और योगी बन जाए। अभ्यास और अनासक्ति के साथ किया योग निश्चित ही परिणाम प्रदान करेगा। योग के आकाश में उड़ने के लिए अभ्यास और वैराग्य (अनासक्ति) के दो पंख होना आवश्यक हैं। जो भी योग में स्वयं से मुखातिब होगा उसे सबसे पहले अपने चित्त के क्लेश अनुभव में आएँगे। ये क्लेश अन्य कुछ नहीं हमारे चित्त के अंधेरे हैं – अज्ञान के, अहंकार के, राग-द्वेष और भय के।

श्रमण भगवान महावीर ने भी मनुष्य के मन को समझा और लेश्या का विज्ञान दिया। उन्होंने कृष्ण, नील, कापोत, तेजोलेश्या, पद्म और शुक्ल लेश्याएँ बताईं। लेश्या वह जो इंसान के चित्त को घेर ले। उसके मन, वाणी और काया की प्रवृत्तियों को जो घेर ले वही लेश्या है। आप देखें क्लेश और वृत्तियाँ भी वही हैं जो हमारी आत्मा और चेतना को अपने अंधेरे में घेर लेती हैं। योग क्या है? अंधकार में प्रकाश की पहल। हर किसी के जीवन में काँट तभी तक होते हैं, जब तक फूल न खिल जाएँ। फूलों के खिलते ही काँटों का वजूद कम हो जाता है। जैसे ही हमारे भीतर योग का कमल खिलता है, उसकी ऊर्जा, उसका स्वास्थ्य, माधुर्य और आनन्द हमें मिल जाता है। जब योग हमें हमारी शांति, प्रसन्नता, प्रज्ञा और समाधि उपलब्ध करवा देता है, तब क्रोध की, वासना की, द्वेष या मोहमाया की अग्नि अपने आप समाप्त हो जाती है। अंधेरे हैं, रहेंगे भी, घेरेंगे भी, लेकिन इनसे निजात पाने के लिए मंदिर जाना, संतों का समागम करना, सामायिक-प्रतिक्रमण या आराधना करना एकमात्र उपाय नहीं है। इससे भ्रम हो सकता है कि आपने धर्म कर लिया, पर नहीं; यह धर्म नहीं है। इससे हमारे अंधेरे कटने-छूटने वाले नहीं हैं। माना कि अंधेरे कट-छूट जाते तो जब इंसान मंदिर से निकलता है या अन्य कोई धर्म-साधना-आराधना करता है तब भी उसके जीवन में शांति क्यों नहीं आती? क्यों वह क्रोध, वासना से घिरा रहता है। वह व्यापार में छल-प्रपंच क्यों करता है? परिवार, समाज के मध्य प्रेम से क्यों नहीं रहता? अंधेरे तो हैं, रहेंगे, घेरेंगे – हम भले ही हरि नाम का तिलक लगा लें। अंधेरे तो बिन बुलाए मेहमान की तरह हमारे पास आ जाएँगे।

जिस दिन हम अपने अन्तर्मन में, अन्तर्घट में प्रकाश उतार लेते हैं, तब अंधेरे भी चुपचाप लौटकर चले जाते हैं। योग जोड़ता है स्वयं से। क्लेश नहीं जोड़ता है। क्लेश दूसरों से जोड़कर दुःखी करता है। योग तो शुद्ध रूप से हमारी वृत्तियों को काटता है और हमारे भीतर प्रकाश की पहल करता है। मैंने जहाँ तक योग को जाना, समझा और जिया, यही पाया कि योग व्यक्ति के भीतर और बाहर की दोहरी जिंदगी को मिटा देता है। जीवन में सहज ही प्रामाणिकता ले आता है, सच्चा चारित्र्य प्रदान करता है। ज्यों-ज्यों हम योग की गंगा में अवगाहन करते हैं त्यों-त्यों यह हमें निर्मल

करता जाता है।

जीवन में अगर अंधेरा है तो दीप जलाने होंगे। क्लेश और संक्लेशों को हटाने के लिए शांति की बयार लानी होगी, आनंद का कमल खिलाना होगा। जीवन में सदाचार और सद्बिचार की गंगा-यमुना बहानी होगी। पतंजलि ने एक क्रमबद्ध तरीके से योग को हमारे समक्ष रखा है। जितनी सुव्यवस्थित प्रक्रिया आध्यात्मिक जीवन को ऊपर उठाने के लिए पतंजलि ने दी है उतना सुव्यवस्थित विज्ञान अन्य कोई शायद नहीं दे पाया। दूसरे शास्त्रों को पढ़कर प्रक्रिया बनाई जाती है जबकि योगसूत्र निर्मित प्रक्रिया है। योग-सूत्रों में इतनी बारीकियों से मानव-मन को कुरेदा गया है कि सब पिकचर बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। हालांकि आज के मानव को शायद इसकी इतनी जरूरत नहीं है। आज तो लोगों को 'की' (चाबी) चाहिए कि ताला खोला और दरवाजा सामने हो। हमने पतंजलि के 'चाबी' वाले सूत्र ही लिए हैं ताकि भीतर के दरवाजे खोल सकें।

होलमन हंट की एक सुंदर कृति के बारे में मैंने पढ़ा है। उस मशहूर कलाकार ने एक सुंदर चित्र बनाया, जिसमें दिखाया गया है कि जीसस एक बाग में खड़े हैं। उनके एक हाथ में लालटेन है और दूसरे हाथ से वे दरवाजा खटखटा रहे हैं।

एक मित्र ने उस मशहूर कलाकार से पूछा, 'होलमन, तुमने एक गलती की है। तुमने इस चित्र में जो दरवाजा पेंट किया है, उसमें हैंडल नहीं है।'

होलमन ने जवाब दिया, 'यह गलती नहीं है। क्योंकि यह मानव-हृदय का दरवाजा है जो केवल अंदर से खुलता है।'

योग भीतर के दरवाजों को खोलने का तरीका है। 'योग' सार्वभौमिक सत्य है। योग केवल स्वास्थ्य या मानसिक शांति ही प्रदान नहीं करता अपितु यह हमें हमारे अंतस्तल से जोड़ते हुए ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से भी जोड़ता है। यही कारण है कि जब हम ध्यान-साधना करते हुए समाधि की ओर बढ़ते हैं तब समाधि में वही अवस्था बनती है। जब साधारण ऊर्जा और साधारण चेतना से ऊपर उठकर असाधारण चेतना, असाधारण ऊर्जा, ब्रह्माण्डीय ऊर्जा से स्वयं को जोड़ते हैं तब व्यक्ति साधारण मन, वाणी और देह से ऊपर उठ चुका होता है। तब भीतर की ऊर्जा आकाशीय ऊर्जा के साथ एकतान, एकलय, एकरूप हो जाती है। यही ऊर्जा हमारी आन्तरिक शक्ति को, आत्मगत शक्ति को बढ़ाती है। यद्यपि कुछ शास्त्र कहते हैं कि आत्मा की शक्ति अनंत है, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान अनंत है, पर मेरा अनुभव बताता है कि जब ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का आत्मा की ऊर्जा से मिलन होता है तभी उसकी ऊर्जा, मेधा और

आत्मा की शक्ति आगे बढ़ती है ।

आज हम योग के आठ चरणों की चर्चा करेंगे जो हमारी नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति को बढ़ाने में हमारी मदद करते हैं। ये आठ चरण अष्टसिद्धिदायक हैं। ये चरण हैं – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। यह अष्टांग योग जीवन में अष्ट मंगल के समान हैं, मानसरोवर में खिले अष्टकमल के समान महत्त्वपूर्ण हैं। संपूर्ण संसार में, पतंजलि के इन आठ सूत्रों को सम्मान मिला है। भारत की संस्कृति में तो जितनी भी अध्यात्म की बातें हुई हैं किसी-न-किसी रूप में योग के ये आठ अंग अवश्य जुड़े हैं। भगवान महावीर और बुद्ध पर भी योग के इन अंगों का प्रभाव रहा, पर धीरे-धीरे साधना करते हुए उनकी स्वयं की सहजता उपलब्ध होती गई और आरोपित विधियाँ, शास्त्रों के द्वारा निरूपित प्रक्रियाएँ अपने आप घटती गई और स्वयं के भीतर प्रकाश उपलब्ध करते गए। ज्यों-ज्यों अन्तः प्रकाशित होता है, त्यों-त्यों अंधेरे घटते जाते हैं। कमल के खिलने से दलदल निस्तेज होता जाता है। गुलाब के खिलने से काँटे अस्पर्शित रह जाते हैं, नीचे रह जाते हैं।

इन अष्ट अंगों पर साधकों को क्रमशः एक-एक कर चढ़ना होगा, इन्हें साधना होगा। एक साथ सारे चरण नहीं सधेंगे। एक-एक चरण को जब हम साधेंगे तब धीरे-धीरे उनमें परिपक्वता आएगी। पहली कक्षा में परिपक्व होने पर ही दूसरी कक्षा में जा सकते हैं। अगर सीधे ही छठी-सातवीं कक्षा में चले गए तो बहुत-सी कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी और श्रम भी बहुत ज्यादा करना होगा। जैसे पतंजलि ने अष्टांग दिए उसी तरह भगवान बुद्ध के द्वारा प्रणीत मध्यम मार्ग के भी आठ ही चरण हैं। भगवान बुद्ध द्वारा आठ चरणों का प्रतिपादन भी स्पष्ट संकेत है कि उन्होंने भी योग के इन आठ अंगों से किसी-न-किसी रूप में प्रेरणा अवश्य ली है। बुद्ध के आठ आर्य मार्ग हैं – सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।

योग के आठ अंगों में प्रथम है – यम। यम शब्द का अर्थ है – अंकुश। महावीर जिसे 'व्रत' कहते हैं, पतंजलि उसे 'यम' और बुद्ध 'शील' कहते हैं। आज के समय में 'यम' अधिक प्रचलित शब्द नहीं है जो प्रचलित है वह है – संयम। संयम का अर्थ है – सम्यक् प्रकार से अपने-आप पर अंकुश लगाना। अपनी गतिविधियों पर, अपनी प्रवृत्तियों, वृत्तियों पर अंकुश लगाना ही संयम है। जैसे हाथी को वश में करना हो तो अंकुश चाहिए या घोड़े पर काबू पाना हो तो लगाम चाहिए वैसे ही मानव-जीवन में यम की, व्रत की, शील की, संयम की आवश्यकता होती

है।

कहते हैं जब विवेकानन्द विदेश में थे तब एक युवती इतनी प्रभावित हुई कि उनसे प्रणय का अनुरोध कर दिया। भोग-उपभोग का आमंत्रण दे दिया। विवेकानन्द के लिए ये क्षण कसौटी के थे। विवेकानन्द ने पूछा – तुम मुझसे यह सब क्यों करना चाहती हो? युवती ने कहा – मैं आप जैसे ज्ञानी, बलिष्ठ और सुन्दर पुत्र की माँ बनना चाहती हूँ। विवेकानन्द ने संयमपूर्वक कहा – माता, अगर तुम केवल मेरे जैसा पुत्र ही चाहती हो तो बेहतर है कि तुम मुझे ही अपना पुत्र मान लो। यही है यम। हो सकता है मन विचलित हो जाए, लेकिन विचलित होते मन पर तत्काल अपने ज्ञान और विवेक का अंकुश लगा लेना ही यम और संयम है।

एक पुरानी कहानी बताती है कि – कल्याणनगर को जीतने के बाद जब शिवाजी के सामने वहाँ की बेगम उपस्थित की जाती है और मराठा सैनिक कहते हैं कि वे उनके लिए अनमोल तोहफा लाए हैं। एक शिविका में से बेगम उतरी हैं। उसके अनुपम सौंदर्य को देखकर क्षणभर के लिए शिवाजी भी चकित हो जाते हैं, लेकिन तत्काल स्वयं पर अंकुश लगाते हुए कहते हैं – सचमुच बेगम! आप बहुत खूबसूरत हैं। यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मेरी माँ आप जैसी ही अत्यन्त सुंदर हों ताकि शिवा भी अगले जन्म में आप जितना सुंदर हो सके। यह है यम-संयम।

कहानी में असंबद्धता हो सकती है, लेकिन कहानी महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है उनसे मिलने वाली प्रेरणाएँ। कहानियों से जो प्रकाश और प्रेरणा मिलती है वह महत्वपूर्ण है। एक और घटना याद आ रही है – किसी खिलाड़ी को विदेश में खेलते हुए किसी लड़की से प्रेम हो गया। वे साथ रहने लगे। समय बीतने पर वह खिलाड़ी अपने देश लौट गया। धीरे-धीरे वह लड़की उसे विस्मृत हो गई। उसने अपना परिवार बसा लिया। अचानक एक दिन किसी ज्योतिषी ने उसका हाथ देखा और कहा – तुम्हें दो पत्नी के योग हैं। उसने बताया कि उसके तो एक ही पत्नी है और उसके बच्चे भी हैं। लेकिन ज्योतिषी अपनी बात पर अडिग रहा। तब उसकी धुँधली पड़ चुकी यादों में उस लड़की का चेहरा चमक उठा जिसे कभी उसने प्रेम किया था। वह चल पड़ा उसे ढूँढने। उसी देश में जा पहुँचा, स्मृतियों के सहारे उसका घर भी ढूँढ लिया और दरवाजे पर उसी का नाम पढ़कर घंटी बजा दी। एक महिला ने; जिसके साथ बच्चा भी था, दरवाजा खोला। उसे विस्मय हुआ कि वह शायद उसे लेने वापस आ गया है। उसने पूछा – कैसे याद आई? तब उस खिलाड़ी ने कहा – कुछ समय पूर्व मुझे एक ज्योतिषी ने बताया कि मेरे हाथ में दो पत्नियों की

रेखा है। जब उसने मुझे ऐसा कहा तो मुझे तुम्हारी याद आ गई और तुम्हें ढूँढता हुआ यहाँ तक आ गया। जैसे ही उस महिला ने यह बात सुनी, तत्काल दरवाजा बंद करते हुए बोली – तुम्हारे हाथ में दो पत्नियों के योग हो सकते हैं लेकिन मेरे हाथ में तो एक ही पति का योग है।

मेरी दृष्टि में यही यम और संयम है। अगर यह लगाम लग जाए तभी योग सार्थक है। जीवन में यम-संयम को न अपना सके तो आगे की बातें; ध्यान, धारणा, समाधि, उल्टी पड़ सकती हैं। ध्यान तो रावण ने भी किया था, पर परिणाम क्या चाहा – राम का विनाश। राम ध्यान साधकर रावण के लिए सद्बुद्धि ही चाहेंगे। स्वयं में सद्बुद्धि होने पर ही दूसरों की सद्बुद्धि के लिए कामना और प्रार्थना कर सकेंगे; अन्यथा दुर्बुद्धि होने पर दुर्योग ही लगाएँगे और वैसे ही परिणाम भी चाहेंगे। इसलिए पतंजलि सबसे पहले यम की बात करते हैं। पहले व्यक्ति का जीवन नैतिक बने, जीवन-मूल्य आत्मसात हों। किसी भी धार्मिक कृत्य को करने की पहले पात्रता होनी चाहिए तब वह कृत्य किया जाए। उसकी पात्रता तभी मिलती है जब व्यक्ति व्रतों को स्वीकारता है। जीवन-मूल्य और नैतिक-मूल्यों के बिना आप मंदिर में चाहे चले जाएँ लेकिन मंदिर से लौटते ही उसी छल-प्रपंच के जाल में उलझ जाएँगे। सामायिक भले ही दो-तीन कर लें, पर समता न आने से सामायिक पूर्ण होते ही फिर से वही कपट शुरू हो जाता है। उसी क्रोध, काम और वासना के प्रपंच में लौट जाएँगे। ये अंधेरे बार-बार घेरते रहेंगे। मात्र दिवाली मनाने से कुछ नहीं होता, पहले भी अंधेरे थे, रहेंगे, घेरेंगे। ये हमें उलझाएँगे, तड़फाएँगे, तब तक जब तक कि हमारे अंतः में प्रकाश उदित नहीं हो जाता। अन्तर्घट प्रकाशित नहीं हो जाता।

मैं इस बात पर जोर देकर इसलिए कह रहा हूँ कि आगे बढ़ने से पहले नैतिक होना ज़रूरी है। संयममय होना ज़रूरी है। आजकल लोग योगासन कर रहे हैं, प्राणायाम सीख रहे हैं, लेकिन नैतिक मूल्य उनके जीवन के साथ नहीं हैं। योगासन खूब किए जा रहे हैं, पर उसका संबंध अध्यात्म के साथ नहीं है, प्रभु के साथ नहीं है, ऋतम्भरा प्रज्ञा के साथ नहीं है। उसका संबंध केवल रोग को काटने से है, इस नश्वर काया को स्वस्थ बनाने से है। जबकि पतंजलि कहते हैं आसन करने से पूर्व व्यक्ति का नैतिक होना ज़रूरी है। इसीलिए यम देते हुए उसकी व्याख्या करते हैं कि अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह यमाः। अहिंसा, सत्य, अचर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करना यम है। इन पाँच तत्त्वों का जीवन में अनुशीलन करना, उनका पालन ही यम है। महावीर ने भी पाँच अणुव्रत या महाव्रत कहे जिनमें

इन्हीं पाँच तत्त्वों का उल्लेख है। बुद्ध के पंचशील में भी यही पाँच तत्त्व मान्य हैं। अब यह तय है कि भारतीय संस्कृति में भारतीय नैतिक व जीवन-मूल्यों को जीना है तो इन तीनों महापुरुषों की एक ही प्रेरणा है कि जीवन में अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करें।

पतंजलि, महावीर और बुद्ध तीनों विभिन्न मतों के होते हुए भी इस बात पर एक हैं कि हिंसा मत करो, झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, निरंकुश परिग्रह मत रखो और असंयमित मैथुन का उपभोग मत करो। ये जीवन के पंचामृत हैं, नैतिक मूल्य हैं। जो हमें जीवन को सरल और मृदु तथा सहज बनाना सिखाएँ वही तो नैतिक मूल्य हैं। जो स्वयं के लिए भी मंगलकारी हो और दूसरे का भी मंगल करे ऐसी नीति हो तो नैतिक मूल्य कहलाते हैं। जिओ और जीने दो – प्रेम से। जो व्यवहार स्वयं के लिए चाहते हो वही व्यवहार दूसरों के लिए भी चाहो – यही नैतिक मूल्य है।

पहला है, अहिंसा – अर्थात् हिंसा पर अंकुश। कोई भी हिंसा से पूर्णतः तो मुक्त नहीं हो सकता फिर भी न्यूनतम हिंसा हो यानी आवश्यक हिंसा। यँ तो बोलने, खाने, चलने से यानी कुछ भी करें हिंसा तो हो ही जाएगी। बोलेंगे तो वायु के जीवों की हिंसा होगी, खाना बनाएँगे, चलेंगे तो अग्नि से जुड़े जीवों की हिंसा होगी, भोजन ग्रहण करने पर वनस्पति से जुड़े जीवों की हिंसा होगी, चलेंगे तो ज़मीन पर रेंगने वाले छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों की हिंसा हो जाएगी। इस तरह व्यक्ति सर्वथा तो हिंसा से मुक्त हो ही नहीं सकता। इसलिए यम का पालन हो, अंकुश तो लगाना है, पर हाथी कब चले और कब रोक लिया जाए, कब बिठा दिया जाए इसलिए अंकुश का प्रयोग करना है। लगाम घोड़ों को रोकने के लिए नहीं बल्कि उन्हें सुव्यवस्थित तरीके से चलाने के लिए होती है। हिंसा पर अंकुश अर्थात् कितने प्रतिशत हिंसा का त्याग करना है, यह विचार ज़रूरी है।

हिंसा तीन प्रकार से संभावित है – मानसिक, वाचिक और कायिक। मन, वाणी और काया के द्वारा होने वाली हिंसा पर व्यक्ति अंकुश लगाए। मन में संकल्प और विकल्प तो आएँगे, पर उसमें हिंसा के भाव आ रहे हैं तो व्यक्ति अंकुश लगाए। परिवार में, समाज में रहकर वाणी का उपयोग तो करना होगा, लेकिन प्रिय और मधुर वाणी का उपयोग करना होगा। वाणी का उपयोग करते हुए अविवेक आ जाए, निंदा, कटु, कठोर शब्द बोलें जा रहे हों जिनसे दूसरों को ठेस पहुँच रही हो, तो तुरंत वाणी पर अंकुश लगा लेना चाहिए। सोते, जागते, उठते-बैठते या हाथों का उपयोग करते हुए कोई हिंसा हो रही हो तो उस पर लगाम कस लेना। हिंसाजनित कायिक प्रवृत्ति

पर, हिंसाजनित वाचिक प्रवृत्ति पर, हिंसाजनित मानसिक प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना ही यम है।

मानसिक हिंसा पर अंकुश लगाने के लिए सकारात्मक सोच, सकारात्मक विचार और सकारात्मक व्यवहार को अपनाएँ। सकारात्मकता को अपने जीवन में महत्त्व दें। किसी ने अगर हमारे प्रति बुरा व्यवहार किया हो तो उसका बुरा चाहने की बजाय सोचें कि हमारे समझने में ही कोई चूक हो रही है। अन्यथा उनके कहने का उद्देश्य यह नहीं था जो हमने समझ लिया। हमारी ही गलती है कि उनकी बात का गलत अर्थ लगा लिया। दूसरों के द्वारा गलत व्यवहार हो जाने के बावजूद हमारे द्वारा उनके प्रति सकारात्मक, सम्मानपूर्ण, उदारतापूर्ण व्यवहार कर लेना ही, मानसिक हिंसा पर अंकुश लगाना है।

ऐसा हुआ – बुद्ध का एक शिष्य पूर्ण बुद्ध के पास पहुँचा और बोला – भंते मैं आपके संदेश अंग, बंग और कलिंग देशों तक प्रचारित करना चाहता हूँ। बुद्ध ने कहा – वत्स, वहाँ के लोग अच्छी प्रकृति के नहीं हैं, वे तुम्हें परेशान करेंगे इसलिए तुम किसी अन्य प्रदेश में जाकर शांति का संदेश प्रसारित करो। पूर्ण ने कहा – भंते, उन प्रदेशों में अभी तक कोई गया नहीं है इसलिए मैं अपनी सेवाएँ उन प्रदेशों में देना चाहता हूँ। तब बुद्ध ने कहा – तुम वहाँ गए और लोगों ने अपशब्द कहे तो तुम्हारी मानसिक प्रतिक्रिया क्या होगी? पूर्ण ने कहा – तब मैं सोचूँगा ये लोग कितने भले हैं, अपशब्द ही तो कह रहे हैं। थप्पड़, घूँसे तो नहीं चलाते। यही है मानसिक हिंसा पर अंकुश कि कैसी भी परिस्थिति हो पॉजिटिव एटीट्यूड रखना कि लोग गाली ही दे रहे हैं – थप्पड़ नहीं मार रहे हैं, रहमदिल लोग हैं, ये अभी भी मुझ से प्यार करते हैं। आगे बुद्ध ने कहा – अगर वे तुम्हें थप्पड़-घूँसे भी मारने लगे तो? तब तुम क्या करोगे? पूर्ण ने कहा – तब मेरे मन में आएगा कि ये लोग बहुत अच्छे हैं जो थप्पड़-मुक्के ही चला रहे हैं कम-से-कम तीर, तलवार, कटार तो नहीं चलाते। बुद्ध ने पूछा – अगर उन्होंने तीर, तलवार, कटार चला दी तब तुम्हारे मन में क्या होगा? तब मेरे मन में आएगा कि मैं श्री भगवान के प्रेम और शांति के उपदेशों को क्रूर और अशांत लोगों के बीच प्रसारित करने में काम आया। शरीर का त्याग करने से पहले यही भाव होंगे – पूर्ण ने कहा – मेरा शरीर मेरे प्रभु के, मेरे गुरु के काम आया यही सुकून रहेगा। बुद्ध ने कहा – जाओ, पूर्ण तुम सचमुच पूर्ण हो। तुम जहाँ भी जाओगे, वहाँ तुम्हारे चरण पड़ने मात्र से प्रेम और शांति का ध्वज फहरेगा।

जिस व्यक्ति का हर हाल में इतना सकारात्मक नज़रिया रहता है, इतने

सकारात्मक विचार रहते हैं वह व्यक्ति किसी भी हालत में मानसिक हिंसा का दोषी नहीं बन पाता। वह सदा दूसरों का भला चाहेगा, रहमदिल रहेगा, दूसरों का कल्याण करना चाहेगा। विपरीत वातावरण बन जाने पर अपने मन पर संयम करते हुए सकारात्मक व्यवहार करना यह हमारे लिए पहला यम है। अहिंसा परमोधर्मः – का नारा लगाने से अहिंसा नहीं होती। यह तो जीवन का पाठ है। अहिंसा योग का अंग है। अहिंसा शब्दों से बोलने की नहीं, जीने की वस्तु है।

दूसरी है वाचिक हिंसा – इसके नियंत्रण का उपाय है जब भी बोलें मधुरता, विनम्रता और विवेक से बोलें। या तो बोलें ही नहीं – सबसे मीठी चुप। बोलने की कोई ज़रूरत ही नहीं है। हाँ, अगर बोलो तो मुस्कुरा कर, तमीज से, विनम्रता और मधुरता से बोलो। शिक्षित, संस्कारित और कुलीन की पहचान ही यही है कि वह जब बोलता है तो उसकी भाषा का क्या स्तर है। हम जो अहिंसा के प्रति आस्थावान हैं, शाकाहारी जीवन जीते हैं, साधारणतः मच्छर मारने की कल्पना भी नहीं करते, पानी भी छानकर पीते हैं, रात्रि में भोजन करना पसंद नहीं करते, कायिक हिंसा को इतने उच्च स्तर तक जीना चाहते हैं – वहीं हम वाणीगत अहिंसा के स्तर पर कमजोर पड़ जाते हैं।

वाचिक हिंसा पर अंकुश लगाने के लिए – मिष्टभाषी बनें। विनम्रता, मधुरता से बोलें। ऐसी वाणी कभी न बोलें जो दूसरे के दिलों को भीतर तक ठेस पहुँचा दे। निंदा, आलोचना, अपमान न करें, बददुआ न दें। बददुआ तभी निकलती है जब भीतर तक आत्मा व्यथित हो जाती है और व्यथा आती है वाणी द्वारा अपमानित होने पर।

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै, आपहु शीतल होय ॥

वाणी का विवेक रखेंगे तो महाभारत नहीं होगा। द्यूत या द्रोपदी के चीरहरण से महाभारत नहीं हुआ। महाभारत हुआ द्रोपदी के अहंभाव से, उसके द्वारा प्रयुक्त गलत भाषा से महाभारत का बीजारोपण हुआ। इंद्रप्रस्थ के नये राजमहल में दुर्योधन को बुलाया गया। वहाँ नाना प्रकार के कक्ष थे जिनमें एक काँच का कक्ष भी था लेकिन इतना पारदर्शी कि पता ही न चलता था कि वहाँ काँच है। दुर्योधन सीधा चलता गया और काँच से टकरा गया। द्रोपदी ने यह देखा तो अनायास ही वाचिक हिंसा हो जाती है कि अंधे का बेटा आखिर अंधा ही होता है। इस तरह महाभारत का बीज वपन हो गया। स्मरण रहे हिंसा के बदले में हिंसा लौटती है और क्षमा के बदले

में क्षमा लौटती है। जब भी बोलें भाषा में अदब हो, कुलीनता, मर्यादा और संस्कार हो। मर्यादा और संस्कार का न होना, धर्म की दृष्टि से भी हानि है, व्यवहार की दृष्टि से भी हानि है, संबंधों और रिश्तों की कटौती की भी हानि है। इसलिए मधुरता और विनम्रता से भाषा बोलने की जागरूकता रखें, बोध रखें कि आपकी वाणी पर अंकुश रहे। इसके बाद भी गलती हो जाए तो क्षमा माँग लें। अच्छे संकल्प, अच्छे विचार रखना मानसिक अहिंसा है और वाणीगत, भाषागत मधुरता रखना वाचिक अहिंसा है।

कायिक हिंसा पर अंकुश लगाना कायिक अहिंसा है। इस पर कैसे अंकुश लगाया जाए? इसके लिए महावीर ने दो सुंदर शब्द दिए हैं – समिति और गुप्ति। यँ तो ये पारिभाषिक शब्द हैं, पर इनका अर्थ है – समिति अर्थात् सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करना और गुप्ति का अर्थ है सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करते हुए भी, सम्यक् प्रकार से आचरण और व्यवहार करते हुए भी अगर हमारे द्वारा गलती हो जाए तो उस प्रवृत्ति पर अंकुश लगा लेना। ये हैं समिति और गुप्ति। जैसे कछुआ हाथ-पाँव फैलाकर चलता है लेकिन खतरे का अहसास होते ही अपने सारे अंगों को अपने खोल के भीतर समेट लेता है, ठीक इसी तरह सम्यक् प्रवृत्ति करते हुए भी हमसे गलती हो जाए तो अपनी गलतियों को अपने में समेट लेना, साँरी कह देना, प्रायश्चित्त कर लेना, यही गुप्ति है। इसलिए कभी-कभी व्रत करें। वह व्रत नहीं कि सोमवार है इसका व्रत या आज पंचमी, अष्टमी है – उसका व्रत – ये व्रत नहीं हैं। स्वयं को दण्ड देने का व्रत करें। माना कि आपने संकल्प लिया कि भविष्य में किसी भी प्रकार से, किसी भी स्थिति में वाचिक हिंसा नहीं करेंगे। इसके बाद भी किसी दिन अचानक आपके द्वारा कुछ ऐसी बात हो जाती है कि सामने वाला दुःखी होकर रोने लगता है। उसे आपके द्वारा ठेस पहुँचती है इसलिए स्वयं को दंड दो। दंड उस रूप में कि कल मेरे द्वारा जो हिंसा हुई उसके प्रायश्चित्त में आज व्रत करूँगा। इस तरह जो अतिक्रमण हुआ वह प्रतिक्रमण में बदल जाएगा।

कायिक हिंसा से बचने के लिए सम्यक् प्रकार से चलें, सम्यक् प्रकार से खाएँ, सम्यक् प्रकार से सोएँ। यहाँ तक कि मल-मूत्र का विसर्जन भी सम्यक् प्रकार से करें अर्थात् अपनी समस्त क्रिया-प्रतिक्रियाओं को विवेक और ज्ञानपूर्वक अपनी काया की समस्त प्रवृत्तियों को सम्पादित करें। कायिक अहिंसा को संपादित करने के लिए – ‘देखो-भालो तको मत, चालो-फिरो थको मत, बोलो चालो बको मत।’ अहिंसा का विवेक रखते हुए चलें। घर में झाड़ू लगाते समय, पोंछा लगाते समय, रसोईघर में खाना बनाते समय अहिंसा का बोध रखें। गर्भपात और भ्रूण-हत्या भी

निकृष्ट हिंसा है। हमें जाति, मत, मज़हब – इन सबको भुलाकर अहिंसा को बल देना चाहिए। हमारे देश में सभी वणिक लोग अहिंसक हैं। हमें अपनी ताकत, अपना धन, जलसों और शोभायात्राओं पर नहीं, अहिंसा के लिए समर्पित करना चाहिए।

आप जानते हैं जैन मुनि पैदल क्यों चलते हैं? आज हवाई जहाज़ और रॉकेट के युग में भी वे पैदल चल रहे हैं। क्यों? क्योंकि वे चाहते हैं उनके द्वारा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म हिंसा भी न हो। चलते हुए अगर एक चींटी को भी बचा सकते हैं तो बचाना चाहिए। आपको पता है भगवान बुद्ध जिस करवट सोते थे सुबह उसी करवट में उठते थे। क्यों? क्योंकि करवट बदलने पर जीव हिंसा की संभावना थी। इतनी करुणा! जो संत या मुनि पैदल नहीं चल सकते और डोली में बैठकर चलते हैं, यह अहिंसा नहीं है। चार लोगों के कंधे पर चलना अहिंसा को ढोना है, परम्परा का आग्रह और दुराग्रह है। इससे तो बेहतर है वाहन का उपयोग कर लिया जाए उसमें कम हिंसा होगी।

अहिंसा का जितना अधिक पालन किया जाए उतना ही अच्छा है। अहिंसा कोई जबर्दस्ती नहीं है। यह तो जीवन जीने की शैली है। दुनिया अहिंसा पर टिकी है। इसे हिंसा पर नहीं टिकाया जा सकता। आतंक में, उग्रता में जीने वालों की संख्या पाँच प्रतिशत है लेकिन अहिंसा में निष्ठा, विश्वास रखने वालों की संख्या पिच्चानवे प्रतिशत है। अगर यह क्रम उल्टा हो गया तो धरती समाप्त हो जाएगी। आज भी दुनिया में अहिंसा में विश्वास रखने वाले लोग हैं। भले ही सभी लोग धार्मिक न हों, पर अहिंसा के प्रति आज भी लोगों की आस्था है। अहिंसा के प्रति आस्था होना वास्तव में धर्म का ही आचरण है, धार्मिकता है।

मानसिक, वाचिक, कायिक हिंसा न हो इसके लिए याद रखें – सकारात्मक सोच, विनम्र प्रस्तुति, विनम्र भाषा और जागरूकता के साथ दैहिक गतिविधियों का संपादन। अहिंसा केवल शब्द नहीं है यह जीने की शैली, जीवन का पाठ है। यह संपूर्ण पृथ्वी ग्रह की माँ है। जब तक धरती पर अहिंसा रहेगी तब तक आपसी प्रेम रहेगा, ईसान आपस में एक-दूसरे के काम आएँगे। अहिंसा से ही शांति है, प्रेम है, भाईचारा है, एक-दूसरे के लिए शहादत की सद्भावना है। जिस दिन अहिंसा धरती पर नहीं रहेगी उस दिन धरती कंगाल हो जाएगी। व्यक्ति आदिम युग में चला जाएगा और लोग अन्न के एक कण के लिए भी आपस में भिड़ जाएँगे। आज का युग प्रगति और समृद्धि का है। यह हिंसा का युग नहीं है। यह अहिंसा और प्रेम का युग है। हमें युग के निर्माण के लिए अहिंसा का स्वागत करना चाहिए, अहिंसा को बढ़ावा देना

चाहिए।

योग का पहला चरण हमें यमी-संयमी-व्रती होने का संदेश देता है, जीवन में प्रेरणा देता है, जीवन में रोशनी और ऊर्जा जगाता है। आज के लिए इतना ही –
प्रेम पूर्ण नमस्कार।



योग के पाँच नैतिक मूल्य

मेरे प्रिय आत्मन् !

महर्षि पतंजलि, भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के द्वारा मानव-समाज के कल्याण के लिए जितने संदेश और उपदेश दिए गए वे अपने समय में जितने सार्थक थे उससे कहीं अधिक उपयोगिता वर्तमान में है। प्राचीन समय में भी भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी के प्रसंग देखने को मिलते हैं। कंस और रावण के अत्याचार अतीत के प्रसंगों में पढ़ने को मिलते हैं लेकिन आज का युग भी उन बुराइयों से अछूता नहीं है। इसी कारण उस समय उनके संदेशों-उपदेशों की जितनी उपयोगिता थी आज उनकी उपयोगिता उससे भी ज्यादा है। महर्षि पतंजलि योगसूत्रों का प्रतिपादन करते हुए सर्वप्रथम यम अर्थात् अंकुश का उल्लेख करते हैं। यम के पालन का प्रथम और अंतिम उद्देश्य यही है कि व्यक्ति अपने जीवन में नैतिक और जीवन-मूल्यों को आत्मसात् करे। कोई व्यक्ति कितना भी महान क्यों न हो जाए, समाधि की ऊँचाइयों को क्यों न छू ले, बौद्धिकता कितनी भी समृद्ध क्यों न हो जाए, पर उसके पास चरित्र की ज्योति, ईमान की सुवास और नैतिक मूल्यों की जीवंतता नहीं है, तो वह संस्कारविहीन इंसान बन जाएगा। उसे इंसानों के साथ सद्व्यवहार करने का बोध ही

न हो पाएगा।

यम के संबंध में हम चर्चा कर चुके हैं, फिर भी संक्षेप में मानसिक, वाचिक और कायिक हिंसा पर सम्यक् प्रकार से अंकुश लगाना ही यम है, संयम है। यम के अंतर्गत हमने अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जाना। जब हम इन पाँच तत्त्वों पर चर्चा करते हैं, तो यह बात भलीभाँति समझ में आ जाती है कि भले ही महावीर का धर्म जैन धर्म कहलाता हो, बुद्ध का मार्ग बौद्ध धर्म कहलाता हो और पतंजलि का दिशाबोध सनातन धर्म कहलाता हो, पर सचाई यही है कि इन सभी धर्मों का नवनीत और प्रथम द्वार ये पाँच यम या पाँच व्रत हैं। सबका दर्शनशास्त्र अलग हो सकता है, लेकिन नैतिक और जीवन-मूल्य दुनिया के प्रत्येक धर्म के समान हैं। दुनिया को छोड़ भी दें तो ये तीनों परम्परा एक ही धरातल पर खड़ी हैं। उनके अनुसार चाहे योग की साधना हो, धर्म की साधना हो या जीवन और नैतिक मूल्यों की साधना करनी हो पाँच यम चाहिए, पाँच संयम, पाँच व्रत, पाँच शील चाहिए। शब्द अलग-अलग हैं, नाम उपनाम अलग-अलग, संज्ञाएँ अलग-अलग हो सकती हैं, लेकिन मार्ग ढूँढने के लिए तीनों महापुरुषों को इसके अलावा कोई रास्ता नहीं मिला। उन्हें लगा कि अहिंसा कहते ही उसमें सेवा, करुणा, दया, प्रेम सब कुछ समाहित हो जाते हैं। सत्य कहते ही शिवम् और सौन्दर्य की अपने-आप स्थापना हो जाती है। अस्तेय (अचौर्य) से व्यक्ति के साथ उसकी प्रामाणिकता और ईमान जुड़ जाता है। ब्रह्मचर्य से एक-दूसरे के प्रति पवित्रता स्थापित हो जाती है और अपरिग्रह के साथ सामाजिक वात्सल्य, सामाजिक सहभागिता, सामाजिक समरसता अपने आप आ जाती है। अब इन्हें पंचव्रत, पाँच यम या पंच शील कहें कोई फ़र्क नहीं पड़ता है।

ये पाँच यम एक तरह से भारतीय संस्कृति के पाँच पायदान हैं। पाँच यम-व्रत यानी भारत का मानवजाति के नाम उनके कल्याण का पथ। यह तो पंचामृत है जिसे भारत के द्वारा संपूर्ण दुनिया में प्रचारित-प्रसारित किया ही जाना चाहिए। अगर किसी देश में गरीबी बढ़ गई है, किसी देश में भ्रष्टाचार फैल गया है, अगर किसी देश में सेक्स, राजनीति, व्यसन बेशुमार बढ़ते जा रहे हैं, यदि कहीं डाके और चोरी, लूट-खसोट बढ़ गई हो, किसी भी रूप में अनैतिकताएँ स्थापित हो गई हों तो भारत के द्वारा पूरी विश्व-संस्कृति को एक ही संदेश होना चाहिए कि सभी इन पाँच तत्त्वों को पाँच यम, पाँच व्रत, पाँच शीलों को अपनाएँ।

प्रथम है अहिंसा। अहिंसा को मन, वचन और काया इन तीनों तलों पर जीना होगा। सार रूप में, मानसिक हिंसा पर अंकुश लगाने के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण

अपनाते हुए, सकारात्मक विचार रखते हुए दूसरों के प्रति सकारात्मक, उदारतापूर्ण सौम्य व्यवहार करें। वाणीगत हिंसा पर अंकुश लगाने के लिए मधुरता, विनम्रता, निरहंकारिता से बोलें। अतीत हमने नहीं देखा, भविष्य देख पाएँगे या नहीं पता नहीं, लेकिन वर्तमान हमारे सामने है। हम लोग वर्तमान को Present कहते हैं और उपहार को भी Present कहते हैं। वर्तमान स्वयं ही एक उपहार है और इसे उपहारपूर्ण बनाने के लिए अपनी वाणी का तहजीब से, सलीके से इस्तेमाल करें। कायिक हिंसा पर अंकुश लगाने के लिए समिति और गुप्ति का पालन करें अर्थात् अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति को, बोधपूर्वक, ज्ञानपूर्वक, होशपूर्वक सम्पादित करें।

पारिवारिक और सामाजिक धरातल पर अहिंसा को जीने के लिए एक सूफी संत की घटना को समझिए – कहा जाता है कि एक उच्च कुलीन दर्जी संत बन गया। उसने उच्चतम दशा प्राप्त कर ली। उसका प्रभाव भी इतना बढ़ा कि राजा- महाराजा भी दर्शन को आने लगे। एक बार किसी राजा ने उनके दर्शन की इच्छा की और सोचने लगा कि संत के पास क्या भेंट लेकर जाऊँ। उसे ख्याल आया कि संत तो जन्मजात दर्जी रहे हैं। अतः कुछ ऐसी भेंट लेकर जाऊँ जो उनके मूल स्वभाव से जुड़ी हो। ऐसा सोचकर उसने सोने की कैँची बनवाई और उसमें हीरे-मोती रत्न आदि जड़वा दिए। इस कैँची को उन्होंने महात्मा को भेंट कर दी। संत ने जैसे ही कैँची देखी, मुस्कुरा दिए और उपहार को लेने से इंकार कर दिया। राजा ने पूछा – महात्मन्! आपने यह सोने की कैँची लेने से इंकार क्यों कर दिया। संत ने कहा – मुझे कैँची की आवश्यकता नहीं है। राजा ने कहा – महात्मन्! यह सोने की है। इस पर हीरे-मोती आदि रत्न जड़े हैं। संत ने कहा – भले ही यह सुवर्ण-मंडित रत्न- जड़ित है, पर मुझे कैँची की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि कैँची हमेशा काटने का काम ही करती है। तब राजा ने पूछा – महात्मन्! अब आप ही बताइए कि मैं आपको क्या नज़राना दूँ। संत ने कहा – राजन्! आप मुझे भेंट देना ही चाहते हो तो एक सुई और धागा दे दो, भले ही सुई लोहे की ही हो। टूटे हुए लोगों को, टूटे हुए ख़्वाबों को, फटे हुए कपड़ों को सीने और जोड़ने के काम तो आएगी।

कैँची हिंसा का, आतंक और उग्रवाद का प्रतीक है और सुई-धागा अहिंसा का, शांति का, प्रेम का, भाईचारे का, विश्वशांति का प्रतीक है। जोड़ा तो आपकी महिमा है, तोड़ तो कोई भी सकता है। जब बुद्ध के सामने अँगुलीमाल पहुँचता है और तलवार चलाने को उद्यत होता है, बुद्ध पूछते हैं – तुम्हारी तलवार में धार है? वह कहता है – हाँ और तलवार पेड़ पर चला देता है। पेड़ की टहनी कट जाती है। बुद्ध कहते हैं – धन्य है, तुमने एक ही वार में पेड़ काट दिया, पर इस कटी हुई टहनी

को पुनः पेड़ पर साँधने का पुरुषार्थ कर लो। अँगुलिमाल चौंका। उसने पूछा – वापस कैसे जुड़ सकती है, टूटे हुए पत्ते वापस कैसे जुड़ सकते हैं? तब बुद्ध कहते हैं – तुममें और मुझमें यही फ़र्क़ है कि मैं जोड़ना जानता हूँ और तुम केवल तोड़ना। जो जोड़े वह अहिंसा और जो तोड़े वह हिंसा।

आज हमारे देश में आपस में जोड़ने का महत्त्व कम हो गया। यही कारण है कि हमें आज़ाद हुए पचास-साठ वर्ष हो गए लेकिन हम पाकिस्तान को अपने से जोड़ नहीं पाए, आज भी हमारे दिल टूटे हुए हैं। आज आपस में कुत्ते-बिल्ली के समान बैर है। जितनी ज़रूरत अहिंसा की भारत को है, उतनी ही ज़रूरत पाकिस्तान को भी है। हिंसा के बल पर पाकिस्तान को नहीं टिकाया जा सकता, पर अहिंसा के बल पर दोनों देशों को स्थायित्व दिया जा सकता है। अहिंसा केवल शाकाहार या पानी छानकर पीना ही नहीं। परिवार में आपसी प्रेम के रिश्ते भी अहिंसा हैं।

कुछ अहिंसा व्यक्ति-सापेक्ष, कुछ जीवन-सापेक्ष, कुछ परिवार-सापेक्ष और कुछ अहिंसा समाज और देश-सापेक्ष होती है, कुछ अहिंसा विश्व-सापेक्ष होती है। अज्ञान-अवस्था में अनजाने में इंसान से गलती होना मुमकिन है, पर जो अतीत में हुआ उसका हम प्रायश्चित्त कर लें और भविष्य के लिए अपने वर्तमान को संकल्पशील बनाएँ कि गलती पुनः नहीं दोहराएँगे। ऐसा हुआ, भारत में आज़ादी प्राप्ति का संघर्ष अपने चरम पर था। तभी एक व्यक्ति के बच्चे की हत्या हो गई। वह व्यक्ति आक्रोश में भर गया। उसने तलवार उठाई और कई मासूमों की जान ले ली। सांझ हुई, उसका गुस्सा ठंडा हुआ और वह दुःखी हो गया कि उसने क्रोध में यह क्या कर डाला? दूसरे दिन वह महात्मा गांधी के पास पहुँचा और प्रायश्चित्त करने लगा, रोने लगा और कहा कि राष्ट्रपिता, मैंने क्रोध में आकर कई बच्चों की हत्या कर दी है क्योंकि अमुक जाति वाले लोगों ने मेरे बच्चे को मार डाला था। अब मुझे आत्मग्लानि हो रही है, आत्महत्या करने की इच्छा हो रही है। गांधी जी ने कहा – निश्चय ही तुमने जो किया वह ग़लत था लेकिन तुम्हें वाकई प्रायश्चित्त करना है तो आत्महत्या करने की बजाय, दूसरी जाति और कौम से नफ़रत करने की बजाय उनके प्रति प्रेम और सद्भाव का आविर्भाव होने दो और जिस जाति वालों ने तुम्हारे बच्चे की हत्या की उस जाति के किसी अनाथ बच्चे को गोद ले लो और अपने बच्चे की तरह उसका पालन-पोषण करो। यही तुम्हारी ओर से सच्चा प्रायश्चित्त होगा।

यह है अहिंसा। पहला यम है अहिंसा और दूसरा सत्य है। सत्य महत्त्वपूर्ण है क्योंकि सत्य ही व्रत है, सत्य ही धर्म है, सत्य ही तप है, सत्य ही आश्रय है। सत्य है

तो शिव है। हमारे देश का तो सूत्र ही है – सत्यम् शिवम् सुन्दरम्। हमारे देश की संस्कृति को सार रूप में इन तीन शब्दों में समाहित किया जा सकता है। बिना सत्य के शिव कैसा और बगैर शिव के सौन्दर्य कैसा! धर्मशास्त्र यही कहते हैं कि सत्य ही भगवान है। सत्य ही राम, कृष्ण, ईश्वर, अल्लाह और गॉड है। जो सत्य को जितना-जितना जिएगा वह उतना ही शिवत्व के करीब होता जाएगा। यही कारण है कि कहा जाता है सत्य को जीने वाले को वचन-सिद्धि हो जाती है। जिसने कभी झूठ न बोला हो वह सदा माता की तरह आदरणीय होता है, पिता की तरह विश्वसनीय और गुरु की तरह पूजनीय होता है। झूठ बोलने वाले को अपने झूठ को बचाने के लिए और न जाने कितने झूठ बोलने पड़ते हैं। लेकिन जो सत्य बोलता है वह अर्धरात्रि में सोते से उठाए जाने पर भी किसी बात में वह वही कहेगा जो उसने पाँच माह पहले कहा होगा। क्योंकि झूठ को याद रखना पड़ता है और सत्य इंसान का स्वभाव बन जाता है।

वाणी के रूप में सत्य जिओ अर्थात् झूठ मत बोलो। राजा हरिश्चन्द्र सत्य के लिए प्रसिद्ध नाम है। वाणी के रूप में सत्य बोलना अर्थात् स्वयं को ऐसी तुला पर रखना जहाँ –

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप ॥

जो सत्य को जीता है वह परमात्मा के सान्निध्य को जीता है। आजकल देखता हूँ लोगों में सत्य के प्रति निष्ठा नहीं रही। वे बात-बात में झूठ बोलते हैं। मोबाइल पर झूठ, व्यापार में झूठ, रिश्तों में झूठ, रुटीन में व्यक्ति झूठ बोल रहा है। येन-केन-प्रकारेण अपनी गोटी फिट करता रहता है। अगर उसे लगता है कि सत्य बोलने से धन कमा सकता है तो सत्य बोल लेता है और झूठ बोलने से कमाई होती है तो झूठ का सहारा ले लेता है। अब व्यक्ति को नीति से कोई मतलब नहीं है। सब जगह राजनीति हो गई है। ईमान या बेईमान कुछ मतलब नहीं रखता। धन आए मुट्ठी में ईमान जाए भट्ठी में। परिणामतः बेईमानी से करोड़पति तो हो जाएँगे लेकिन जीवन में सुखी नहीं रह पाएँगे। किसी-न-किसी बहाने से, बीमारी से, बेटे के कुमार्ग पर जाने से, कोर्ट-कचहरियों के ज़रिए या अन्य किसी वजह से यह धन वापस चला जाएगा। कभी-कभी तो मुझे लगता है यह ठीक ही हो रहा है कि भगवान के द्वारा पैसे की वापसी का रास्ता खुल रहा है। करोड़ों रुपये के चढ़ावे बोले जा रहे हैं यह भी तो पैसे निकलने का रास्ता है जबकि इतने चढ़ावे की ज़रूरत नहीं है। चाहे धर्म के नाम पर हो या किसी अन्य नाम पर पैसा निकल ही जाता है, धन किसी के पास रहता नहीं

है। जो दान-धर्म कर रहे हैं इस तरह उन्हें कोई नहीं पूछता, सच्चाई में तो उनके पैसे को पूछा जा रहा है।

अमरत्व सत्य से मिलता है, सिद्धि सत्य से उपलब्ध होती है। जब भी सत्य को नजरअंदाज किया जाता है जीवन में प्राप्त सिद्धि कम होती है, कटौती और हत्या होती है। एक वाणी का सत्य है दूसरा जीवन का सत्य है, चरित्र का सत्य, ईमान का सत्य। जब तक प्राणों पर न आ जाए झूठ न बोलें। सत्य बोलना सुरक्षित रहना है, इज्जतदार रहना है।

चोरी पर लगाया जाने वाला अंकुश, अचौर्य नामक यम है। धनार्जन तो करना होगा पर झूठ का, चोरी का नहीं। चोरी का माल मोरी में। चोरी का माल तो वापस जाता ही है। किसी के धन की, वस्तु की, विचार की चोरी मत करो। दूसरे की वस्तु को बिना पूछे हाथ मत लगाओ। अब क्या कहा जाए, जब से देश में ईमान कम होने लगा है लोग चोरी-जारी पर उतारू हो गए हैं, तब से देश से देवताओं का बसेरा भी कम हो गया है। चोरी और बेईमानी से अपनी आजीविका की व्यवस्था करना दुर्भाग्य को न्यौता देना है। आजकल सत्संगों में जूतों की चोरी हो जाती है, मंदिरों में मूर्तियों की चोरी हो जाती है, पॉकेटमारी हो जाती है, दो घंटे के लिए व्यक्ति घर में ताला लगाकर बाहर चला जाए तो घर में चोरी हो जाती है। इतना ही नहीं मसालों में मिलावट मिलती है। यह सब चौर्य कर्म है। जब तक हम मंदिर, मस्जिद के धर्म के बजाय जीवन का धर्म नहीं करेंगे तब तक यही हालात रहने वाले हैं। मंदिर-मस्जिद में जाना धार्मिकता का कोई मापदंड हो सकता है, पर जब तक जीवन में ईमान और मोहब्बत नहीं आएगी धर्म नहीं होगा। तेईस घंटे बेईमानी से जीने वाला मंदिर जाए या न जाए कोई बहुत अधिक फ़र्क पड़ने वाला नहीं है। हर व्यक्ति भले ही नमाज़ अदा न करे, पर नमाज़ अदा करने की पात्रता ज़रूर अख़्तियार करे। ज़रूरी नहीं है हर मुस्लिम नमाज़ अदा करे, पर ईमान ज़रूर बरते, मोहब्बत का पैग़ाम ज़रूर दे। नवकार मंत्र, गायत्री मंत्र हमें तभी स्मरण करने चाहिए जब इसकी पात्रता हासिल कर लें। मेरी बातों का कोई बुरा न माने, पर मैं कहना चाहूँगा कि जिन्होंने जीवन में नैतिक मूल्य उतारे हैं, सत्य का आचरण किया है वही मंदिर में या अन्य धर्म स्थलों पर प्रवेश करे। यह पात्रता किसी गुरुमंत्र से नहीं, सत्यता, नैतिक मूल्य, ईमान और पंच व्रत धारण करने से आती है। गुरुमंत्र उन्हें ही दिया जाना चाहिए जो इस कसौटी पर खरे उतरें।

मंदिर में जाकर प्रभु-प्रतिमा को तो प्रणाम कर लेते हैं, पर माता-पिता जो

साक्षात् ईश्वर के प्रतिनिधि हैं उन्हें प्रणाम करने में शर्म आती है। मंदिर की ध्वजा चढ़ाने के लिए लाखों रुपये की बोली ले लेते हैं, पर मंदिर के बाहर बैठे भिखारी को दो रुपये नहीं दिए जाते – ये विरोधाभास है। लाखों रुपये खर्च करना आसान होता है, पर दो रुपये खर्च करना कठिन होता है। सत्य और अचौर्य जैसे महान धर्म और यम के सहारे ही यह देश ऊँचा उठेगा, समाज और परिवार का बेहतर निर्माण होगा। हममें से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी कमाई का 2½ हिस्सा ‘परोपकार’ के लिए निकालना चाहिए। अरे भाई, घर में केवल ‘शुभ लाभ’ पर ही गौर मत करो, ‘शुभ खर्च’ पर भी विचार करो। ‘शुभ लाभ’ की रोशनी आखिर ‘शुभ खर्च’ की खिड़की में से ही आती है।

जो कम सक्षम हैं वे प्रतिदिन दस रुपये अपने खर्च में से बचत करें और दीन-दरिद्र-दुखियों की सहायता में उसका उपयोग करें। अगर देशवासी ऐसा करते हैं तो इस देश में गरीबी का नाम न रहेगा। आज की नीतियाँ तो गरीबों को ही मिटा डालने वाली हैं। प्रतिदिन दस रुपये की बचत से माह के अंत तक तीन सौ रुपये हो जाएँगे, जो किसी छात्र के, बीमार के या अन्य जरूरतमंद के लिए बहुत सहायक होंगे। यह ऐसा कल्याणकारी कार्य होगा जिसके लिए इंसानियत आपकी कृतज्ञ होगी और श्री प्रभु के आशीर्वाद भी आप पर बरसेंगे।

चौथा यम है – ब्रह्मचर्य। मैथुन-प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना ब्रह्मचर्य है। स्वदार व्रत अर्थात् स्वपति या स्वपत्नी संतोष व्रत धारण करना कि अपने पति या पत्नी तक सीमित रहना। इतना ही नहीं पति और पत्नी के साथ भी परिसीमन रखें। उसमें भी कुछ मर्यादा पालन करें। ऐसा नहीं कि विवाह हो गया तो निरंकुश स्वीकृति मिल गई। इस पर भी अंकुश। पशु और पक्षी भी, जो मनुष्य के समान पढ़े-लिखे और समझदार नहीं हैं उनकी भी एक ऋतु होती है, वे संयम में रहते हैं। लेकिन मनुष्य जितना आधुनिक, समृद्ध और तकनीकी रूप से उन्नत होता जा रहा है उसकी शैतानी हवस भी बढ़ती जा रही है। ब्रह्मचर्य का पहला नियम हो कि व्यभिचार नहीं करेंगे। दूसरा – अपनी पत्नी/पति तक सीमित रहेंगे। तीसरा – पति/पत्नी के साथ सप्ताह में एक दिन से अधिक सहवास नहीं करेंगे। इस प्रकार की सीमाओं से जीवन में शील और ब्रह्मचर्य घटित होता है। शील और ब्रह्मचर्य से जीवन में प्राणों की ओजस्विता, आत्मा और चेतना की तेजस्विता, देहबल, मनोबल, वचनबल क्रमशः बढ़ता जाता है। एक बार उपभोग करने के बाद उन तत्त्वों के निर्माण में कम-से-कम तीन दिन तो लगते ही हैं। लेकिन निर्माण हो नहीं पाता उसके पहले ही पुनः उपभोग हो जाता है

और क्षय भी। परिणामतः व्यक्ति के पास जो ऊर्जा और ताक़त होनी चाहिए वह मिल नहीं पाती और विखंडन जारी रहता है और इंसान समय से पहले ही बूढ़ा हो जाता है।

पाँचवाँ और अंतिम यम है – अपरिग्रह। अर्थात् असीमित परिग्रह करने की बजाय परिग्रह-वृत्ति पर अंकुश। जीवन में एक सीमा हो कि हम अपने पास अमुक वस्तुएँ अमुक मात्रा में ही रखेंगे। मकान, ज़मीन, वस्त्र, सोना आदि एक विशिष्ट सीमा तक ही अपने पास रखेंगे, शेष का त्याग कर देंगे। गरीबों को न भी दे सको तो कम-से-कम अपने परिवार में ही बाँट दो। किसी भी बहाने परिग्रह तो कम होगा। हमारे मोह और आसक्तियाँ बहुत हैं। इसके चलते दूसरों को न सही, परिजनों को ही दे दो ताकि तुम्हारा कुछ बोझ कम हो सके। हम संतों को देखो कहीं भी सो जाते हैं निश्चित होकर क्योंकि हमारे पास कुछ है ही नहीं कि कोई क्या ले जाएगा और तुम्हें टेंशन के कारण रातभर नींद नहीं आती।

ऐसा हुआ गोरखनाथ जी अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ जी के पास गए। वापसी में दोनों साथ ही आए। गुरु के पास सोने की ईंट थी। वह ईंट उन्होंने थैली में डालकर गोरखनाथ को पकड़ाई और कहा ले इसे पकड़ ले, इसमें थोड़ी चिंता है। ध्यान रखना, इसकी फ़िक्र रखना। दोनों साथ चल दिए। रात हो गई, एक स्थान पर विश्राम किया और सुबह पुनः चल पड़े। चलते-चलते मत्स्येन्द्रनाथ जी ने पूछा – बेटा, वह थैली संभालकर रखी हुई है न! उस फ़िक्र की फ़िक्र की या नहीं? गोरखनाथ जी ने कहा – अब फ़िक्र की ज़रूरत नहीं है क्योंकि जिसके कारण फ़िक्र हो रही थी, उसे तो मैंने कुएं में डाल दिया। अब जब वह चीज़ ही नहीं रही तो किस बात की फ़िक्र।

चीज़ों की मोहासक्ति ही न रही तो वह चीज़ हम पर कैसे हावी हो सकती है! जितनी आवश्यकता है उतना धन रखें – ओवर लोड परिग्रह न करें। अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति तो हमें करनी ही होगी। वस्त्रों की भी सीमा रखें। नया बनाएँ ज़रूर पर पुराने में से एक त्याग कर दें। एक संख्या तय कर लें कि आप इतने ही वस्त्र रखेंगे। उससे अधिक होने पर ज़रूरतमंदों को वितरित कर दें। जो आपके काम नहीं आते, पुराने फैशन के हो गए हैं, जिन्हें आप नहीं पहनते हैं उन्हें अवश्य ही बाँट दें। बहुत से ऐसे लोग हैं जिनके पास वस्त्र ही नहीं होते या जर्जर हो चुके होते हैं उन्हें दीजिए। अपरिग्रह कीजिए। त्याग करना है – परिग्रह परिणाम व्रत। अर्थात् परिग्रह पर अंकुश लगाएँ।

खाना खाएँ तो विवेक रखें कि इतने द्रव्यों का ही उपयोग करेंगे इससे अधिक

नहीं। माना कि आपका नियम है बारह-पन्द्रह द्रव्यों को खाने का तो बस उतना ही लें। आजकल शादी-विवाह में सैकड़ों आइटम बनते हैं, पर आप संयम रखें। इतने आइटम होंगे तो चखने-चखने में ही पेट भर जाता है और अनाप-सनाप जूठा जाता है सो अलग। शादी का भोजन अर्थात् पेट की कब्र। सात्त्विक भोजन लीजिए। जो सात्त्विक भोजन करते हैं उन्हें अस्पताल का मुँह अधिक नहीं देखना पड़ता।

धन-रोटी-कपड़ा-मकान सबका अपरिग्रह करें, सब पर अंकुश लगाएँ, सब पर अपना संयम रखें। यही श्रावक-धर्म है। गांधीजी अपरिग्रह का पालन करने वाले इस देश के आदर्श व्यक्ति हुए। जिन्होंने मानव-समाज के समक्ष अपरिग्रही का महान उदाहरण प्रस्तुत किया। एक छोटी-सी धोती और ऊपर ओढ़ने का दुशाला, इसके ऊपर अपना पूरा जीवन व्यतीत कर दिया। सर्दी में एक कंबली और डाल ली। दो-चार वस्त्रों से अधिक की उन्होंने कभी ज़रूरत ही महसूस न की और वे पूरे विश्व में प्रसिद्ध हो गए। अगर वे जवाहरलाल नेहरू की तरह टिप-टॉप रहते तो प्रसिद्धि तो मिलती, किंतु दर्जा नेहरू जी जितना ही मिल पाता। आज उनकी स्थिति नेहरू जी से हज़ार गुना ऊपर है।

राजा आदरणीय हो सकता है, पर पूजा तो त्यागी की ही होती है। महावीर, राम, बुद्ध आज भी पूजे जाते हैं क्योंकि उन्होंने राजा होकर भी त्याग दिया था सब कुछ। सिकंदर या अकबर के स्टेच्यू तो ज़रूर बनाए जा सकते हैं पर यह दुनिया त्यागी का ही सम्मान करेगी। इसीलिए तो -

वाह रे गांधी !

क्या चली है तेरे नाम की आंधी।

कल तक फिरते थे लंगोट में

आज बैठे हो

पाँच सौ के नोट में।

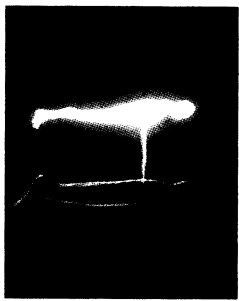
इससे सुंदर अपरिग्रह का क्या उदाहरण मिलेगा कि जो कल तक एक धोती दुपट्टे में घूमता था वह आज देश की मुद्रा पर अंकित है। यह अंकन इसीलिए है कि हमें भी उनकी तरह अपरिग्रह का पाठ मिले। यह प्रकाश किरण हमें भी मिले। जो ग्रहण करेगा उसे धर्म मिलेगा अन्यथा भोग-विलास में तो उलझे ही हैं।

ये पाँच यम योग और समाधि के प्रवेश द्वार हैं। योग के आठ अंगों में से हम यम को समझ चुके हैं। यम इसीलिए ज़रूरी है कि हमारे जीवन में नैतिक मूल्य हो, सामाजिक और मानवीय मूल्य हों। जब कोई समाज और नैतिकता की दृष्टि से

आदरणीय बनता है तभी वह धीरे-धीरे योग की ओर भी परिपक्व होता है। इस तरह समाधि, ऋतम्भरा प्रज्ञा, कैवल्य या सर्वज्ञता तक पहुँचने के लिए, परमात्म-तत्त्व तक पहुँचने के लिए हमें सर्वप्रथम यम के द्वारा स्वयं को परिपक्व कर लेना चाहिए।

आज के लिए इतना ही प्रेमपूर्ण अनुरोध....

नमस्कार !



योगासन :

प्रभाव और परिणाम

मेरे प्रिय आत्मन् !

मनुष्य-जीवन की तुलना सितार या तानपूरे से की जा सकती है। सितार के तारों को यदि अधिक कस दिया जाए तो तारों की टूटन संभव है और ढीला छोड़ दिया जाए तो सुर-संगीत ही न निकले। यही स्थिति हमारे जीवन के साथ भी है और योग वह मार्ग प्रशस्त करता है जिससे जीवन के तारों को इतना ही कसा जाए कि जीवन का संगीत, जीवन का आनंद उपलब्ध हो सके। योग व्यक्ति के मन, शरीर और प्राणों के मध्य ऐसा संतुलन स्थापित करता है कि उसका जीवन मरघट का मुसाफिर न बनकर आनन्द का उत्सव बन जाए, संगीत का संसार और प्रकृति तथा परमात्मा का पुरस्कार बन जाए।

योग मन, देह, प्राण और आत्मा तक को स्वस्थ करता है। सीधे प्राण और आत्मा तक की यात्रा कठिन हो सकती है, लेकिन क्रमशः यात्रा करने पर यह सुगम हो जाती है। योग स्थूल से सूक्ष्म तक, बाहर से भीतर तक स्वस्थ, प्रसन्न, आनन्दपूर्ण और समाधिमय बनाना पसंद करता है। जब तक देह का ढाँचा ही ठीक न होगा, हमारे शरीर के प्रमाद ही दूर न होंगे, शरीर स्वस्थ व आरोग्यमय न होगा, तब तक

व्यक्ति ध्यान और समाधि जैसी ऊँचाइयों को उपलब्ध नहीं कर पाएगा। न तो पंद्रह मिनट में ध्यान सधता है, न ही एक घंटे में समाधि उपलब्ध होती है, न ही दो घंटों में कैवल्य या सर्वज्ञता मिलती है। जन्मों-जन्मों के कर्म, संस्कार, प्रकृति, वृत्तियाँ हमारे घातक व आत्मघातक मनोरोग, वासनाएँ, विकार, इच्छाएँ, तृष्णाएँ, कामनाएँ आदि अनेकानेक उपद्रव हमारे साथ जुड़े हुए हैं और ये उपद्रव कुछ समय में सध नहीं जाते।

हमारे धार्मिक आख्यान कहते हैं भाव-श्रेणी की उच्चतम अवस्था में इलायची कुमार को रस्सी पर नृत्य करते-करते कैवल्य उपलब्ध हो गया। भावों की उच्च शृंखला में माता मरुदेवी को हाथी के हौदे पर बैठे-बैठे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। पढ़ने-सुनने में तो ये कहानियाँ बहुत अच्छी लगती हैं, हमें अपनी भावशुद्धि के लिए प्रेरणा देती हैं, लेकिन जब इन्हें जीवन में व्यावहारिक रूप से जोड़ते हैं तब प्रतीत होता है कि अपनी भावदशाओं में हम भी कई मर्तबा इतने उत्कर्ष को उपलब्ध हुए, फिर भी हमें वह परिणाम नहीं मिला जो धार्मिक पुस्तकें बयान करती हैं।

ऐसा लगता है कि भावोत्कर्ष अलग और हमारे मनोविकार, मन की कमजोरियाँ, चित्त के संस्कार और कर्म-प्रकृति संश्लिष्ट हैं। ये पल में नहीं टूटतीं, पल में ही खत्म नहीं होतीं। इंसान को हर सफलता के लिए संघर्ष करना होता है। नदी का पानी अगर पथरों से संघर्ष नहीं करेगा तो उसमें से कभी कलकल की मधुर ध्वनि नहीं आएगी। जब तक चंदन घिसेगा नहीं, खुशबू नहीं देगा। दीपक जलेगा नहीं तो रोशनी कैसे बिखरेगा। हर श्रेष्ठता के लिए तपना पड़ता है, खपना और जपना पड़ता है, अपना सब कुछ दाँव पर लगा देना होता है तभी कुछ परिणाम हासिल हो सकता है। इसीलिए पतंजलि सीधे-सीधे आत्म-साधना की बात नहीं करते। वे सबसे पहले शरीर को साधन बनाना चाहते हैं, शरीर को स्वस्थ कर लेना चाहते हैं।

यूँ तो कहा जाता है कि - शरीरं व्याधि मंदिरम्। लेकिन यह भी कहा जाता है कि - शरीरं खलु धर्म साधनं - शरीर ही धर्म का साधन है। माना कि शरीर रोगों का घर होगा लेकिन यह बात उन कायरों, नपुंसकों और कमजोर लोगों के लिए है जो अपने शरीर को निरोगी और आरोग्यमय बनाना नहीं जानते। कहते हैं न - पहला सुख निरोगी काया, लेकिन यह कहने भर से शरीर निरोगी नहीं होगा। इसके लिए बाकायदा प्रयास करने होंगे। हमें स्मरण रखना चाहिए कि केवल अच्छे खान-पान से ही व्यक्ति स्वस्थ नहीं होता, इसके लिए योगाभ्यास भी करना होगा, व्यायाम करना होगा। अपने शरीर को इतना निरोगी बनाना होगा कि यह व्याधि का घर नहीं

अपितु यह तन ईश्वर के रहने का घर बन जाए, मंदिर बन जाए।

मेरे लिए तो मेरा शरीर ही मेरा मंदिर है और जितना पवित्र दृष्टिकोण किसी धर्म-स्थल के लिए रखता हूँ उतने ही पवित्र भाव से इस देह को भी देखता हूँ। देह के साथ सकारात्मक व्यवहार करना चाहिए, इसका आदर, सम्मान और पवित्रता बनाए रखनी चाहिए क्योंकि शरीर प्रभु के रहने का घर है। इसीलिए पतंजलि सर्वप्रथम शरीर को ही दुरुस्त करने की बात कहते हैं। आज हम योग के तीसरे चरण में प्रविष्ट हो रहे हैं जिसका मूल संबंध शरीर से है। पतंजलि कहते हैं – स्थिर सुखम् आसनम्। जो स्थिर व सुखदायी हो वह आसन है। आसन अर्थात् बैठक या बैठना। साधक के लिए जरूरी है कि वह ऐसा आसन लगाकर बैठे जिसमें स्थिरता हो और वह सुखदायी हो। अर्थात् अधिक समय तक जिसमें सुखपूर्वक बैठ सकें। ध्यान करने के लिए सुखदायी हो, कष्टदायी न हो, वह उस आसन में लगातार लम्बी बैठक लगा सके, यही आसन उसके लिए कल्याणकारी है। ध्यान में यदि देह-संचालन करेंगे, हाथ-पाँव हिलाएँगे, कमर झुकाकर बैठ जाएँगे तो आलस आ जाएगा तब ध्यान निद्रावस्था में प्रवेश होगा। आसन में व्यक्ति शरीर मन, वाणी की प्रवृत्तियों को स्थिर करता है और ध्यान के लिए यही पहली अनिवार्यता है।

समाधि का प्रथम प्रवेश द्वार यही है कि व्यक्ति ने अपने मन, वाणी और काया तीनों को सहज और स्थिर कर लिया है। आसन योग का तीसरा चरण है। आसनों की चर्चा में यह जान लेना चाहिए कि जिस स्थिति में हम बैठते हैं स्थिरतापूर्वक वह आसन है। ध्यान के लिए सहज व सुखद आसन हैं – सुखासन, पद्मासन, अर्ध पद्मासन, स्वस्तिक आसन, वज्रासन, गोमुख आसन। यँ तो बहुत से आसन हैं लेकिन जिस मुद्रा में आधा घंटे से लेकर डेढ़-दो घंटे तक आराम से बैठा जा सके वही आसन उपयुक्त है। लेकिन यह स्थिति कैसे पाई जा सके इसके लिए योगाभ्यास, योगासन अतीत के महानुभावों ने हमें बताये हैं। जिसमें सूर्य नमस्कार के रूप में बारह मुद्राएँ विश्व-प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त लेटकर किए जाने वाले आसन, बैठकर किए जाने वाले आसन, खड़े होकर किए जाने वाले आसन इतने आसन हैं कि हमें देखना होगा कि कौन-कौन से आसन हमारे शरीर के अनुकूल बन पड़ते हैं। याद रहे, जीवन में चाहे धर्म हो या तपस्या या योग अपने वर्तमान आरोग्य, अपने शरीर के वर्तमान बल, अपनी श्रद्धा, देश, क्षेत्र, काल, भाव सभी परिस्थितियों के जितना जो अनुकूल हो उसके अनुरूप ही हमें योग, तपस्या, धर्म या अन्य किसी भी कार्य को अपनाना चाहिए।

यदि शरीर में ताक़त नहीं है और कर डाले बीस आसन, तो ये आसन हमारे लिए घातक हो जाएँगे। जैसे बच्चा एक ही दिन में चलना नहीं सीखता उसी तरह हमें भी धीरे-धीरे आसन क्रमशः बढ़ाने चाहिए। इसके लिए भले ही कितना भी वक़्त लग जाए। आसन करने के बाद शरीर में स्फूर्ति महसूस होनी चाहिए न कि उससे थकान आए या शरीर में दर्द हो। जीवन सरलता से, सहजता से जिएँ। यहाँ शिविर में व प्रतिदिन बीस मिनट योगासन अवश्य करने चाहिए। कई लोग तो एक घंटे तक भी योगासन करते हैं लेकिन बीस मिनट तक नियमित रूप से किया गया योगाभ्यास व्यक्ति को स्वस्थ, प्रसन्न और आनन्दपूर्ण देह-निर्माण के लिए पर्याप्त है। अपनी अनुकूलता के अनुसार समय बढ़ाया भी जा सकता है, दूसरे आसन भी किए जा सकते हैं।

जैसा कि मैंने कहा जीवन वीणा के तारों की तरह है, इसे साधो। न अधिक कसो न ही ढीला छोड़ो, मध्यम मार्ग अपनाओ। बुद्ध के मध्यम मार्ग से यह अवश्य सीखो कि तारों को ज़्यादा कसा तो भी घातक है और संसारी प्राणियों की तरह ढीला छोड़ देना भी घातक है। साधक वह है जो जीवन की वीणा को, तारों को साधता है। ज्ञान की, प्रज्ञा की अँगुलियों को जीवन पर साधता है। योगासनों का हमारी प्राण चेतना के साथ सीधा संबंध नहीं है। योग का संबंध विशुद्ध रूप से हमारे शरीर के साथ है। शरीर स्वस्थ हो – यह योग का पहला और अंतिम उद्देश्य है। हम योग को आसन और योगाभ्यास के रूप में लेते हैं। योग स्वास्थ्य का, शरीर-सुख का, शारीरिक समृद्धि का, शारीरिक चेतना का पहला आधार है। अब हम देखेंगे कि योग हमें कैसे परिणाम देता है।

हमारी बाह्य त्वचा के भीतर हैं माँसपेशियाँ। जब व्यक्ति योगाभ्यास करेगा तो उसकी माँसपेशियाँ मजबूत होंगी। पुट्टे, कंधे, पीठ की माँसपेशियाँ, जाँघ, बैठक, पिण्डलियाँ, पगथलियाँ मजबूत होंगी। योग शरीर को सौष्ठवता प्रदान करता है। माँसपेशियों के अंदर है अस्थि-संस्थान। यह शरीर हड्डियों का कंकाल है। यह देह जो चल-फिर रही है, खड़ी है, इसका आधार है अस्थि-संस्थान। हड्डी को मोड़ा-तोड़ा नहीं जा सकता, हिलाया भी नहीं जा सकता, हड्डी तो सख़्त होती है, लेकिन योग के द्वारा दो हड्डियों के संधिस्थल को लचीला बनाया जाता है। हमारी पूरी देह में ढेरों संधिस्थल हैं, इन्हें लचीला व मजबूत बनाने का कार्य योग करता है। जब कोई हड्डी टूट जाती है तो प्लास्टर चढ़ाकर उसे सैट कर दिया जाता है और महीने-डेढ़ महीने में वह जुड़ जाती है, लेकिन प्लास्टर हटने के बाद वह संधिस्थल कड़क

हो जाता है। उसे पुनः हलन-चलन कराने के लिए व्यायाम करना होता है। योगाभ्यास भी एक तरह का शारीरिक व्यायाम है।

अस्थि-संस्थान को लचीला बनाने के लिए योगाभ्यास करें। जो बिल्कुल भी योगाभ्यास नहीं करता, घूमने नहीं जाता वह व्यक्ति उम्र से पहले ही बूढ़ा हो जाएगा। उसकी कमर अकड़ जाएगी। रीढ़ की हड्डी के मनके कड़क हो जाएंगे। उनका लचीलापन समाप्त होने लगेगा। उसे झुकने में भी तकलीफ होगी। पहले लोग सुबह उठकर अपने माता-पिता को प्रणाम करते थे, आजकल झुकना तो आता ही नहीं है। मानो कमर अकड़ गई है। अभी अठारह वर्ष की उम्र में यह हाल है तो चालीस की उम्र में तो झुक ही न पाओगे। घुटनों में दर्द होगा, पीठ अकड़ चुकी होगी क्योंकि हड्डियों का लचीलापन समाप्त हो चुका होगा। इसलिए योगाभ्यास जरूरी है। सुबह टहलने जाएँ तो थोड़ा तेज गति से ताकि पूरे शरीर से पसीना बह निकले। इससे शरीर के विकार और दोष दूर होते हैं। हमारी देह में लाखों रोम-छिद्र हैं जिनके द्वारा पसीने के रूप में देह की गंदगी बाहर निकलती रहती है। अस्थि-संस्थान को स्वस्थ रखना योग का दूसरा परिणाम है।

योग का तीसरा परिणाम है हमारे नाड़ी-संस्थान को ठीक करना। आर्टरी, नर्व्स और वेन्स ये तीन नाड़ी-संस्थान हैं। आर्टरीज हृदय से शुद्ध रक्त को पूरे शरीर में प्रवाहित करती है। वेन्स पूरे शरीर के अशुद्ध रक्त को फिल्टर होने के लिए पुनः हृदय में पहुँचाती है और नर्व्स शरीर में होने वाली अनुकूल और प्रतिकूल संवेदनाओं को ग्रहण करती है। योग का कार्य इन तीनों को दुरुस्त करना है। इनकी संवेदनशीलता को बढ़ाना है। शुद्ध और अशुद्ध रक्त को जो नाड़ियाँ थामती हैं उनमें लचीलापन लाना, उन्हें स्वस्थ बनाना है। योग की भाषा में हमारे शरीर में तीन नाड़ियाँ हैं – इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। योग का कार्य इन तीनों नाड़ियों को स्वस्थ बनाना है। ये नाड़ियाँ मस्तक से ठेठ बैठक तक जो मेरुदण्ड है उससे जुड़ी हुई हैं। इन नाड़ियों का पूरी देह में विस्तार होता है। हमारे शरीर में इतनी नाड़ियाँ हैं कि अगर इन्हें आपस में जोड़ दिया जाए तो ये चार किलोमीटर दूर तक चली जाएँगी। अगर एक बारीक नाड़ी भी दुष्प्रभावित हो जाए तो लकवा हो जाता है। मेरुदण्ड में से गुजरने वाली एक बारीक-सी नाड़ी भी दब जाए तो वे नर्व्स जो संवेदनाएँ ग्रहण करती हैं, ऊर्जा पहुँचाती हैं वे उस विशिष्ट अंग तक पहुँचने नहीं देती और वह अंग कमजोर होकर अंततः काम करना बंद कर देता है। यह नाड़ी-संस्थान शरीर का महत्वपूर्ण हिस्सा है और इसे दुरुस्त करने के लिए व्यायाम करना होगा ताकि वह सुचारू रूप से काम कर

सके। इन्हें स्वस्थ सक्रिय रखने के लिए ही योग है।

अभी हम शरीर के तल पर योग के परिणाम देख रहे हैं। योग का चौथा परिणाम है हृदय-प्रणाली को स्वस्थ बनाना। नियमित योगाभ्यासी के हृदय में अवरोध नहीं आएँगे। क्योंकि नियमित योग से नाड़ी संस्थान सुचारु रूप से कार्य करेगा और हृदय में रुकावट नहीं आने देगा। नियमित योग से रक्त-प्रवाह के दबाव में एक संतुलन रहेगा और उच्च व निम्न रक्तचाप की संभावना कम होगी। अगर किसी को उच्च व निम्न रक्तचाप है तो उसे नियमित रूप से योगासन करने चाहिए। तीन-चार माह बाद आप पाएँगे कि या तो बीमारी जड़ से चली गई या उस पर नियंत्रण हो गया है। अगर वह दवा ले भी रहा है तो भी रोग में वृद्धि नहीं हो रही है, उस पर एक अंकुश लग गया है। योग से हृदय-तंत्र में मजबूती आती है, ताकत बनती है। हृदय रूपी पंपिंग स्टेशन बिल्कुल दुरुस्त होता है।

आपने देखा होगा हृदय लगातार धड़कता रहता है। हम कुछ करें या न करें हृदय का काम जारी रहता है। इंसान का मस्तिष्क सो सकता है, पर हृदय कभी नहीं सोता। उसके मस्तिष्क को निकालकर भी व्यक्ति को जीवित रखा जा सकता है, पर हृदय को निकाल देने पर उसे जीवित नहीं रखा जा सकता है। तभी तो धर्मशास्त्र कहते हैं कि इंसान की आत्मा हृदय के क्षेत्र में व्याप्त रहती है। देखा जाए तो शरीर के सभी अंग एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। कभी कोई अंग निष्क्रिय हो जाता है तो जानना चाहिए कि नाड़ी-तंत्र में अवरोध आ गया होगा। हमारा शरीर परमात्मा की महान कृति है। वह नौ माह में एक पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण कर देता है और डॉक्टर को टूटी हुई हड्डियाँ जोड़ने में कम-से-कम डेढ़ माह लग जाता है। कभी-कभी तो वर्ष दर वर्ष ऑपरेशन करते रहते हैं। परमात्मा केवल एक चीज़ पूर्ण विकसित नहीं देता वह है बुद्धि। बुद्धि देता जरूर है, पर सूक्ष्म मात्रा में। उसका तो जीवन भर विकास करना होता है। व्यक्ति अगर बुद्धि का विकास नहीं करता तब भी प्रभु इतनी बुद्धि तो प्रदान करता ही है कि वह अपना जीवन-यापन कर सके। वह भाषा भी सीख जाता है, चलने-फिरने भी लगता है यहाँ तक कि इतना कमा भी लेता है कि खुद का पेट भर सके। यहाँ तक कि अनपढ़ होकर भी वह दूसरों को सलाह तो दे ही सकता है। इस तरह प्रकृति पूर्ण बनाकर तो भेजती है, लेकिन हम अपने पुरुषार्थ द्वारा अपने दीप को कैसे ज्योतिर्मय कर सकते हैं इसका प्रयास करते हैं।

योग का एक अन्य कार्य पाचन-तंत्र को दुरुस्त करना है। आमाशय, पित्ताशय, किडनी, पैंक्रियाज आदि सभी पर व्यायाम का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इसीलिए कहा जाता है जीवन का संचालन करने के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है – आहार, विहार और निहार। आहार यानी भोजन ग्रहण करना, विहार अर्थात् चलना-फिरना। अब हम केवल आहार लेते ही रहेंगे, चलेंगे- फिरेंगे नहीं, तो ऊर्जा कैसे मिलेगी। आंतरिक ऊर्जा को पाने के लिए शरीर को बाह्य रूप से मूवमेंट देना ज़रूरी है। निहार अर्थात् अपशिष्ट पदार्थ मल-मूत्र के रूप में बाहर निकल जाए।

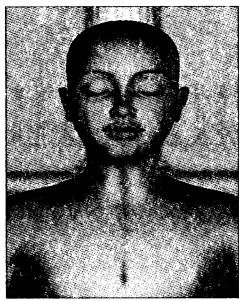
भोजन को ख़ूब चबाकर खाना चाहिए। वह अच्छी तरह से पका हुआ भी हो। उगाना, पकाना, चबाना और पचाना – ये चारों जब सही ढंग से होते हैं तो पाचन तंत्र भी ठीक रहता है। भोजन ठीक से पका हुआ हो और ख़ूब चबा-चबाकर खाया जाए क्योंकि मुँह में जो लार होती है वह भोजन को निगलने और पचाने में सहायता करती है। पेट में जाकर तीन घंटे बाद भोजन के पचने की प्रक्रिया शुरू होती है। तब आमालशय से एंजाइम और एसिड का स्राव होता है जो भोजन को पचाने का काम करता है। इसके बाद भोजन के पोषक तत्व आँतों द्वारा अवशोषित कर लिए जाते हैं। स्वस्थ भोजन स्वस्थ शरीर का आधार होता है और शरीर को स्वस्थ रखने के लिए नियमित योग करना अनिवार्य है।

व्यायाम, योगाभ्यास या योग हमारे शरीर को स्वस्थ व मज़बूत बनाता है। देह की मज़बूती के साथ ही हम स्थिरतापूर्वक और सुखपूर्वक आसन में बैठेंगे। शरीर के स्वस्थ होने से हमारे भीतर स्थिरता आएगी। योग रोग को काटता है। यह शरीर को स्वस्थ तो करता ही है, रोग को काटकर प्रतिरोधक क्षमता भी विकसित करता है। रोगों की वज़ह क्या है? मेरी दृष्टि में पहला कारण है – असंयमित भोजन + नियमित समय पर भोजन न करना, देर रात तक खाते रहना, बाजारू खाना खाना (बाजारू खाने में शुद्धता नहीं होती), तेज मिर्च-मसाला, अधिक मिठाइयाँ, ज़रूरत से अधिक शक्कर का प्रयोग करना। शरीर को अतिरिक्त शक्कर की आवश्यकता नहीं होती। हम जो भी दूध या अन्य फलों का रस लेते हैं उनमें शर्करा की भरपूर मात्रा होती है। अतः अलग से शक्कर की ज़रूरत नहीं होती। खाना खाकर तुरंत सो जाने से भी रोगों में इज़ाफ़ा हो रहा है। सोने के चार घंटे पहले खाना खा लेना चाहिए ताकि खाया हुआ भोजन हज़म हो सके। असंयमित भोजन बीमारी का कारण है। व्यक्ति को एक दिन में कम-से-कम तीन लीटर पानी पीना चाहिए। इतना ही भोजन करें कि पानी पीने के लिए पर्याप्त जगह बनी रहे। जीने के लिए खाओ, खाने के लिए मत जिओ। सात्विक, संयमित भोजन करो।

दूषित पर्यावरण रोग का दूसरा कारण है। अगर हम पेड़ों को काटने से नहीं रोक सकते तो पौधारोपण तो कर ही सकते हैं। अपने घर के आसपास पेड़ लगाएँ ताकि शुद्ध ऑक्सीजन हमें मिल सके। गंदगी न रहने दें। अपने गली, मोहल्ले, नगर को स्वच्छ रखने के लिए जागरूक रहें। स्वच्छता ही स्वर्ग की जननी है। मेरे कहने से ही सही, 25 रुपए खर्च कीजिए और आज ही दो पौधे खरीद लाइए – 1. नीम का और 2. आम का। नीम शुद्ध हवा देगा और आम मीठे मधुर फल देगा। इसे भले ही गुरु दक्षिणा समझकर पूरा कर लें, पर कर लें। आने वाली पीढ़ियाँ तक इससे लाभान्वित होंगी।

तीसरे कारण के रूप में व्यायाम का, योगासन का अभाव, सुबह की सैर न करना भी रोगों की वजह होती है। हमें चाहिए कि हम अपने शरीर के प्रति जागरूक रहें। अगर हम अपनी औसत आयु पचहत्तर वर्ष मानते हैं तो यह देह रूपी मित्र हमारे साथ रहेगा। अपने मित्र के साथ मित्रता का खयाल रखना चाहिए। इसके स्वास्थ्य और आरोग्य का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। शरीर स्वस्थ व सुदृढ़ होगा तो हम योग के तीसरे चरण को करने में अर्थात् स्थिर होकर सुखपूर्वक बैठने में समर्थ होंगे। जब आसन स्थिर हो जाएगा तो हम प्राणवायु के द्वारा, प्राणचेतना, शरीर की आंतरिक शक्ति और ऊर्जा को कैसे जाग्रत करें इसकी चर्चा आगामी दिवस को करेंगे। आज के लिए इतना ही.....

नमस्कार!



प्राणायाम की सरल एवं सूक्ष्म समझ

मेरे प्रिय आत्मन् !

ध्यान की पृष्ठभूमि बनाने के लिए ध्यान में प्रवेश करने के लिए साँस जीवन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। साँस वह सेतु है जो हमें बाहर से भीतर तक जोड़ता है। साँस जीवन का आधार है। श्वास हमें अपने नाड़ी-संस्थान, प्राण-तंत्र और चेतना-तंत्र तक जोड़ता है। भले ही हम यह समझें कि श्वास शरीर की व्यवस्था है लेकिन सचाई तो यह है कि यह हमें तन, मन से निरोगी व प्राणतंत्र को सक्रिय व ऊर्जावान बनाता है। यह हमें हमारी चेतना और आत्मा तक पहुँचाता है। यह हमें अपने-आप से मिलन करवाता है।

प्राणायाम की चर्चा करते हुए यह जानना आवश्यक है कि वायु हमारे लिए संपूर्ण अस्तित्व है। यह कितनी महत्त्वपूर्ण है यह इसी से जाना जा सकता है कि साइकिल के दो पहियों पर तीन-चार इंसान एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं। माना कि उसकी बनावट भी भिन्न है लेकिन महत्त्वपूर्ण भूमिका तो पहियों में भरी हवा की ही है। यदि ट्यूब में से हवा निकाल दी जाए तो सारी व्यवस्था ही चरमरा जाती है। एक ट्रक जो पच्चीस टन माल ले जा सकता है, सारी व्यवस्था सुव्यवस्थित

है लेकिन एक पहिया पंचचर हो जाए तो सारी व्यवस्था बेकार हो जाती है, ट्रक एक फुट भी आगे नहीं बढ़ सकता। यह वायु प्राणवायु है फिर चाहे वह सजीव का संचालन करना हो या निर्जीव का।

वायु संतुलित सम-शीतोष्ण होगी तो हमारे लिए उपयोगी होगी। अति ऊष्ण वायु हमें झुलसा देगी और अति शीतल, ठंडी हवा हमें कंपकंपी छुड़ा देगी। सम-शीतोष्ण हवा ही हमारे शरीर को सुखदायी लगती है।

कहा जा सकता है कि व्यक्ति अपनी निर्धारित साँसें लेकर ही जन्म लेता है और एक साँस भी अधिक नहीं ले सकता। श्वास के साथ ही जीवन का प्रारम्भ होता है और श्वास पर ही जिंदगी का समापन हो जाता है। आती हुई साँस जिंदगी है तो जाती हुई साँस मृत्यु भी हो सकती है। किसी की मृत्यु होने का अर्थ ही यही है कि एक ऐसी साँस जो व्यक्ति ने निकाली तो सही, पर वापस लेने में असफल रहा। श्वास का सातत्य ही जीवन है अर्थात् श्वास आती-जाती बनी रहती है। श्वास के शांत होते ही व्यक्ति की देह भी शांत हो जाती है, फिर उसके अंगोपांग शिथिल हो जाते हैं।

हम सभी जानते हैं कि श्वास हमारे लिए महत्वपूर्ण है। अब हमें जानना है कि यह हमारे जीवन में किस तरह कार्य करती है। इसकी इतनी अधिक उपयोगिता क्यों समझी जाती है। हम नासिका से साँस लेते हैं और नासिका से साँस लेना ही लाभप्रद है। मुँह से साँस लेना श्वास को अशुद्ध कर देता है। कैसे? जब मुँह से श्वास लेते हैं तो हवा की गंदगी भी मुँह के द्वारा गले और फेफड़ों तक पहुँच जाती है लेकिन नासिका से श्वास लेने पर वायु की अशुद्धता (धूल-गंदगी के कण) नासिका के रोमों (बालों) में उलझ जाती है और शुद्ध वायु अंदर प्रविष्ट होती है। मुँह आहार ग्रहण करने और वाणी का उच्चारण करने की व्यवस्था है और नासिका साँस लेने और छोड़ने की व्यवस्था है।

ईश्वर बहुत बड़ा इंजीनियर है। उसने हमारी देह में एक भी चीज़ अनावश्यक या अनुपयोगी नहीं बनाई है। सिर के बालों को ही देखिए अगर नहीं होते तब भी कुछ बिगड़ता नहीं लेकिन जब तक ये सिर पर हैं हमें सर्दी, गर्मी और धूप से बचाए रखते हैं। अचानक सिर पर कुछ आ पड़े तो चोट कम लगती है। यह एक प्रकार से सुरक्षा कवच का कार्य करते हैं। आँख, कान, नाखून सबकी अपनी उपयोगिता है। इसलिए प्रकृति कोई भी चीज़ ऐसी उत्पन्न नहीं करती जिसकी उपयोगिता न हो। फूल सभी को चाहिए काँटे नहीं, लेकिन काँटों की भी उपयोगिता है।

हमारी नासिका के दो द्वार हैं जिसमें दाहिने द्वार को सूर्य स्वर और बाएँ को चंद्र स्वर कहते हैं, ऐसा क्यों? क्योंकि दाहिनी नाक से जो साँस चलती है वह गर्म होती है और बाईं नाक से चलने वाली श्वास ठंडी होती है। इसलिए दाहिनी ओर से चलने वाली श्वास को सूर्य नाड़ी से चलने वाली श्वास और बाईं ओर से चलने वाली श्वास को चंद्र नाड़ी से चलने वाली श्वास कहते हैं। प्रकृति की व्यवस्था के अनुसार ढाई दिन में अपने आप श्वास दाईं से बाईं और पुनः ढाई दिन बाद बाईं से दाईं चलती रहती है। यह क्रम लगातार बना रहता है। हालाँकि एक तरीका साँस बदलने का यह भी है कि करवट बदलकर सोना। जिस ओर से श्वास चल रही है उस ओर की करवट लेकर सोने से श्वास अपने-आप दूसरी ओर से चलने लगती है। हवा का ऐसा दबाव बनता है कि नासिका की वायु पहले से दूसरे में चली जाती है या दूसरे से पहले में आ जाती है। यह प्राकृतिक व्यवस्था है।

प्राचीन काल में जब लोग घर से बाहर निकलते थे तो अपनी नासिका के आगे हाथ लगाकर वायु के बाहर आने से जान लेते थे कि उनका कार्य होगा या नहीं। कौनसा स्वर चल रहा है इससे पता चल जाता था। अगर सूर्य स्वर चल रहा होता तो कार्य की सफलता का अनुमान लगाते और चंद्र-स्वर से कार्य की मंदता की आशंका रहती।

नासिका से जो श्वास लेते हैं वह कैसे छनकर जाती है यह देखें - हम जो साँस लेते हैं, वह उन रोओं से छनती है जो हमें बाहर से ही दिखाई देते हैं, फिर अंदर की ओर और छोटे-छोटे बाल होते हैं उनसे छनती है फिर आगे बढ़कर गले में जो रेशे होते हैं उनसे गुजरते हुए फेफड़ों में पहुँचती है। जैसी हवा बाहर होती है अगर वह वैसी ही सीधे भीतर चली जाए तो अत्यंत घातक हो जाएगी। हम जानते हैं कि सर्दी की शुष्क हवा हमारी त्वचा को सूखा बना देती है, वह फटने लगती है और गर्मी की गर्म हवा हमारी त्वचा को पसीने से तर करके उस पर धूल-मिट्टी आदि जमा देती है। त्वचा के छिद्र बंद हो जाते हैं, लेकिन शरीर का धर्म है कि हम जो श्वास लेते हैं वह सम-शीतोष्ण होकर ही अंदर पहुँचती है अर्थात् हमारे शरीर का जो तापमान रहता है श्वास उसी तापमान पर चलती है। हमारे शरीर का एक निश्चित तापमान रहता है। हम अगर बाहर ठंडी या गर्म वायु में श्वास लेते हैं तो यह अंदर प्रविष्ट होकर उस निश्चित तापमान पर आ जाती है। जैसे ही वायु अंदर आती है तो नासिका से लेकर पूरे श्वसन-तंत्र में एक श्लेष्म रहता है जो आर्द्र होता है, इसकी आर्द्रता शरीर के तापमान पर होती है। ली गई श्वास इस श्लेष्म से गुजरते हुए शरीर के तापमान पर आ जाती है इसलिए हमें देह के बाह्य तल पर तो सर्दी-गर्मी का अहसास

होता है पर श्वास कभी गर्म या ठंडी महसूस नहीं होती। यह है प्रकृति की अद्भुत व्यवस्था।

हमारे गले में दो नलिकाएँ हैं – एक श्वसन-नलिका, दूसरी अन्न-नलिका। एक के द्वारा हम खाद्य और पेय पदार्थ ग्रहण करते हैं और दूसरी के द्वारा श्वास भीतर जाती है। किसी पेड़ की तरह ही हमारे फेफड़ों की व्यवस्था है। जैसे पेड़ में जड़, तना, शाखा, प्रशाखा होती है उसी तरह हमारे फेफड़ों के गुब्बारे में बारीक-बारीक असंख्य नलिकाएँ श्वास को ग्रहण करती हैं और बाहर निकालती हैं। फेफड़ों के वायुकोष करोड़ों की संख्या में जो श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। जब हम श्वास लेते हैं तो फेफड़े फूलते हैं और हृदय पर दबाव बनाते हैं जिससे हृदय पंपिंग करने में समर्थ होता है। जैसे लोहार की धौंकनी चलती है वैसे ही हमारी श्वसन-व्यवस्था चलती है। प्राणवायु के आवागमन से हमारे शरीर की सारी व्यवस्थाएँ संचालित होती हैं।

हम जो श्वास लेते हैं वह अमृत है और जो छोड़ते हैं वह जहर है। हम ऑक्सीजन लेते हैं वह अमृत है और कार्बन-डाई-ऑक्साइड जो छोड़ते हैं वह जहर है। प्राणायाम को समझने के लिए श्वास लेने के तरीके को समझना होगा। प्राणायाम अर्थात् श्वास को विशेष क्रम देते हुए ग्रहण करना और छोड़ना। प्राणायाम अर्थात् एक आयाम, एक तरीका देकर श्वास को लेना और छोड़ना। प्राकृतिक रूप से श्वास लेना और छोड़ना तो एक व्यवस्था है लेकिन जब श्वास के द्वारा हम अपनी सोई हुई चेतना और ऊर्जा को जाग्रत करना चाहते हैं, तब हमें इसे एक खास विधि, एक प्रक्रिया देनी पड़ती है। यह अजब बात है कि शरीर के सत्तर प्रतिशत रोग विभिन्न प्रकार के प्राणायामों द्वारा काटे जा सकते हैं।

बाबा रामदेव योग आसनों के कारण मशहूर हो गए, श्री रविशंकर जी ने प्राणायाम को अपनाया, गोयनका जी ने विपश्यना के द्वारा श्वासोश्वास पर ध्यान प्रक्रिया करवाई। एक बात स्मरण रहे कि श्वास हमेशा सचेतनता के साथ ली जाए। विपश्यना में जो आनापान सती है अर्थात् आती-जाती श्वासों पर अपनी जागरूकता कायम करना, आती-जाती प्रत्येक साँस पर अपनी प्रत्यक्ष व ठोस अनुभूति करना ही आनापान सती है। सती अर्थात् स्मृति। अपने चित्त को, अपनी बुद्धि और जागरूकता को श्वास पर केन्द्रित कर उसके उदय और विलय को तटस्थ भाव से जानना, राग-द्वेष रहित होकर, शांत चित्त होकर, उसका ज्ञाता-दृष्टा होना ही आनापान सती है।

जब भी प्राणायाम करें सचेतनता और जागरूकतापूर्वक करें, ताकि वह हमें

प्रत्याहार की ओर ले जाने में सहायक हो, ध्यान में प्रवेश करने के लिए सहयोगी हो। सचेतनतापूर्वक प्राणायाम करने से अन्य दूसरी आवश्यकताएँ सिद्ध हो जाएँगी और केवल श्वास ही लेते रह गए तो जीवनी ऊर्जा तो जगा सकेंगे लेकिन चित्त को केन्द्रित करने में, मन की एकाग्रता प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकेंगे। किसी भी प्रकार का प्राणायाम चाहे कपालभाति हो, चाहे भस्त्रिका या अनुलोम-विलोम या अन्य कोई भी प्राणायाम हो, उनकी जितनी भी आवृत्ति जितने भी समय करें लेकिन होशपूर्वक, बोधपूर्वक श्वास का अनुभव करते हुए करें। दूसरी बात श्वास हमेशा गहरी लेनी चाहिए। गहरी श्वास ही मस्तिष्क से लेकर नीचे पाँवों तक अपना प्रभाव डालती है। सामान्य श्वास का प्रभाव हमारे फेफड़ों तक, उसके वायु-कोषों तक पहुँचाता है लेकिन गहरी श्वास का प्रभाव पूरी देह तक अनुभव किया जा सकता है। हालाँकि हवा फेफड़ों से आगे तक नहीं पहुँचती है लेकिन गहरी श्वास से श्वसन-तंत्र पूरे भराव में आता है और संपूर्ण देह में प्राणवायु का, प्राणचेतना का संचार होता है और सकारात्मक परिणाम प्राप्त होता है। इन्हीं से हमारे षट्चक्र, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय कोष भी सक्रिय होते हैं। इसीलिए गहरी श्वास लें। ऐसा नहीं कि प्राणायाम करते वक्त ही गहरी श्वास लें, एक आदत बना लें। सामान्य जीवन में भी गहरी श्वास लेने की जब भी याद आ जाए गहरी श्वास ही लें। दस-बारह गहरी श्वास भी हमारे निष्क्रिय, निष्प्राण, मायूस मन को सक्रिय करने में सहायक हो जाती हैं। गहरी श्वासों से हमारा शरीर, हमारी नाड़ी-संस्थान हमारा प्राणतंत्र, चेतना-तंत्र प्राणवायु के द्वारा संचालित, सक्रिय, सकारात्मक बनता है।

सुबह तो प्राणायाम करते ही हैं, भोजन करने के पहले भी दस-बारह गहरी श्वास लें, लाभ मिलेगा। जब भी गुस्सा दिमाग पर हावी हुआ मालूम पड़े, दस-बारह गहरी श्वास ले लें। गहरी श्वास लेने से क्रोध रूपी ऊर्जा का विस्तार हो जाएगा और श्वास के द्वारा बाहर निकल जाएगा। गुस्सा या तो प्रगट कर देने से कम होता है और प्रगट करना उचित न लगे तो उसे भीतर रखें। अगर भीतर रखा तो वह कुंठा का कारण बनेगा, दमन का निमित्त बनेगा। दस-बारह गहरी श्वास लेने से वह पूरे शरीर में फैल जाएगा और क्रोध ठंडा हो जाएगा। जो भी मनोविकार हमारे ऊपर हावी होने जा रहे हों उन्हें गहरे श्वास-प्रश्वास द्वारा बाहर निकाल फेंकें। तब हम पाएँगे कि हमारी प्राणवायु ने हमारे मन, शरीर, दिमाग पर अपना सकारात्मक प्रभाव डाल दिया है। जब भी प्राणायाम करें उसे गहराई देने का प्रयास करें।

प्राणायाम का तीसरा कारक है - लयबद्ध श्वास। श्वास-प्रश्वास एक लय के साथ हो। ऐसा न हो कि एक श्वास गहरी हो गई, दूसरी छोटी हो गई, तीसरी साँस

मध्यम चल पड़ी। अगर श्वास लेने में पाँच सेकंड लगे हैं तो छोड़ने में भी पाँच सेकंड लगने चाहिए। चाहे पूरक हो या रेचन-एकलय होना चाहिए। मैं स्वयं तो प्राणायाम की लय में बाँसुरी बजाता हूँ। जब प्राणायाम करता हूँ तो लगता है सरगम चल रहा है। वैसे भी साँस और बाँस जुड़ जाए, साँस और बाँस का संगम हो जाए तो बाँसुरी ही बनेगी न! जब साँस और बाँस का संतुलन हो जाए तो संगीत पैदा हो जाता है। जब हम आनन्दमयी मनोदशा के साथ साँस लेते और छोड़ते हैं तो यह मुरली के संगीत जैसा ही सुकून प्रदान करेगा।

प्राणायाम में श्वास के द्वारा तन और मन को ठीक करते हैं। इससे रोग कटते हैं, नकारात्मक भावों का शमन होता है। इस तरह प्राणायाम में तीन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए – सचेतनता, गहरी श्वास-प्रश्वास और लयबद्धता। कहा जाता है कि प्राणायाम चिर यौवन की कुँजी है। जो व्यक्ति बीस मिनट प्राणायाम और बीस मिनट योगासन करता है वह उम्र से भले ही बूढ़ा हो जाए, पर तन और मन से बूढ़ा नहीं होता। वह ऊर्जावान बना रहता है क्योंकि उसने प्राणायाम के द्वारा, प्राणवायु के द्वारा अपने बूढ़े होते हुए शरीर को फिर से ऊर्जावान बनाने के लिए प्रयत्न किया।

आप जानते हैं तिब्बत एक बर्फीला देश है। वहाँ इतनी ठंड होती है कि व्यक्ति ठिठुर कर मर जाए। लेकिन तिब्बत के बौद्ध भिक्षु एक ही वस्त्र में अपने दिन और रात आराम से निकाल लेते हैं। वे केवल एक ही कार्य करते हैं – श्वास और ध्वनि का एक घर्षण करते हैं। साँस और बाँस मिलते हैं तो संगीत पैदा होता है और श्वास व ध्वनि के मिलने से शक्ति पैदा होती है। तिब्बती भिक्षु जिस मंत्र की ध्वनि का प्रयोग करते हैं वह है – ओऽम् मणि पद्मे हुम्। इस मंत्र के उच्चारण के साथ वे इतनी लयबद्ध श्वास लेते हैं कि उनकी सर्दी दूर हो जाती है और पसीना भी टपकने लगता है।

यहाँ योगीराज सहजानंद जी महाराज हुए हैं। मैं उनसे प्रभावित रहा हूँ। मैंने उनकी गुफा में साधना की है। कहते हैं कि माघ के महीने में रेत के टीलों पर वे रात भर निर्वस्त्र होकर बैठे रहते थे। रात भर वे गहरी लम्बी श्वास और ॐ मंत्र का उपयोग करते थे और देखने वाले बताते हैं कि उनके शरीर से पसीना टपकता रहता था। लयबद्ध श्वास और मंत्रध्वनि का लयबद्ध प्रयोग किया जाए तो अपने आप ऊर्जा जाग्रत होती है। हमने भी ॐकार ध्वनि-विधि विकसित की है। उसमें केवल दो ही चीजों का ध्यान रखा गया है – श्वास और ॐकार ध्वनि। इन दोनों का एक खास ढंग विकसित किया गया, लयबद्धता बिठाई गई कि महामंत्र-बीजमंत्र 'ॐ' और

हमारी श्वास दोनों मिलकर हमारे चित्त में एकलयता, एकाग्रता लाएँ, हमारे जीवन के तमोगुण को वे काटें, शरीर के रोगों को भी काटें और हमारी चेतना को जगाने में, हमें आत्मवान बनाने में मददगार बनें।

इस ऊँकार-विधि में हम मंत्र-स्मरण के साथ सहज, दीर्घ, मद्धिम और तीव्र श्वास का प्रयोग करते हैं। 10 सहज, 10 दीर्घ, 10 मद्धिम, 10 तीव्र। संख्या को घटाया-बढ़ाया जाता है। 10 को 20, 30 को 40 भी बनाया जा सकता है। अभ्यास में धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है। सहज, दीर्घ, मद्धिम, तीव्र साँस की आवृत्ति को 5 से 10 बार दोहराते हैं। इससे ऊर्जा जागृत हो जाती है।

श्वास हमें शक्ति व ऊर्जा देती है। यह जीवन का आधार है। चिर-यौवन की कुंजी है। श्वास सौन्दर्य देता है, बुढ़ापे को दूर रखता है। पतंजलि कहते हैं कि आसन स्थिर होने पर श्वास प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है। अब हम जानेंगे कि प्राणायाम कैसे करें! किसी को अगर कोई प्राणायाम नहीं आता, वह कोई नाम नहीं जानता तो एक काम करे – किसी खुले स्थान पर, या कमरे में रहें तो सारे खिड़की-दरवाजे खोलकर, एक कम्बल का आसन बिछा लें, उस पर सफेद चादर डाल लें, वस्त्र ढीले व आरामदायक पहनें। कसे हुए कपड़े प्राणायाम में बाधक बनते हैं क्योंकि जब श्वास गहरी लेंगे तो सकारात्मक प्रभाव आएँगे, दबाव बनेगा, ऊर्जा जागेगी, वह शरीर के षट्चक्रों को प्रभावित करेगी, उसमें टाइट कपड़े बाधक बन जाएँगे। अतः ढीले वस्त्र पहनें। हो सके तो कमर पर बँधी डोरी व नाड़ी को भी ढीला रखें। हमारे शरीर के षट्चक्र-कुंडलिनी या मूलाधार, स्वाधिदष्ठान, मणीपुर, अनाहत, विशुद्धि चक्र, आज्ञा चक्र और ब्रह्मरंध्र सहस्रार – यह जो योग की व्यवस्था है वह प्राणायाम के द्वारा प्रभावित होती है, सक्रिय होती है।

निवृत्ति शौच आदि से फारिग होकर, स्नान करके प्राणायाम करें। शौच से निवृत्त हुए बिना प्राणायाम करने से दूषित अपान वायु शरीर के लिए हानिप्रद हो जाएगी। खुली हवा में बैठना चाहिए ताकि हमें अधिक-से-अधिक ऑक्सीजन, शुद्ध प्राणवायु उपलब्ध हो सके। मन के विचारों को सकारात्मक रखें, प्रसन्नचित्त होकर किया गया प्राणायाम हमें जीवन-ऊर्जा से भर देगा। प्राणायाम ऐसे आसन में करना चाहिए जिसमें आप देर तक सहज रूप से बैठे रह सकें। जैसे – सुखासन, वज्रासन, पद्मासन, स्वस्तिक आसन आदि। कमर, मेरुदण्ड सीधा रहे, गर्दन भी सीधी रखें क्योंकि जब प्राणायाम करेंगे तो इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियाँ जो मेरुदण्ड से जुड़ी हैं वे भी इसके प्रभाव में आएँगी। प्राणायाम से जाग्रत जीवन-ऊर्जा को नीचे

से ऊपर तक और ऊपर से नीचे तक सुषुम्ना नाड़ी ही ले जाएगी जो मेरुदण्ड के मध्य से गुजर रही है। अतः मेरुदण्ड सीधा रखें। अगर मेरुदण्ड झुका रहेगा तो ऊर्जा के आवागमन में बाधा खड़ी हो जाएगी। वैसे भी जो रीढ़ को सीधा रखकर बैठते हैं उन्हें स्पाइनल कॉर्ड की तक्रलीफ़ जल्दी नहीं होती। मेरुदण्ड के सीधा रहने से ऊपर मस्तिष्क तक और नीचे पाँवों तक ऊर्जा का संचार हो सकता है। स्वयं को स्फूर्तिवान रखें। इसीलिए प्राणायाम के पूर्व योगासन करने की आवश्यकता है ताकि शरीर का प्रमाद, आलस्य और जकड़न दूर हो जाए।

ध्यान के लिए प्राणायाम की भूमिका है, योगासन की नहीं। ध्यान के लिए प्रत्याहार की भूमिका है, प्रत्याहार बनाने के लिए प्राणायाम करते हैं और प्राणायाम को साधने के लिए, शरीर हमारा स्वस्थ हो सके, अनुकूलता आ सके, इसके लिए योगासन किए जाते हैं। ये एक से एक आगे बढ़ने वाले चरण हैं। प्रत्याहार की चर्चा करेंगे, पर अभी इतना जानना ही काफी है कि अपनी भटकती हुई चेतना, भटकते हुए मन को वापस अपने में लौटा लाना ही प्रत्याहार है। प्रत्याहार, धारणा और ध्यान आपस में जुड़े हुए हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम – यहाँ तक सब शरीर और मन के बहिरंग पहलू हैं। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि – ये चारों अंतरंग पहलू हैं। ये हमें अपने-आप से जोड़ते हैं।

हमने जाना कि बाहरी वातावरण कैसा होना चाहिए – शांत-एकांत स्थान हो ताकि प्राणायाम शांति का निमित्त बन सके। अगर कोई प्रक्रिया नहीं आती है तो हाथ में एक माला ले लें और एक सौ आठ दफा शांत-मंद-गहरी श्वास लें और शांत, मंद, गहरी श्वास छोड़ें और श्वास के साथ ॐ का स्मरण भी अगर कर सकें तो यह और अधिक लाभप्रद हो जाएगा। मन को एकाग्र करने में मंत्र सहायक हो जाता है। आप ॐ का, सोऽहं का, अहम् का स्मरण कर सकते हैं।

प्राणायाम दो प्रकार के होते हैं – सबीज और निर्बीज। सबीज अर्थात् जिसमें हमने किसी स्मृति को, मंत्र को जोड़ते हुए प्राणायाम किया और निर्बीज अर्थात् जिसमें बिना मंत्र के, बिना शब्द या पद को याद किए शांत भाव से प्राणायाम करते हैं। इसी तरह समाधि भी सबीज और निर्बीज या सविकल्प होती है। यह तो हमें स्वयं को देखना है कि हमारे चित्त में शांति किस प्रकार आती है। सबीज प्राणायाम करने से या निर्बीज प्राणायाम करने से। प्रारम्भ में तो सबीज प्राणायाम ही करना चाहिए और जब प्राणायाम सध जाए तो निर्बीज प्राणायाम कर सकते हैं। लेकिन ख्याल रहे कि कम-से-कम एक सौ आठ बार अर्थात् दस मिनट तक तो प्राणायाम हो ही जाना

चाहिए। शुरू में शायद एक साथ इतना न किया जा सके तो बीस श्वासों के बाद एक मिनट का विश्राम ले लें फिर पुनः शुरू कर लें। इस तरह पूरे एक सौ आठ बार कर लें। मुझे लगता है ढीले पड़ चुके या सोए नाड़ी संस्थान को दुरुस्त करने के लिए दस मिनट काफी हैं।

अब जो प्राणायाम में गहराई से प्रवेश करना चाहते हैं उनके लिए भस्त्रिका, कपाल भाति, अनुलोम-विलोम आदि प्राणायाम है। भस्त्रिका का अर्थ है – जैसे भौंगली या पाइप में हवा फेंकने से अंगीठी में अग्नि सुलग जाती है वैसे ही भस्त्रिका हमारे शरीर के अग्नि तत्त्व को जाग्रत करने का माध्यम है। भस्त्रिका में लम्बी गहरी श्वास लेते हैं और लम्बी गहरी श्वास छोड़ते हैं – लयबद्ध तरीके से। दूसरा है कपालभाति – कपाल का अर्थ है दिमाग और भाति का मतलब है तेज – अर्थात् जो दिमाग को तेज करे वह कपाल भाति। यह मस्तिष्क को ऊर्जावान बनाता है। इसमें श्वास का केवल रेचन ही रेचन किया जाता है। हमारे भीतर जो भी जमा हुआ है – तनाव, अवसाद, चिंता, आर्त-ध्यान, रौद्र ध्यान, कफ, वायु, पित्त जो दिमाग को जाम कर रहे हैं ये सब कपालभाति प्राणायाम करके बाहर निकाल देते हैं। रेचन करते जाना है, श्वास छोड़ते ही जाना है। श्वास अपने आप ले ली जाएगी, हमें तो रेचन की ओर ध्यान रखना है क्योंकि श्वास के बिना तो शरीर रह ही नहीं सकता।

प्राणायाम कोई भी करें, उसका प्रारम्भ रेचन से करें। रेचन क्यों करें? क्योंकि भीतर जो दूषित तत्त्व हैं वे पहले बाहर निकल जाएँ और दूषित क्या है? श्वास ही दूषित है, वह कार्बन-डाई-ऑक्साइड है, क्योंकि बिना रेचन किए अगर श्वास भीतर ली तो शुद्ध हवा का इस गैस से मिश्रण हो जाएगा और प्राणवायु भी दूषित हो जाएगी। इसलिए पहले रेचन किया ही जाना चाहिए क्योंकि हम चाहे जितनी साँस बाहर निकाल दें थोड़ी श्वास तो अंदर रह ही जाती है। प्राणायाम करने के पूर्व पूरी साँस बाहर निकाल दें, थोड़ी श्वास तो अंदर रह ही जाती है। प्राणायाम करने के पूर्व पूरी साँस निकालें, जो रह गई हैं उसे भी मुँह के ज़रिए बाहर निकाल दें। अब लम्बी गहरी श्वास भरें यह सकारात्मक परिणाम दिखाएगा।

श्वास को तीन चरणों में लिया जाता है – रेचक, पूरक और कुम्भक। कुम्भक का अर्थ होता है – श्वास को रोकना, चाहे भीतर रोकें या बाहर। पूरक है – श्वास लेना और रेचक है – श्वास को बाहर निकालना। जो प्राणायाम की पहले-पहल शुरुआत कर रहे हैं उन्हें कुम्भक नहीं करना चाहिए। कुछ समय पश्चात् कुम्भक आरम्भ कर सकते हैं। प्राणायाम भी कुम्भक-सहित या कुम्भक-रहित किया जा

सकता है। कुम्भक रहित प्राणायाम सीधा व सरल है। रेचक-पूरक चलता रहता है। जब दस मिनट तक कुम्भक रहित प्राणायाम करके ध्यान में प्रवेश करते हैं तो कुम्भक खुद-ब-खुद लग जाता है। शांत व मंद स्थिति में श्वास ठहरने लगती है। ध्यान की गहराई में शांत सरोवर-सी स्थिति बन जाती है।

अनुलोम-विलोम या नाड़ी-शोधन प्राणायाम में बाई नासिका से श्वास लेते हैं और दाहिनी नासिका से निकाल देते हैं, फिर दाहिनी से श्वास लेते हैं और बाई नासिका से निकाल देते हैं। यह क्रम निरंतर जारी रखते हैं। अनुलोम-विलोम प्राणायाम करने के लिए अँगूठे को दाहिनी नासिका पर, अनामिका व कनिष्ठा बाई नासिका पर और शेष दो अँगुलियाँ आज्ञाचक्र या ललाट-प्रदेश पर रखें। धीरे से रेचन करें। अँगूठे से दाहिनी नासिका पर हल्के से दबाव बनाते हुए बंद करें और बाई नासिका से श्वास भरें, अब बाई नासिका को बंद करें व दाहिनी नासिका से श्वास छोड़ें। दाई नासिका से ही श्वास भरें और बाई से छोड़ें। इसी क्रम से लगातार करते रहें। अगर थकान महसूस होने लगे तो क्रिया को रोक दें। जब प्राणायाम अभ्यास में आ जाए तो धीरे-धीरे समय बढ़ाएँ, उसकी आवृत्तियाँ एक सौ आठ तक ले जाएँ। नाड़ी शोधन प्राणायाम से चेहरे पर चमक व कांति आ जाती है। शरीर में ऊर्जा का संचार होता है, वायु पर भी सकारात्मक प्रभाव होता है। तीन माह में आप पाएँगे कि शरीर की जकड़न दूर हो रही है, हड्डियों का संचालन बढ़ गया है, शरीर पुनः ऊर्जावान हो गया है।

हम जितने आरामतलब होंगे शरीर हमें धोखा देता जाएगा। शरीर को जितना सक्रिय रखेंगे यह हमारे लिए मित्र के समान सहयोगी बन जाएगा। योगासन व प्राणायाम हमारे लिए उपयोगी हैं, लाभकारी हैं, कल्याणकारी हैं। हम इन्हें पंछी के दो पंख बना लें और तब इनके सहारे शक्तिमान, ऊर्जावान बन सकते हैं। आप ऊर्जस्वित व शक्तिशाली बनें इसी शुभ भावना के साथ

अमृत प्रेम व नमस्कार !



प्रत्याहार : अन्तर्यात्रा का मार्ग

मेरे प्रिय आत्मन् !

किसी गाँव के मुखिया ने किसी आवश्यक कार्य के लिए दस लोगों को भेजना तय किया और सचेत किया कि वे दसों लोग साथ रहें और वापसी में भी दस के दस वापस आएँ। वे सभी गए, कार्य पूर्ण किया और वापसी में गिना कि नौ ही लोग हैं। सभी ने एक-एक कर गिना लेकिन गिनती नौ पर ही रुक गई। वे हताश और निराश हो गए कि उन्होंने मुखिया का आदेश नहीं माना; और तो और एक व्यक्ति को खो भी दिया। वे मुखिया के पास पहुँचे। मुखिया ने कहा – आ गए? तो कहा कि वापस तो आ गए, काम भी पूरा हो गया, पर अफ़सोस कि एक आदमी खो गया। मुखिया ने देखा – दसों लोग खड़े थे। तो पूछा – कौन खो गया? तो ज़वाब मिला दसवाँ आदमी खो गया। मुखिया ने कहा – सभी तो खड़े हो। कहा – दसवाँ आदमी खो गया है। यह कहते हुए एक आदमी निकला और उसने गिनती शुरू की – एक, दो, तीन..... नौ, देखिए एक आदमी खो गया। वहाँ सभी ने गिनती शुरू की, लेकिन वहाँ दसवाँ आदमी खो गया था। गाँव का मुखिया खड़ा हुआ और उसने उसी से गिनती शुरू की जो गिन रहा था, एक, दो, तीन, चार.....दस। हो गए दस। वे प्रसन्न हो गए, अरे, खुद

को तो गिन ही नहीं रहे थे।

योग वह माध्यम है जो उस खोये हुए आदमी की पहचान करवाता है। इंसान जो दुनिया को याद रखता है, दुनिया का ज्ञान प्राप्त करता है, दुनिया के सुख-दुःख की चिंता करता है लेकिन स्वयं को भूल जाता है। दूसरे ने क्या कहा, यह झट से याद आ जाता है, दूसरे ने क्या प्रतिक्रिया की यह बात खटक जाती है लेकिन हमने क्या कहा, हमने क्या किया, हमने क्या चाहा, हमने क्या व्यवहार किया इसको हम नज़रअंदाज़ कर देते हैं। महावीर कहते हैं – दूसरों को जानना उपलब्धि है लेकिन स्वयं को जानना उससे भी बड़ी उपलब्धि है। महावीर कहते हैं – जो सहस्सं सहस्साणं संगामे दुज्जे जिणे, जे जिणेस्स अप्पाणं, एस से परमो जओ – जो हजारों हजार योद्धाओं को जीतता है उसकी बजाय जो अपने-आप को जीतता है उसकी विजय ही परम विजय कहलाती है। हजारों को जीतने वाला भी एक से हारा हुआ है। वह है स्वयं जो खोया हुआ दसवाँ आदमी है।

सिकंदर जिसने दुनिया को तो जीत लिया पर, खुद से हार गया। अपने मन से, अपनी इन्द्रियों से, अपने जीवन से, अपनी मौत से हार गया। योग हमारे सामने मित्रता का संबंध स्थापित करता है। यम, नियम से विश्व-मैत्री तो साधी जा सकती है लेकिन ज़रूरी नहीं है कि आत्म-मित्रता भी सध जाए। साधना की पहली अनिवार्यता ही आत्म-मित्रता है। आत्मा ही वैतरणी नदी है, कामधेनु है, नंदनवन है और कूट शाल्मली वृक्ष है। आत्मा ही स्वर्ग और नरक का द्वार है। इसलिए जो कुछ है व्यक्ति स्वयं है। जिसने यह जान लिया वह दुनिया के अस्तित्व पर नहीं स्वयं के अस्तित्व पर विश्वास रखेगा। सबका मूल्य तभी है जब आप खुद हैं। जीवन के सारे खेलों का मूल्य आपके होने से है। अगर आप चले गए तो सारे खेल अन्तर्धान हो गए। हमें दुनिया की सभी चीज़ों को महत्व देना चाहिए लेकिन खुद को भूलकर नहीं। अन्यथा वही हालत हो जाएगी कि सबको तो गिन रहे हैं, पर खुद को भूले जा रहे हैं, नज़रअंदाज़ कर रहे हैं। प्रायः होता यही है कि हमारे पास सबके लिए समय होता है, पर खुद के लिए नहीं। कौन है जो जागरूकता के साथ जीवन जीता है? कौन है जिसे लगातार अपनी आत्म-स्मृति बनी रहती है? कौन है जो अपने नित्य प्रति के कार्य सम्पादित करते हुए चेतना की याद रखता है? किसे स्मरण रहता है कि वह इस संसार में आया है और यहाँ से जाना भी है।

मुक्ति की बातें तो हो जाती हैं, पर हम सभी दुनिया के मकड़जाल में उलझे हुए हैं, निकलना किसी को याद नहीं आता। मैंने सुना है – एक व्यक्ति आईने के

सामने खड़ा होकर सोचता है कि उसने इस आदमी को कहीं देखा है। क्या स्थिति है ! स्वयं को पहचानने के लिए किसी को परिचय-पत्र (आइडेन्टिटी कार्ड) देखना पड़ता है, किसी को आईना देखना पड़ता है, किसी को राशन-कार्ड ढूँढना पड़ता है कि देखो मैं यह हूँ। योग वह आईना है जो पलकों को झुकाने पर हमारे बोध में, ज्ञान में, अन्तर्दृष्टि में हमारी स्वयं से पहचान करता है। योग और कुछ नहीं, खुद से रू-ब-रू होने की कला है। योग स्वयं के साथ साक्षात्कार है, स्वयं को आत्मसात करने का मार्ग है। यह वह सनातन मार्ग है जिससे हमें स्वयं का ज्ञान होता है, हमारे जन्म-जन्मान्तर के क्लेश-संक्लेश दूर होते हैं। हमारे जीवन के दुःख-दौर्मनस्य और वैर-वैमनस्य का अवसान होता है। हमें अपनी श्रेष्ठ प्रज्ञा का प्रकाश उपलब्ध होता है, परमात्म-तत्त्व और निर्वाण से साक्षात्कार होता है। यह हमें हमारी चेतना की अंतिम ऊँचाई तक ले जाता है।

जिसने योग को निष्ठापूर्वक आत्मसात किया वह अंतिम आध्यात्मिक ऊँचाई को प्राप्त करता है। वह ऊँचाई जिसे कभी समाधि, कभी आत्मज्ञान, कभी बोधि-संबोधि, कभी कैवल्य और कभी पारलौकिक शक्ति का नाम दिया जाता है। कभी इसे परमात्म-तत्त्व या सर्वज्ञता का ज्ञान होना कहा जाता है।

पहली बात - जितना हम इसे समझेंगे, दूसरी बात - जितनी अधिक हमारे भीतर जिज्ञासा और उत्कंठा पैदा होगी, तीसरी बात - जितनी लगन से इसको प्राप्त करने के लिए, इसके परिणामों को उपलब्ध करने के लिए हम प्रयत्नशील होंगे, चौथी बात - जितना हम अपने लक्ष्य के प्रति दत्तचित्त रहेंगे, पाँचवीं बात - जितना हम इसमें अन्तर्लीन होंगे, ध्यानस्थ होंगे, ध्यान और ध्येय, ध्याता और ध्येय का भेद जब गिर जाएगा तब यह हमें हमारी हर ऊँचाई को उपलब्ध करवा सकता है। यदि यह उपलब्ध नहीं हो रहा है तो इसका अर्थ है - हमें बात अभी तक समझ में नहीं आई या अभी लगन लगी नहीं या भीतर में उत्कंठा और अभिलाषा जगी नहीं या अभी हमें अध्यात्म की आखिरी ऊँचाई प्राप्त करने से अधिक संसार का व्यामोह और मकड़जाल घेरे हुए है। मैं कहा करता हूँ - जितनी वासना पत्नी को प्राप्त करने की होती है उतनी कामना और तमन्ना जब परमात्मा को पाने की होती है, तो परमात्मा का सान्निध्य हमारे आसपास ही होता है। यही कारण है कि जब मीराबाई को जहर का प्याला भी पीने को मिलता है तो वह चरणामृत मानकर पी जाती है और उसके लिए वह चरणामृत बन भी जाता है। जहर को अमृत बनाने के लिए मीरा बनना पड़ता है अन्यथा जहर अमृत नहीं बनता। मीरा के अन्तस में प्रभु की कामना थी तभी तो गिरधर उनके साथ सदा विद्यमान रहते थे।

चैतन्य महाप्रभु, सूरदास, तुलसीदास प्रभु में खो गए, प्रभु में लीन हो गए। उनकी कामनाएँ, तमन्नाएँ बदल गईं। रत्नावती ने तुलसीदास को ताना दिया था कि जितनी प्रीति तुम्हें मुझसे है अगर उतनी प्रीति तुम्हें राम से होती, जितना प्रेम तुम्हें चाम से है उतनी प्रीति राम से होती तो तुम्हारी भवभीति मिट जाती। तुलसीदास का जीवन पलट गया वे रामभक्ति में दत्तचित्त हो गए। तभी तो कहते हैं – चित्रकूट के घाट पर भई संतन की भीर, तुलसीदास चंदन घिसें तिलक करें रघुवीर।

सूरदास जब गड्ढे में गिर गए तब ग्वाला रूप धरकर श्रीकृष्ण आ गए और कहने लगे – सूरदास मेरा हाथ पकड़ो और गड्ढे से बाहर आ जाओ। तब सूरदास ने उस हाथ को पहचान लिया और कहा – अब मैं तुम्हारे हाथ को नहीं छोड़ूँगा। एक बार जो तुम्हारा हाथ पकड़ लिया अब यह नहीं छूटने वाला है। उन्होंने कहा – ‘हाथ छुड़ाकर जात हो निरबल जान के मोहे, हृदय से जब जाओ तो सबल मैं जानो तोहे।’ भगवान भक्त से बड़ा नहीं होता। भगवान तो रहते ही दिल में हैं और दिल देह से बड़ा तो नहीं है और उस दिल के भीतर भगवान रहते हैं। कहिए भगवान भक्त से छोटा ही हुआ न्! केवल लगन की बात है। बाहर तो एक ही सूरज उगता है लेकिन व्यक्ति जब समाधि-दशा में पहुँच जाता है तो ऐसे कई-कई सूर्यों का प्रकाश प्रगट होता है।

नानक, रैदास, शंकर आदि सभी ऋषि-मुनि-महर्षि यह कहते नहीं थकते कि इंसान के भीतर, दिल और आत्मा के भीतर अनन्त-अनन्त सूर्यों का प्रकाश है। बस, अपनी याद आ जाए। अपने कर्म को भी अपनी पूजा बना लो। हम कार्य नहीं कर रहे, हमारा प्रत्येक कर्म प्रभु को अर्पित पुष्प हो जाए। मंदिर के निर्माण की एक-एक ईंट भी प्रभु को समर्पित पुष्प बन जाए। तब वह मंदिर न होगा, वह पुष्पों का गुच्छा हो जाएगा। जो महकेगा। हर निर्माण प्रभु को अर्पित पुष्प हो। गांधी जी कहते थे – जो धन तुम्हारे पास है उसके मालिक मत बनो बल्कि ट्रस्टी बन जाओ। जो भी संपदा है उसके ट्रस्टी बनो शेष तो सब मालिक का, उसका है। साईबाबा का प्रसिद्ध वचन है – सबका मालिक एक। वही एक सबका मालिक है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम – साधना के साधन हैं। साधना-पथ के दो चरण हैं – बहिरंग और अंतरंग। यम, नियम, आसन, प्राणायाम बाहर के साधन हैं। यम अर्थात् अंकुश लगाना। हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार और परिग्रह पर अंकुश। इन पाँचों पर अंकुश लगाना यम के अन्तर्गत आता है। नियम स्वयं को यम में नियोजित करना, संयम, तप, स्वाध्याय, संतोष, ईश्वर-प्रणिधान के रूप में खुद को

नियोजित करना लगाना। अर्थात् ऐसे संकल्प करना जो हमें बाहर से हटाकर भीतर की ओर ले जाएँ। पतंजलि हों या महावीर और बुद्ध सभी यम-नियम की पालना पर विशेष ज़ोर देते हैं। महावीर द्वारा अपनाए जाने वाले छह आवश्यक कृत्य और पाँच व्रत ये वास्तव में यम और नियम ही हैं। आसन अपनी काया को मजबूत बनाने के आधार, ऐसे व्यायाम जो हमारे पंचभूतों को प्रसन्न और जीवन के लिए अनुकूल और सकारात्मक बनाने में सहायक हों। प्राणायाम शरीर को जीवनी-शक्ति प्रदान करता है।

हमें अपने जीवन के उद्देश्य को समझना चाहिए। हमें जानना चाहिए कि हमारा जन्म क्यों हुआ है? क्या गाजर-मूली की तरह हम जनम गए हैं? या कुछ विशिष्ट उद्देश्य है? हम अपना जीवन यँ ही क्यों समाप्त कर देते हैं? हमें चिंतन व मनन करना चाहिए कि प्रभु ने हमें क्यों जन्म दिया है? जो भी अपने जन्म के संबंध में मनन व विचार करेगा तो उसके सामने एक लक्ष्य उभरेगा, जीने की सार्थकता दिखाई देगी। उसे लगेगा कि वह मरने के लिए नहीं जी रहा, बल्कि जीवन को धन्य करने के लिए जी रहा है। उद्देश्यहीन, लक्ष्यहीन जीवन सौ, दस या एक साल जीना तो क्या, एक दिन भी जीना बेकार है। लक्ष्यहीन जीवन भी कोई जीवन है! इसलिए मत ज़िओ कि मरे नहीं हैं। यह जीवन तो मरने से भी बुरा है। ऐसे लोगों के जीवन में कोई स्वप्न नहीं होते, न जीने का ज़ब्बा होता है, न हिम्मत, न उन्नत कल्पनाएँ होती हैं।

योग हो या यम-नियम-प्राणायाम – ये सभी हमें जीवन का उत्साह देते हैं, जीवन में ऊर्जा का संचार करते हैं, जीवन को सार्थक और धन्य करने के आयाम देते हैं। अब हम अपने कदम अंतरंग साधना के लिए आगे बढ़ा रहे हैं तो जानें कि योग का पाँचवाँ अंग प्रत्याहार है। प्रत्याहार देहरी का दीपक है। हालांकि योगसूत्र में प्रत्याहार को भी बहिरंग साधन ही माना गया है, पर मेरे लिए यह वह चिराग है जो भीतर भी अपना प्रभाव देता है और बाहर भी अपना प्रभाव दिखाता है। पतंजलि कहते हैं – स्वविषयात् संप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इव इन्द्रियाणां प्रत्याहारः। इन्द्रियों का विषयों से विमुख होकर चित्त के स्वरूप में अन्तर्मुख होना प्रत्याहार है। प्रत्याहार अर्थात् लौटना, पीछे लौटना, विषयों से विमुख होकर अपने-आप में लौटना – यह प्रत्याहार है। प्रति + आहार = प्रत्याहार। महर्षि पतंजलि ने जिसे प्रत्याहार कहा महावीर उसे प्रतिक्रमण कहते हैं। इसमें भी दो शब्द हैं – प्रति एवं क्रमण। क्रमण का अर्थ है – चलना और प्रति का अर्थ है – पीछे की ओर। अर्थात् वापस लौट आना। जहाँ-जहाँ हमारा चित्त आसक्त हो गया है, हमारी इन्द्रियाँ बहिर्मुख हो गई हैं वहाँ-वहाँ से अपनी इन्द्रियों और चित्त को वापस अपनी चेतना में,

अपनी आत्मा में, अपने प्राणों में लौटा लाना ही प्रत्याहार या प्रतिक्रमण है।

ऐसे समझें जैसे गाय-ढोर दिन भर इधर-उधर विचरण कर, जहाँ भी उपलब्ध हो घास ग्रहण कर संध्या में वापस लौट आते हैं। दिन भर घूमती हैं लेकिन सूर्यास्त की अवधि जानकर गायें खुद-ब-खुद अपने घरों की ओर लौट आती हैं। ये गौओं का चरने जाना संसार है और पुनः वापस लौट आना ही प्रत्याहार है। इसीलिए जैनों में एक व्यवस्था है कि सुबह और शाम को प्रतिक्रमण करो अर्थात् हमारी चेतना जो इधर उधर भटक जाती है, यहाँ तक कि रात्रि में भी जो भटकाव आए हैं उन्हें सुबह प्रतिक्रमण कर व्यवस्थित किया जाए। ठीक इसी तरह सायंकाल में प्रतिक्रमण किया जाए कि हमारे द्वारा दिन में जो भी कार्य - व्यापार में, भोजन पकाने में, किसी के साथ व्यवहार करने में, वाणी-भाषा का उपयोग करने में, गलत हुआ हो उसका प्रायश्चित्त, प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए। इन सबमें उलझी अपनी चेतना को वापस अपने में लौटा लाओ। जो हुआ उसके लिए मिच्छामि दुक्कडं - अर्थात् मेरे दुष्कृत, मिथ्या व्यवहारों के लिए क्षमा प्रार्थना करता हूँ। ये अच्छी टैक्नोलॉजी है, जो महावीर द्वारा प्रदत्त है।

प्रत्याहार भी एक अच्छी टैक्नोलॉजी है अर्थात् प्राणायाम संपन्न करने के बाद वह अपनी चेतना को, अपनी इन्द्रियों को, अपने भटकते हुए चित्त को, मन को वापस स्वयं में केन्द्रित करे क्योंकि इन्द्रियों का धर्म बहिर्गामी, बहिर्मुखी है। इन्द्रियाँ हमारे चित्त व मन से प्रेरित होकर कार्य करती हैं। इसलिए चित्त की गति हमेशा बहिर्मुखी होती है। चित्त इन्द्रियों से और इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से जुड़ी रहती हैं। कान हमेशा ध्वनि को ग्रहण करने में सक्रिय रहते हैं, आँखें हर दृश्य को ग्रहण करती रहती हैं। नाक को कहना नहीं होता है। वह अपने-आप हर गंध को ग्रहण कर लेती है। चाहे रस हो या गंध या रूप या शब्द या स्पर्श हो - हमारी पाँचों इन्द्रियाँ हमेशा अपने-अपने विषयों से जुड़ी रहती हैं।

ध्यान में भी अगर अचानक इधर-उधर की जोर की आवाज़ आए तो हमारा चित्त उससे प्रभावित हो जाता है और हमारी इन्द्रियाँ सक्रिय हो उठती हैं। हमारी इन्द्रियाँ लगातार बाहर के विषयों से अपना संबंध बनाए रखती हैं, सक्रिय व जागरूक रहती हैं। रस, गंध, रूप, स्पर्श उससे अछूता नहीं रहता। इसीलिए कहा जाता है - चित्त में समता रखो, राग-द्वेष मत रखो, क्योंकि यह तो संभव ही नहीं है कि कोई हमारे आसपास बोले और हम न सुनें। यह भी नहीं हो सकता कि कुछ हमारे सामने से निकले और उसे न देखें। आँखें बंद कर लें तो कभी-न-कभी तो

खुलेंगी ही। गंध आए और नाक प्रभावित न हो यह कैसे हो सकता है। वस्तु जिह्वा पर आए तो उसका स्वाद खारा, खट्टा, मीठा, कटु तीखा तो आएगा ही। हम स्वाद से मुक्त नहीं हो सकते क्योंकि यह तो जिह्वा का धर्म है। हम इन्द्रियों के स्वभाव को त्याग नहीं सकते। केवल इतना कर सकते हैं कि रस, रूप, शब्द, गंध, स्पर्श से जो राग-द्वेष पैदा होते हैं वे उत्पन्न न हों और हम समता-भाव से जीएँ। रास्ते से जा रहे हों और गंदगी नजर आ जाए तो नाक-भौंह न सिकोड़ें और खूबसूरत फूलों की सुगंध पर वाह-वाह न करें। सहज रहें, समता भाव रखें। हमारे चित्त में समता रहनी चाहिए तभी हम इन्द्रियों और चित्त के बीच में जो प्रभाव बार-बार पैदा होता है, जो राग-द्वेष के निमित्त हमारे सामने बार-बार उपस्थित होते रहते हैं, जो हमारे भीतर की स्थिति को कभी विकृत, कभी शांत, कभी उद्विग्न करते रहते हैं। तब हम प्रत्याहार पर पहुँचकर समता को साध सकते हैं।

मैं प्रायः कहा करता हूँ कि हमें अपने घर के लगभग हर कमरे में यह पंक्ति लिखवा देनी चाहिए कि - 'हे जीव! अब तू शांत रह।' बहुत उद्वेलन, उग्रता, अशांति हो चुकी, अब शांत हो जा। यह प्रत्याहार को साधने का सरल, सहज तरीका है। इसे पढ़कर संकल्प उठेगा कि अब आप गुस्सा नहीं करेंगे। यह संकल्प भी प्रत्याहार है। अब हम अपनी सीमा में लौट आए। सीताजी ने लक्ष्मण-रेखा का उल्लंघन किया, परिणाम भुगतना पड़ा। प्रत्याहार की प्रेरणा इसीलिए है कि पुरुष कभी मृग-मरीचिका में न उलझे, नहीं तो राम की तरह पछताना पड़ेगा और नारी कभी भी लक्ष्मण-रेखा का उल्लंघन न करे अन्यथा उसे रावण जैसे आततायी के चंगुल में फँसना पड़ सकता है। ये सब बातें हमें प्रत्याहार की प्रेरणा देती हैं कि लौट आओ अपनी-अपनी सीमा में, अपनी-अपनी मर्यादा में। हे चित्त, तुम भी अपनी सीमा में रहो, अतिक्रमण न करो। आक्रमण और अतिक्रमण की बजाय हम प्रतिक्रमण करें अर्थात् अपने-आप में लौट आएँ।

महर्षि पतंजलि कहते हैं - इन्द्रियों का विषयों से विमुख होकर चित्त के स्वरूप में अन्तर्मुख होने का नाम प्रत्याहार है अर्थात् हमारी इन्द्रियाँ जो बाहर की ओर विषयों से जुड़ी हैं इनसे विमुख होकर, इनसे अनासक्त होकर चित्त के स्वरूप में यानी अपने भीतर लौट आना ही प्रत्याहार है। अभी आत्मा और परमात्मा की बात नहीं हो रही है, अभी तो हमारे चित्त की, मन की बात ही चल रही है। हमारी इन्द्रियाँ जो बाहर भटक रही थीं, बाहर में रुचि ले रही थीं, अब जबकि प्राणायाम सध गया है, इन गतिविधियों से अपने-आप में लौटा लाएँ। ठीक उसी तरह जैसे सूरज साँझ पड़ने पर अपनी किरणों को खुद में लौटा लेता है हम भी अपने-आप को अपने में

लौटा लें।

प्रत्याहार को समझने से पहले चित्त के गुणों को समझें – चित्त में तीन गुण हैं – रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण। तमोगुण – सदा दूसरों का विनाश करता है, तमोगुण यानी दूसरों को मिटा डालो, समाप्त कर दो। मेरी ही चले, जैसा मैं कहूँ वैसा ही हो, मेरा अहंभाव, मेरा अनुशासन चले, मेरा नाम, मेरा यश, मेरी प्रतिष्ठा – ये सब रजोगुण के परिणाम हैं। सतोगुण – धैर्य, शांति, क्षमा, करुणा, भाईचारा, प्रेम, दूसरों का सम्मान – ये सब चीजें सतोगुण के अन्तर्गत आती हैं। इन तीनों गुणों का हमारे भीतर संघर्ष चलता रहता है। कभी एक गुण हावी होता है, तो कभी दूसरा तो कभी तीसरा। निमित्तों के अनुसार ये गुण हम पर प्रभाव डालते हैं। जिसने अपने सतोगुणों का विकास कर लिया है वह विपरीत वातावरण बन जाने पर भी धैर्य, शांति, संयम और स्वयं पर अंकुश रखेगा। सतोगुण का विकास न होने पर उग्रताएँ और आतंक अपने पैर पसारेंगे।

पहले चरण में ही हम अपने चित्त की स्थिति का निरीक्षण कर लें। चित्त हमेशा सक्रिय गतिशील रहता है। दिन-रात इसकी उधेड़बुन चलती रहती है। दिन में विचारों के रूप में, रात में सपनों के रूप में यह सतत क्रियाशील रहता है, सगतिक। इसकी गति सूर्य-किरण से भी कई गुना अधिक है। सूर्य की किरण को तो पृथ्वी पर पहुँचने में कुछ सेकंड का समय लगता है पर मन! यह तो सोचे और वहाँ पहुँचे। उसके भीतर बस कामना जगनी चाहिए। इसकी पहुँच तीव्रतम है। मन की चंचलता दूसरा लक्षण है, तीसरा – मन सदा परिवर्तनशील रहता है, बदलता रहता है। एक जैसे भाव नहीं रहते – कभी यह, कभी वह बन जाता है। चित्त और मन बदलता है, इसलिए व्यक्ति के विचार भी बदलते हैं। कोई भी विचार स्थायी नहीं होता। वैसे भी दुनिया में कुछ शाश्वत नहीं है – न मन, न तन, न विचार, न व्यवस्था, न प्रकृति, न दुनिया – सब बदलता रहता है। इसीलिए ज्ञानी महापुरुष कहते हैं – अनित्यता पर चिंतन करो, This too will pass सब बीत जाएगा। जब वह बीत गया तो यह भी कहाँ रहने वाला है। इसलिए जानो कि यहाँ पर सब कुछ परिवर्तनशील है।

जिसने भी परिवर्तनशीलता के सिद्धांत को समझ लिया वह कभी भी मोहग्रस्त और आसक्त नहीं होगा क्योंकि वह जान लेगा कि सभी नदी-नाव संयोग हैं और यह संयोग कभी भी टूट सकता है। पतंग और धागा साथ है लेकिन फिर भी नहीं जानते कि पतंग कब तक उड़ पाएगी और कब कट जाएगी।

कोई छोटा-सा निमित्त हमारे दस वर्ष के संबंधों पर, मेहनत पर, पानी फेर

सकता है। परिवर्तनशीलता के सिद्धांत को समझें। पेड़ पर पत्तियाँ आती हैं, फूल खिलते हैं, सुंदर लगते हैं, खुशबू होती है, उनका रंग सुहाना लगता है, आँखों को, नासिका को, होठों को अलग आनंद मिलता है। लेकिन पत्तियों को, फूलों को, पेड़ों को गिरते हुए देखते हैं तो पता चलता है कि यहाँ सब कुछ परिवर्तनशील है। लोग बदल जाते हैं, संबंध बदल जाते हैं, महल खंडहर बन जाते हैं, यहाँ सब बदल जाता है। सागर की, सरोवर की उठती-गिरती लहरों को देखो – यहाँ सब बदल जाता है। मोह, माया, आसक्ति के प्रभाव को तोड़ने का तरीका है परिवर्तनशीलता को जानना-समझना। सभी के मन में अलग-अलग विचार धाराओं का प्रवाह होता है, लेकिन जानो कि यह चित्त की चंचलता ही उसकी प्रकृति है, यह उसका स्वभाव है। इस चंचलता को एकाग्र कर मन की विस्फोटक ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकृति को अगर ठीक ढंग से समझ लिया जाए तो मन से बड़ा सहायक जीवन की ऊर्जा का पिंड दूसरा नहीं मिल सकता।

वह क्या है जिसके सहारे हिलेरी और तेनसिंह ने एवरेस्ट पर चढ़ाई कर ली? वह कौन-सी ताक़त है जिससे मात्र चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु में शिवाजी ने किला फ़तह कर लिया। वह कौन-सी ताक़त है कि उन्नीस वर्ष की आयु में वाशिंगटन अमेरिका का सेनापति बन गया। हमें समझना चाहिए कि यह मन की, आत्मा की ताक़त है। यदि व्यक्ति का बिखरा हुआ मन एकाग्र हो जाए तो महान आविष्कार हो जाते हैं। कहा जाता है कि एडीसन की पत्नी उनसे कहती कि चलो कहीं घूम आएँ। क्या हर समय विज्ञानशाला में ही घुसे रहते हो! पत्नी का मान रखने के लिए वे बाहर निकल आए और पूछने लगे – कहाँ चलें? पत्नी ने कहा – जहाँ तुम्हारा मन करे। वे पुनः विज्ञानशाला में प्रविष्ट हो जाते हैं। पत्नी पूछती है – यह क्या, तुम तो वापस वहीं चले गए। एडीसन कहते हैं – तुम्हीं ने तो कहा था जहाँ मेरा मन करे। मेरा मन तो यहीं जाने को करता है।

हम सभी जानते हैं थॉमस अल्वा एडीसन ने अनेक आविष्कार किए और उनमें से एक है रात को भी दिन में बदलने वाला बल्ब।

यह मन जब एकाग्र हो जाता है तो लग ही जाता है। जब हम तन्मयता से लग जाएँगे तो परिणाम ज़रूर आएगा। मन की एकाग्रता जीवन की सबसे बड़ी दौलत है। मन की एकाग्रता ज्ञान-विज्ञान, किसी भी कार्य में व्यापार की सफलता का पहला और अंतिम मंत्र है। इसीलिए ध्यान और समाधि के लिए प्रत्याहार अनिवार्य चरण है। प्रत्याहार से गुजरते हुए हम धारणा की ओर बढ़ेंगे और धारणा मन की एकाग्रता

का नाम है। एक वाक्य में समझते हैं बिखरे हुए चित्त को अपने आप में लौटा लाना, बिखरी हुई इन्द्रियों को विषयों से विमुख करके अपने आप में लौटा लाना प्रत्याहार है और नाभि-प्रदेश, हृदय-कमल, दोनों भृकुटियों के मध्य, ब्रह्मरंध्र पर अपने चित्त को केन्द्रित करना, टिकाना धारणा है। देह के इन चक्रों पर जब चित्त को केन्द्रित करते हैं तो यह बार-बार भटकता है लेकिन पुनः पुनः इसे अपने स्थान पर ले आना धारणा है। धारणा वह एकाग्रता है जहाँ बार-बार व्यवधान होने पर भी अर्थात् नई वृत्तियों के उदित होने से जो बाधा आती है और ध्यान भंग करती है उस स्थिति में प्रयासपूर्वक साधी गई एकाग्रता धारणा होती है और जब बिना किसी बाधा के, बिना विकल्प विचार के हम स्वयं को नाभि पर, हृदय पर या अपने ललाट प्रदेश पर, अपने आज्ञाचक्र या ज्ञान-चेतना पर एकाग्र करने में सफल हो जाते हैं, वह स्थिति ध्यान कहलाती है। चित्त की शांत, मौन निर्मल स्थिति ही ध्यान है।

एकाग्रता में जब अन्य किसी वृत्ति का उदय या व्यवधान आने लगे तो धारणा हो जाती है लेकिन जब वही धारणा एकतान हो गई, ध्याता और ध्येय के मध्य एकलयता सध गई तो ध्यान बन जाती है।

प्रत्याहार – चित्त का स्वयं में लौटना, इन्द्रियों का चित्त में लौटना।

धारणा – चित्त का व्यवधान-सहित केन्द्रीकरण।

ध्यान – व्यवधान रहित, वृत्तियों का विलीनीकरण, एकलय हो जाना।

योगः चित्तवृत्ति निरोधः— एकलय हो जाना, चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाना।

ध्यान की स्थिति में पहुँचने पर ही योग अपना परिणाम देता है। ध्यान की पूर्वभूमिका धारणा है। धारणा तो प्रतिदिन होती है। ध्यान हो या न हो हमारा प्रयत्न, हमारी जागरूकता, हमारी सचेतनता इस बात की हो कि ध्यान सधे, हम ध्यानस्थ हों। ध्यान न भी हो, पर धारणा तो अवश्य होती है। धारणा ही हमें ध्यान की ओर ले जाती है। आप सभी धारणा से ध्यान की ओर अग्रसर हों।

इसी मंगलभावना के साथ.....

नमस्कार!



बस, तीन कदम...

धारणा, ध्यान, समाधि

मेरे प्रिय आत्मन्!

आज अपनी बात का प्रारंभ उस बात से करूँगा जिसने मुझे भी प्रभावित किया। जैन परम्परा में एक संत हुए हैं – जीऊन। कहा जाता है कि जापान में संत जीऊन का बहुत प्रभाव था। जीऊन विद्वान प्रवक्ता थे – लोग उन्हें सुनने के लिए अपने गाँव, अपने शहर में बुलाते थे। राजमहलों में भी वे सम्मानित किए जाते थे। एक बार उन्हें अपनी माँ का पत्र मिला जिसमें लिखा था – मेरे प्रिय पुत्र, तुम निश्चय ही मेरे यशस्वी पुत्र हो और मुझे तुम पर अत्यन्त गौरव है। मुझे खुशी है कि हम दोनों संन्यासी हैं। इन दिनों मुझे सुनने में आ रहा है तुम्हारा यश और गौरव निरन्तर बढ़ रहा है। एक दृष्टि से यह सब बहुत सुकून की बात है लेकिन क्योंकि मैं तुम्हारी माँ हूँ, मैंने तुम्हें जन्म दिया है इसलिए तुम्हारे हित-अहित के बारे में सूचित करना अपना दायित्व समझती हूँ। बेटा याद रखो ज्ञान प्राप्त करने की कोई सीमा नहीं है और न ही यश और सम्मान प्राप्त करने का कोई अंत है। ज्ञान और सूचनाएँ अनन्त हैं जिन्हें प्राप्त करने के लिए सौ जीवन भी कम हैं और यश तथा प्रसिद्धि ऐसे अंतहीन आकाश की तरह हैं कि इन्हें ज्यों-ज्यों इंसान प्राप्त करता है त्यों-त्यों यश, प्रतिष्ठा और

गरिमा प्राप्त करने की तृष्णा बढ़ती जाती है। मैं भी कभी इस चंगुल में फँसी थी लेकिन प्रभु – कृपा से मैं इस चंगुल से निकल गई और आज मैं तुमसे यह अनुरोध करना चाहती हूँ कि अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारी माँ तुम पर गौरव कर सके तो तुम इन सारे प्रपंचों का त्याग करके, एक ऐसे एकांत स्थान पर चले जाओ जहाँ जाकर तुम जान सको कि जीवन का वास्तविक सत्य, ज्ञान और अंतिम लक्ष्य क्या है। यदि तुम ऐसा कर सको तो तुम्हारी यह माँ सहज ही तुम पर गौरव करेगी कि उसका पुत्र आत्मज्ञानी संत हुआ। – तुम्हारी माँ।

अपना नाम लिखकर माँ ने एक वाक्य और लिखा –

Never born, never died

जब मैंने यह पढ़ा तो मुझे लगा कि यह पत्र केवल जीऊन के लिए नहीं था, बल्कि चन्द्रप्रभ को उसकी माँ ने लिखा था। साधना के प्रति रुचि थी ही, लेकिन इस ख़त ने अन्तर्दृष्टि को और गहरा बना दिया। तब यह दृष्टि आई कि सब लोगों के बीच रहते हुए भी एकांत कैसे साधा जाए, बातचीत करते हुए भी अपने मौन को कैसे बरकरार रखा जाए। सभी के साथ संबंध बनाते हुए अपनी ध्यान और समाधि को कैसे अखंड रखा जाए।

भगवान महावीर ने कभी कहा था – इंसान नहीं जानता, वह कौन है, कहाँ से आया है और कहाँ जाना है। उसकी जानकारी इतनी ही है कि वह अमुक नगर में पैदा हुआ है, अमुक माँ-बाप की संतान है, उसका अमुक नाम है। अगर किसी से पूछा जाए कि वह कहाँ रहता है, तो वह किसी स्थान का नाम बता देगा। लोग मुझसे भी पूछते हैं कि मैं किस शहर या गाँव का हूँ। मेरे लिए यह बताना कठिन है कि मैं किस नगर या गाँव की बात करूँ और किस जन्म की बात करूँ। व्यक्ति नहीं जानता कि वह कौन है? वह तो इतना ही जानता है कि वह किसी की संतान है। वह यह नहीं जानता कि वह ईश्वर की संतान है, उसे तो इतना ही पता है कि वह किसी माता-पिता की संतान है। यदि ईश्वर को जनक-जननी मान लिया जाए तो सारे प्रपंच ही समाप्त हो जाते हैं। सबका मालिक एक, सबका पिता एक, सबकी माँ एक।

हम नहीं जानते कि हम इस पृथ्वी ग्रह पर कहाँ से आए हैं, किस दिशा से आए हैं, यह भी नहीं पता कि देह-त्याग के बाद किस लोक में जाएँगे। ज्ञानी, पल-पल का बोध करने वाला व्यक्ति भली-भाँति जानता है कि वह किसी प्रकाश-लोक से आया है और पुनः किसी प्रकाश-लोक में चला जाएगा। ज्ञानी अपने जीवन में वह पाप-कर्म नहीं बटोरता जो उसे अंधकार के लोक में ले जाए। प्रकाश के लोक से आने

वाला अगर अंधकार के लोक में चला जाए तो इससे बड़ा अज्ञान और क्या होगा? अज्ञानी तो अंधकार से आता है और अंधकार में ही चला जाता है लेकिन ज्ञानी या अज्ञानी जो स्वयं को जानने के लिए जागरूक है, जगत को, तत्त्व को तत्त्वतः जानने के लिए जागरूक है वह अवश्य ही प्रकाश के लोक की ओर गमन करता है। यही इंसान की आत्मविजय है, सफलता है।

ज्ञानी की यही ज्ञान-दशा है कि वह प्रकाश-लोक का पथिक बने, भले ही तमोगुण, तमस् उसे क्यों न घेर लें, चित्त के क्लेश-संकलेश उस पर हावी हो जाएँ फिर भी वह स्वयं को अंधकार में आवृत्त नहीं करता, न ही उसमें डूबता है। माना कि हमारा जन्म भले ही दलदल में हुआ हो, पर हम उसके कीड़े न बनें बल्कि कमल का फूल बन जाएँ। यही सफलता है ज्ञानी की। सांसारिक सफलता तो धनी, सम्पन्न, समृद्ध बनने में है। संसारी व्यक्ति की सफलता अमीरी, धन-दौलत के आधार पर नापी जाती है, पर ज्ञानी की सफलता कीचड़ का कीड़ा नहीं बल्कि कीचड़ का कमल हो जाने में है। मुक्ति का कमल, अनासक्ति का फूल, आत्म-ज्ञान के अमृत का फूल बन जाना उसके जीवन की विशेषता है।

पहला सोपान जानना है – ज्ञानीजनों के द्वारा कही गई पवित्र पुस्तकों के उपदेश, उनके द्वारा लिखी गई पवित्र किताबों का प्रकाश – जिसके द्वारा व्यक्ति जानता है कि वह वास्तव में कौन है, उसके जीवन का वास्तविक सत्य क्या है। दूसरा चरण है – ज्ञानी गुरुजनों के सान्निध्य में बैठकर जानने का प्रयत्न हो कि हमारे जीवन का वास्तविक सच क्या है, वह कौन है, कहाँ से आया है, किस अज्ञात लोक से आया है और किस अज्ञात लोक की ओर प्रयाण करेगा।

उत्तर बीसवीं सदी के दार्शनिक संत ओशो ने अपनी समाधि पर जीवन के सत्त्व का बोध, आध्यात्मिक चिंतन का सार लिखवाने का प्रयत्न किया कि ओशो न कभी जन्मे, न कभी मरे। केवल इस तारीख से..... इस तारीख तक पृथ्वी-ग्रह पर रहे। – यह बहुत महान् आध्यात्मिक चिंतन का सार है।

जैसे कि संत जीऊन की माँ ने लिखा, ओशो ने लिखा – ऐसे ही हम सभी को बोध रखना चाहिए कि महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण, मुहम्मद, ईसा हम सब भी न कभी जन्मे, न कभी मरे। केवल इतनी तारीख से इतनी तारीख तक पृथ्वी-ग्रह पर रहे। जब हम यह जान लेंगे तो हम मरेंगे नहीं, अमरता उसके चिंतन में भी रहेगी। यह अहंकार ही क्यों रखा जाए कि अमुक तारीख को स्वर्गवास हुआ या जन्म हुआ। अच्छा होगा कि यह परम्परा विकसित हो जाए कि जन्म और स्वर्गवास की तारीख लिखने के

बजाय यह लिखा जाए कि श्री..... इतनी तारीख से इतनी तारीख तक पृथ्वी-ग्रह पर रहे। यह बोध हमें अनासक्त, मुक्त, निर्मोही, वीतरागी और कमल का फूल बनाएगा।

पवित्र पुस्तकों और ज्ञानीजनों के सान्निध्य और स्वानुभूति से व्यक्ति अपने वास्तविक सत्य को जान लेता है। पुस्तकों से जानना ज्ञान का 20% है, गुरुजनों के सान्निध्य से जानना ज्ञान का 30% है, पर स्वयं की प्रत्यक्ष अनुभूति में जानना ज्ञान का शेष 50% जानना है। स्वानुभूति से ही ज्ञान की पूर्णता होती है। पुस्तकों से गुरु तक, गुरु से स्वयं तक पहुँचना ही पूर्णता का ज्ञान है। पतंजलि के माध्यम से हम योग के रहस्यों को उद्घाटित कर रहे हैं। देखा जाए तो योगसूत्र के रूप में हमने पवित्र किताब का आलम्बन लिया है, गुरुजनों के सान्निध्य में ज्ञान की रोशनी में लगातार डूब रहे हैं, यह भी ज्ञान का 30% हिस्सा प्राप्त करने का उपक्रम है। लेकिन जब हम एकांत में बैठकर अपनी साधना में अपने आत्म-चिंतन में स्वयं को ध्यान-दशा में लाते हुए तत्पर होते हैं तब यह अगले 50% की ओर कदम बढ़ाना है।

स्वयं को जानने की जितनी जिज्ञासा होती है, वह उतना ही भीतर का आनन्द ले सकता है। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये स्वयं से मुलाकात की चार सीढ़ियाँ हैं। बिना सीढ़ियों के व्यक्ति महल में सीधे क़दम नहीं रख सकता। ये वे सीढ़ियाँ हैं जिन पर चढ़ने के लिए हर व्यक्ति स्वतंत्र है। कोई भी जाति-व्यवस्था इन सीढ़ियों पर चढ़ने के लिए आड़े नहीं आती। इन सीढ़ियों से कोई व्यक्ति अंदर प्रवेश पा सकता है। जाति के समीकरण सामाजिक व्यवस्था है। सत्य का इन लेबलों से कुछ लेना-देना नहीं है। सत्य स्वतंत्र है, जाति की सीमाओं से परे है। हम जिस अन्तर्घट, अन्तर-मंदिर की ओर चल रहे हैं वहाँ गुरु-चेला, पति-पत्नी, माता-पिता, संतान कौन है? यह तो एकला चलो रे का रास्ता है। यह तो स्वयं में चलना है। इसीलिए प्रत्याहार पहले कर लिया जाता है ताकि जो लोग साथ में हैं, उन्हें बाहर ही छोड़ दिया जाए। हो सकता है कुछ लोग हमें हमारे मन तक पहुँचाने के लिए साथ आए हों, लेकिन उन्हें साथ लेकर यात्रा पर मत निकलो। जो पहुँचाने आए हैं उन्हें जल्दी ही विदा कर दो।

यह कोई ईंट-चूने-पत्थर का मंदिर नहीं है जिसमें सबको आने की इजाजत हो। इसमें तो खुद को ही प्रविष्ट होना है, खुद को ही गहरे पानी पैठ उतरना है खुद में ही जाना है। जिन खोजा तिन पाइयाँ – जो गहरे में जाकर खोजेगा वही पाएगा। भीतर के अन्तर्घट में सभी को आमंत्रण है, सभी का स्वागत है। अन्तर्घट में आकर बाहर को

भूल जाओ।

प्रत्याहार – इन्द्रियाँ जो कि संसार से जुड़ी हुई हैं, विषयों से संबंधित हैं वहाँ से अपनी आसक्तियों को दूर करते हुए, विषयों से विमुख होकर स्वयं में लौट आओ। बाहर से भीतर लौटो। परमात्मा के लिए उपनिषद् कहते हैं – स एकाकी न रमे एकोऽहं बहुस्याम् – वह अकेला था, अकेलेपन से ऊब गया, सोचा बहुत हो जाऊँ और बहुत हो गया। बहुत हो गया तो संसार बन गया और जब बहुत हो गया तो उत्कंठा जागी कि अपने आप में लौट आऊँ तो स्वयं में लौट गया और बैकुंठ में जाकर अपना अखंड निवास बना लिया। यह हुआ उसका संन्यास लेना, समाधिस्थ होना, आत्मलीन हो जाना।

महावीर के दो नाम चलते हैं – वर्धमान और महावीर। वर्धमान का अर्थ है बढ़ने वाला। कहा जाता है कि जब महावीर जन्मे तब उनके राज्य में श्री-समृद्धि खूब बढ़ी तब उनके पिता ने उनका वर्धमान नाम दिया, लेकिन वर्धमान ने जब संन्यास लिया तो महावीर पैदा हुआ। आत्मज्ञान की साधना वर्धमान होने से नहीं अपितु महावीर होने से होती है। महावीर अपने आप में लौटता है। जब वे वर्धमान थे तो पत्नी को महत्त्व दिया लेकिन जब महावीर हो गए तो परमात्मा को महत्त्व दिया। इतना ही फ़र्क़ है। एक में व्यक्ति पत्नी को दूसरे में परमात्मा को महत्त्व देता है। पत्नी को महत्त्व दोगे तो संसार मिलेगा और परमात्मा को महत्त्व दोगे तो जन्मों से चल रही जन्म-मरण की धारा से मुक्ति मिलेगी, निर्वाण और मोक्ष मिलेगा। वह अपने वास्तविक सत्य, वास्तविक आलोक और वास्तविक अध्यात्म को उपलब्ध होगा। संसार की ओर जाओगे तो संतानें होंगी और परमात्मा की ओर जाओगे तो अनंत सिद्धियाँ, अनंत निधियाँ, प्रज्ञा का अनंत प्रकाश, कैवल्य का अनंत बोध इस तरह की संतानें हमारे भीतर जन्म लेंगी। यम, नियम, आसन, प्राणायाम बीज बोने की तरह हैं, प्रत्याहार अंकुरण और धारणा, ध्यान समाधि की ओर बढ़ना कलियों का फूल बन जाना है।

हम बाहर रहने के अभ्यस्त हैं लेकिन अब हमें भीतर जाना है। एक प्रसिद्ध कहानी है – इस्लाम धर्म की महान साध्वी राबिया वसी की। राबिया अपनी झोंपड़ी के भीतर कुछ ढूँढ रही थी कि वहाँ से गुजर रहे कुछ फ़क़ीरों ने उसे ऐसा करते देख खुद भी ढूँढने में मदद करने लगे। राबिया ने देखा कि कुटिया के बाहर प्रकाश है तो वह बाहर निकल आई और वहाँ ढूँढने लगी। फ़क़ीरों ने देखा तो उन्होंने उसका अनुसरण किया कि राबिया वृद्ध है कम दिखाई देता होगा, वे भी उसकी मदद करने

लगे। फ़क़ीरों ने पूछा – क्या गुम गया है माँ! राबिया ने कहा – सुई खो गई है, बेटा।

सभी ढूँढने लगे, पर सुई न मिली। तभी किसी फ़क़ीर ने पूछा – माँ, हम सभी इतनी देर से ढूँढ रहे हैं, पर यह तो बताओ कि वह कहाँ गिरी थी। राबिया ने कहा – बेटा, गिरी तो घर के भीतर थी। सूफ़ी फ़क़ीर हँसने लगे और कहा – माँ, तू कैसी बातें कर रही है, सुई जब घर में खोई है तो बाहर क्यों ढूँढ रही है? क्या बेवकूफ़ जैसा काम कर रही है? राबिया ने कहा – बाहर इसलिए ढूँढ रही हूँ कि यहाँ प्रकाश है, घर के भीतर अंधेरा है। फ़क़ीरों ने कहा – राबिया! भले ही बाहर प्रकाश हो लेकिन सुई जहाँ खोई है अन्ततः वहीं तो ढूँढनी पड़ेगी। राबिया ने कहा – बेटा, मुझे लगता था तुम जानकार नहीं हो, इसलिए तुम्हें ज्ञान दे दूँ लेकिन बातों से तो ज्ञानी ही लगते हो। जब तुम्हें अहसास है कि घर में खोई हुई सुई को घर में ही ढूँढना पड़ेगा तो फ़क़ीरों तुम बाहर ढूँढने में क्यों लगे हो?

राबिया की यह कहानी हमें प्रेरणा की रोशनी देती है कि घर में खोई सुई को घर में ढूँढो। अपने आप में लौटो, बाहर से भीतर की ओर मुड़ो। बाहर से भीतर मुड़ने के लिए हमें अपने चित्त को केन्द्रित करना होता है। हम गतिशील इन्द्रियों को चित्त में धरते हैं। इसीलिए ध्यान करते समय पलकों को बंद कर लेते हैं ताकि हमारी आँखें जो बाहर के दृश्यों को ग्रहण करती हैं, हमारे चित्त पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव न डालें। इसलिए पलकों को झुकाकर ध्यान करते हैं। आँखें बंद नहीं होतीं, पलकें बंद करते हैं। आँखें तो गहराई में खुलती हैं। यँ तो पलकें खुलती हैं तो बाहर देखते हैं और जब पलकें झुका लेते हैं तो इन आँखों से अपने अन्तर्घट को देखते हैं, अपने-आप को, भीतर को देखते हैं। बाहर-बाहर देख लिया, अरे मनवा देख भीतर भी।

‘बाहर के पट देई के, अन्तर के पट खोल’ – कबीर के पद उलटबाँसी नहीं, बाँसुरी हैं। बाहर से अंदर आओ और अपनी पाँचों इन्द्रियों को चित्त की ओर अभिमुख करते हुए चित्त को केन्द्रित करते हैं, उसे बाँधते हैं, लगाते हैं और यही है धारणा। धारणा के जरिए चित्त को बाँधना और लगाना तपस्या है। लेकिन अगर हम प्रत्याहार और धारणा नहीं कर पाते हैं तो मैं कहूँगा कि प्राणायाम कर लो। ये प्रत्याहार और धारणा को खुद-ब-खुद साध लेते हैं। इतना भी न हो सके तो संगीत के साथ मस्त हो जाओ। किसी धुन को गुनगुनाओ, हाथ की तालियों से ताल दो और एकलय, एकतान हो जाओ। किसी मंत्र को भी गुनगुनाओ तो पूरे डूबकर। ध्यान क्या है – एक तान हो जाना है। धारणा है एक ही विषय में स्वयं को केन्द्रित और एकाग्र करना। धारणा अर्थात् धार लिया, धारण कर लिया। जब हमारा बिखरा हुआ चित्त

एक ही ध्येय में केन्द्रित, एकाग्र हो जाता है तो वह है धारणा। एक उदाहरण देता हूँ – गुरु द्रोणाचार्य अपने सभी शिष्यों को एकत्रित कर पूछते हैं – सामने क्या दिखाई दे रहा है? एक ने कहा – आसमान। दूसरे से पूछा तो कहा कि पहाड़ दिख रहा है। अलग-अलग शिष्य बताते हैं कि पहाड़ के नीचे पेड़ दिख रहा है। किसी ने कहा – पेड़ की डाली दिखाई दे रही है। अगले ने कहा – सामने चिड़िया दिखाई दे रही है। अर्जुन से पूछा जाता है कि उसे क्या दिखाई दे रहा है। अर्जुन ने कहा – उसे केवल आँख दिखाई दे रही है।

अगर किसी को शर-संधान करना है तो आसमान में तीर नहीं चलाया जा सकता। पहाड़ या पेड़ पर तीर चलाने से भी कुछ हासिल नहीं होने वाला। लक्ष्य पर नज़र चाहिए और तीर तभी परिणाम देगा जब विराटता को केन्द्रित करके लक्ष्य पर आ जाएँगे, अपने चित्त पर एक बिंदु पर केन्द्रित कर लेते हैं, एकाग्र कर लेते हैं।

आप विद्यार्थी हैं तो लक्ष्य बनाएँ मेरिट लिस्ट को, तो कम-से-कम प्रथम श्रेणी तक तो पहुँचेंगे। कोई भी परफेक्ट नहीं होता है लेकिन लक्ष्य तो निर्धारित कर सकते हैं, तभी तो प्रयास होंगे, क्रदम आगे बढ़ेंगे। अगर मन में मात्र उत्तीर्ण होने की ही आकांक्षा है तो कुछ भी हासिल नहीं हो पाएगा। चाँद का लक्ष्य बनाएँगे तो नंदन वन तो मिल ही जाएगा।

धारणा – अपने चित्त को बाँधो, अपने चित्त को एकाग्र करो। बार-बार अनुरोध करता हूँ कि अर्जुन की तरह आँख (लक्ष्य) पर नज़र रखो। बुद्ध कहते हैं – सचेतनता के सूत्र को अपने साथ रखो हर समय। चाहे कुछ भी कर रहे हो। सचेतन-जाग्रत रहो। संसार के सारे काम करने पड़ेंगे लेकिन अपनी जागरूकता बनाए रखो। कर्मयोग, सेवायोग, भक्तियोग सभी करो, लेकिन अपने लक्ष्य को कभी विस्मृत मत करो। अरे, चाहो तो नृत्य ही करो, पन्द्रह-बीस मिनट तक नृत्य ही करते रहो, नृत्य भी आपको अन्तर्लीन कर देगा। नृत्य ही बचे, नर्तक खो जाए। कोई देखे तो कहे कि पागल हो गया है। मीराबाई को भी लोगों ने पागल कहा था लेकिन पागल हुए बिना परमात्मा भी नहीं मिलता। भक्ति पागलपन ही है, दुनिया की नज़रों में क्योंकि पागलों की दुनिया में एक समझदार खड़ा हो गया तो सारे पागलों को एक समझदार पागल ही नज़र आता है।

परमात्मा सर्व व्याप्त है। ध्यान में भी परमात्मा, आँखें खोली तो पते-पते में वेद की ऋचाएँ हैं, स्थान-स्थान पर उपनिषद हैं, हर जगह उसका आनंद लो। पेड़ों के नीचे, फूलों के बीच, सरोवर के किनारे सभी जगह परमात्मा का आनंद लो। वह

हर जगह है। हमने अपना चित्त जो प्रतिक्षण संसार में लगा रखा है उसकी दिशा बदल देना है। जो याद पत्नी की रहती है वह प्रभु से जुड़ जाए, ईश्वर से जुड़ जाए, दिशा बदल जाए, यही ध्यान है।

चित्त को एकाग्र करने के विभिन्न तरीके हैं – प्राणायाम के द्वारा या नाभि, हृदय अथवा ललाट प्रदेश पर ध्यान करके चित्त को एकाग्र किया जाए या जैसा कि मैंने कहा नृत्य द्वारा भी एकाग्रता साधी जा सकती है। प्रायः लोग मुझसे कहते हैं उनसे ध्यान नहीं होता, कैसे करें? ध्यान को इतना नीरस कर दिया गया है कि लोगों की उसमें रुचि ही नहीं होती। क्रिकेट की कमेंट्री में कितना रस आता है, फिल्मों में कितना रस है। ध्यान भी बिना रस के किया जाएगा तो बोझिल बन जाएगा, इसलिए ध्यान को भी रसमय बना लिया जाए, भक्तिमय, तालयुक्त बना लो। हमारी थिरकन सहज ही धारणायुक्त हो जाएगी। नीरसता से ऊब पैदा होती है इसलिए हर चीज को सरस बनाएँ। संसार में पत्नी, परिवार, बच्चे, घर, व्यवसाय, कामकाज न हो तो संसार भी नीरस हो जाएगा। ये चीजें संसार को सरस बनाती हैं। इसलिए ध्यान को भी सरसता से जोड़ो। ध्यान को भी जीवन का उत्सव और आनंद बना लें। तब हम कहेंगे हंसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम् और अपने-आप में ध्यान धरेंगे। विनोबा भावे अगर झाड़ू लगा रहे होते और कोई पूछता कि क्या कर रहे हो तो उनका जवाब होता माला फेर रहा हूँ। लोगों को लगता यह कैसी माला है – काम झाड़ू लगाने का कर रहे हैं और कहते हैं माला फेर रहे हैं। विनोबा जी कहते थे – भाई, जितनी बार बुहारी करता हूँ उतनी ही बार राम का नाम लेता हूँ। यह आपके लिए बुहारी हो सकती है, पर मेरे लिए तो यह भी भगवान का भजन है। जब कर्म को भी प्रार्थना बना लो तो जिंदगी में हमें कोई काम बोझिल नहीं लगेगा। कार्य कोई भी छोटा या बड़ा नहीं होता, बस उसे ईश्वर की साधना समझना चाहिए। संडास भी अगर साफ करें तो प्रभु का मंदिर ही जानें।

भगवान या तो कहीं नहीं है या सर्वत्र है। हम जहाँ जिस रूप में उसका अहसास करेंगे वह वहाँ उस रूप में हाज़िर है, शेष तो वह साकार कभी नज़र आता नहीं। अब त्रेता और द्वापर युग तो है नहीं कि उनका साक्षात् रूप नज़र आए। अब तो जिस रूप में भी उसका आनन्द लेना चाहोगे वह वैसा ही मिल जाएगा। इसलिए मैं तो कभी यह प्रार्थना नहीं करता कि आओ प्रभु दर्शन दो। मैं तो जहाँ होता हूँ बस वहाँ उसका आनन्द लेता हूँ, उसका अहसास, उसकी अनुभूति करता हूँ। ध्यान में हम क्या रहे हैं? आत्मा में परमात्मा का आनन्द ले रहे हैं। आत्मा को क्या जानना वह तो हम हैं ही, यह देह आत्मा के कारण ही तो खड़ी है। आत्मा में परमात्मा की अनुभूति

करने के लिए ध्यान करना है। आत्मा कहीं खोई नहीं है कि ध्यान द्वारा खोजी जाए।

मैं जब ध्यान करता हूँ तो पलकें झुकाता हूँ – प्राणायाम करता हूँ, शांति में प्रवेश करता जाता हूँ, चित्त शांत हो जाता है, स्थिर हो जाता है और तब अपने हृदय प्रदेश में उस परमात्मा का सान्निध्य, उसका सम्पर्क लेता हूँ। इस काया के बाहर जो कायनात है, उसका भी आनन्द लेता हूँ।

देखो, देख पाओ तो वह सर्वत्र है, जानो तो वह है, अहसास करो तो वह है अगर नहीं है तो फिर मंदिर में भी नहीं है, तीर्थ में या मस्जिद, गुरुद्वारे में भी नहीं है वह कहीं भी नहीं है। वह तो सब जगह है केवल उसका आनन्द लेना आना चाहिए। समाधि तो चौबीसों घंटे नहीं लग सकती, पर प्रभु का आनन्द चौबीसों घंटे लिया जा सकता है, प्रकृति का आनन्द भी हर समय लिया जा सकता है। माना कि भगवान प्रकट हो जाएँ तो भी हर वक्त वे हमारे साथ नहीं रह सकते। अरे, भगवान तो सबके सामने हैं ही। दुनिया में अरबों लोग हैं। सबके सामने तो वह प्रकट होने से रहे, हमने समझा ही गलत है। वह तो प्रत्येक के साथ अदृश्य रूप से है। वह तो सभी में निवास करता है, केवल दृष्टि रखो। तब धारणा भी होगी और ध्यान भी सधेगा। तब ध्यान के लिए मन लगाना नहीं पड़ेगा, तब मन लगा हुआ ही होगा। पत्नी, परिवार, व्यापार में जैसे मन नहीं लगाना पड़ता खुद-ब-खुद लग जाता है। वैसे ही ध्यान में मन लग जाएगा। जो लगाई जाए वह खंडित हो जाती है और जो लग जाती है वह छूट नहीं पाती। जिसका मन प्रेम में लग गया उस लगे हुए मन को हटाया नहीं जा सकता।

ध्यान का अर्थ ही लगन लगना है। ध्यान के बिना तो जिया ही नहीं जा सकता। काम करना है तो ध्यान से करो, चलना है तो ध्यानपूर्वक, बोलना भी ध्यानपूर्वक, खाना-पीना, उठना-बैठना, रहना, सोना सबके साथ ध्यान की आभा जुड़ जानी चाहिए। जिसके साथ ध्यान की स्थिति जुड़ जाती है, समाधि, प्रभु का अनुग्रह, प्रभु की प्रसादी उसके आसपास ही रहती है।

जीवन प्रभु का वरदान है। इसे उत्सव समझें, तब ध्यान अनायास ही हमारे साथ रहेगा। माना कि इन्द्रियों की स्थिति बहिर्मुखी है, चित्त की गति बहिर्गामी है लेकिन बाहर भी तो वही जाता होगा जहाँ उसे सरसता व प्रेम मिलता होगा। अगर प्रभु से लौ लग जाए, उससे प्रीत पाल लें, उसे आँखों में बसा लें तो ध्यान सहज है। अरे, दान देना हो तो कठिन है क्योंकि कुछ देना पड़ता है, तपस्या में भूखे रहना पड़ता है, लेकिन ध्यान करना हो तो! इससे अधिक सरल काम कोई है ही नहीं। न कही जाना, न कुछ देना, न भूखे रहना केवल प्रभु को दिल में बसाना है, केवल चित्त को

लगाना है। चित्त भी इसीलिए लग जाता है कि प्रभु से, आत्मा से प्रीत है, स्वयं के मित्र हैं। हाँ, जो स्वयं के मित्र नहीं हैं, जिन्हें प्रभु से प्रीत नहीं है, जो संसार में अटके, लटके हैं उनके लिए तो ध्यान करना बहुत बड़ी तपस्या है। सच पूछें तो संसार की सबसे कठिन तपस्या, उनके लिए मन को एकाग्र करना कठिन काम है।

मंत्रों का जाप करते हुए भी मन भटक जाता है क्योंकि उसमें भी रस नहीं है इसलिए रस जगाओ। अगर मन में प्रभु के प्रति रस उत्पन्न हो जाए तो मंत्रों का भी परिणाम निकलता है। चित्त को मंत्र में लगाओ और मंत्र को प्रीत से जोड़ो।

ओ, रंभाती नदियों
बेसुध कहाँ भागी जाती हो
वंशी रव तुम्हारे अंदर है।

हम सभी के साथ प्रभु है, हमारी चेतना है, आत्मा है। परमात्मा का सान्निध्य सर्वत्र है। किसी और का सान्निध्य सदा मिले या न मिले पर वह विधाता, रचयिता है, जो फूलों में हँस रहा है, तितलियों में उड़ रहा है, चिड़ियाओं में चहचहा रहा है, कबूतरों में शांति की गुटर-गूँ कर रहा है, हिरणों के साथ कुलाँचे भर रहा है, भँवरों में गुनगुना रहा है, इंसानों के साथ संवाद कर रहा है, पत्तों में डोल रहा है। वह सर्वत्र है, उसका आनन्द लो, उसकी मस्ती में डूब जाओ। तब धारणा हो जाएगी और ध्यान स्वतः सध जाएगा।

तेरो तेरे पास है, अपने माँहि टटोल।
राई घटै न तिल बढे, हरि बोलो हरि बोल॥

तेरा तेरे ही पास है संसार में जीते हुए, मन की प्रकृति में रहते हुए भी अगर एकाग्रता का गुर सीख जाते हैं, सरसता लगाने में समर्थ हो जाते हैं, ध्यान-दशा की टॉच मिल जाती है तो जिसे योगसूत्रों में समाधि कहा जाता है वह उपलब्ध हो सकती है। वह उच्च दशा हासिल हो सकती है जहाँ प्रज्ञा का प्रकाश मिलता है, ऋतम्भरा का उदय होता है, अध्यात्म का प्रसाद प्राप्त होता है।

समाधि जब मिलेगी तब मिलेगी पर पहले हमारा मन उसमें रम जाना चाहिए।
अगर वह दिल में बस जाए तो -

तुम्हें देख क्या लिया कि कोई सूरत दिखती नहीं पराई।
तुमने क्या छू दिया बन गई महाकाव्य गीता चौपाई॥
कौन करे अब मठ में पूजा, कौन फिराए हाथ सुमिरनी।

जीना हमें भजन लगता है, मरना हमें हवन लगता है ॥
याद किसी की मन में हो तो, जग हर वृन्दावन लगता है ।

वृन्दावन कहीं और नहीं आपके लिए हर जगह वृन्दावन हो जाता है । मीरा, सूर या चैतन्य महाप्रभु बनने की जरूरत है । वृन्दावन साथ ही होता है । मन के लग जाने का नाम ही धारणा और ध्यान है । धारणा और ध्यान में इतना फ़र्क है कि जब हम किसी चीज़ पर स्वयं को केन्द्रित करें और चित्त विचलित हो जाए, चित्त की वृत्तियाँ बाधित करें और हम पुनः-पुनः चित्त को केन्द्रित करें – यह स्थिति धारणा कहलाती है । लेकिन जहाँ हम केन्द्रित हो रहे हैं – ब्रह्मरंध्र, हृदय कमल या चित्त की आनन्द दशा में केन्द्रित हो रहे हों या अन्नकोष, प्राणकोष, मनोमय कोष, विज्ञान या आनन्दमय कोष में स्थिर हो रहे हों, एकलय और एकतानता बन गई अर्थात् कोई वृत्ति हमें बार-बार बाधित नहीं करती, हमारी एकाग्रता सहज और अनायास बनी रहती है तब वह स्थिति ध्यान कहलाती है ।

ध्यान की अवस्था जीवन में भी इतने गहरे उतर जाती है कि आपका प्रत्येक कार्य ध्यानयुक्त होने लगता है । आप खिलाड़ी हों या व्यवसायी, गृहिणी हों या कामकाजी, व्यापारी हों या अफसर, विद्यार्थी हों या वेबसाइट चलाने वाले आप कुछ भी हो सकते हैं अगर अपने अध्यवसाय के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हैं तो वह भी ध्यान का एक अंग बन जाता है । विद्यार्थी-जीवन में एक रात मेरे भाई ने मुझे नींद से उठाकर किसी चीज़ के बारे में पूछा कि अमुक वस्तु कहाँ है? तो मैंने उत्तर दिया रैपीडेक्स इंग्लिश स्पीकिंग कोर्स में । दूसरे दिन भाई ने मुझे बताया कि मैंने क्या ज़वाब दिया था । सुनकर उस समय तो हँसी आ गई लेकिन बाद में जब ध्यान का मर्म समझा तो जाना कि वह पढ़ाई के प्रति ध्यान की अवस्था का परिणाम था अर्थात् चित्त में, अन्तर्मन में, वह ज्ञान, वह शिक्षा, वह पढ़ाई इतनी भीतर तक पैठ चुकी थी कि स्वप्न भी वही, उत्तर भी वही ।

अन्य किसी वृत्ति के उदय के बिना जब हम अपने लक्ष्य, ध्येय, चेतना, परमात्म-तत्त्व के प्रति एकलय, लयलीन हो जाते हैं, तब ध्यान का उदय होता है । यही ध्यान हमने ध्येय बनाया था उसमें दत्तचित्त होकर इतने अन्तर्लीन हो जाते हैं कि ध्यान शून्य जैसा हो जाता है । तब ध्यान, ध्याता और ध्येय अलग-अलग नहीं रहते वरन् हम ध्येय स्वरूप ही हो जाते हैं । यह स्थिति समाधि कहलाती है । पतंजलि की भाषा में – चित्त को देश-विशेष में अर्थात् ध्येय में बाँधना धारणा है, ध्येय में एकतान एकलय हो जाना ध्यान है और जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति हो और

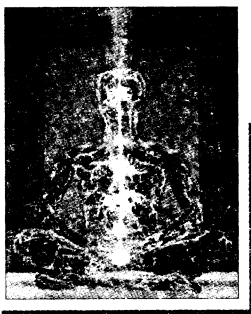
उस ध्यान का स्वरूप शून्य जैसा हो जाए तब वही समाधि कहलाता है ।

काया मुरली बाँस की, भीतर है आकाश ।

उतरें अन्तर्-शून्य में, थिरके उर में रास ॥

हमारी देह तो बाँस की मुरली के समान है लेकिन इसके भीतर एक शून्य, एक आकाश, एक परमात्मा छिपा हुआ है, आत्मतत्त्व इसमें विराजमान है । जब हम इस शून्य के भीतर कदम बढ़ाने में सफल हो जाते हैं, तब उसमें रास रचता है अर्थात् विभिन्न प्रकार की रिद्धियाँ, सिद्धियाँ, निधियाँ, अपने-आप अनेकानेक आलोक, चमत्कार, अन्य-अन्य विशिष्ट संभावनाएँ हमारे भीतर साकार होने लगती हैं । हम सभी समाधि की ओर बढ़ें, प्रभु प्रीति प्रगाढ़ बने, इसी शुभ मंगल भावना के साथ -

नमस्कार ।



रोगमुक्ति के लिए कौन-सा करें ध्यान

मेरे प्रिय आत्मन् !

मनुष्य का जीवन मिट्टी के दीये जैसा है। यह शरीर मिट्टी की तरह है और चेतना की ज्योति लौ की तरह है। मिट्टी तो सर्वसुलभ है लेकिन मूल्य तो मिट्टी में से प्रकट होने वाली ज्योति का है। मिट्टी अगर मिट्टी जैसी रहे तो किसी को पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नहीं है लेकिन जो मिट्टी चिराग बनकर ज्योतिर्मय तत्त्व की प्राप्ति चाहती है तो हमें मिट्टी से आगे बढ़कर स्वयं को प्रकाश तक की यात्रा के लिए तैयार करना होगा। हमें देखना होगा कि दीये ने ऐसा क्या किया कि वह दीपावली का प्रतीक बन गया। माटी कुम्हार की शरण में जाती है। कुम्हार उसे पानी से गीला करता है, पाँवों से रौंदता है अर्थात् मिट्टी ने अपने अस्तित्व को, अपने अहंभाव को यह कहते हुए मिटा दिया कि हे कुम्हार, मेरे जीवन के गुरु! तुम जैसा मेरे जीवन का निर्माण करना चाहो, कर दो, मैं खुद को मिटाने के लिए तैयार हूँ। कुम्हार उसे चाक पर चढ़ाता है, भट्टी में पकाता है। तब कहीं दीये का निर्माण होता है। इसके आगे दीप का नवसंस्कार होता है, किसी के द्वारा प्रेम का तेल भरा जाता है, ज्ञान की बाती लगाई जाती है, अन्तर् ध्यान की, अन्तर्दृष्टि की लौ उसमें सुलगाई

जाती है, तब कहीं एक ज्योतिर्मय दीप का निर्माण होता है।

हम सभी एक जैसी मिट्टी से निर्मित हैं। मिट्टी के तल पर कोई अलग नहीं है। सभी माँ की कोख से उत्पन्न हुए हैं, सबने उसके आँचल का दूध पिया है। अन्न, पानी और वही भोजन करके हम सभी बड़े हुए हैं। देखा जाए तो मिट्टी के तल पर कोई फ़र्क़ नहीं है, सारा फ़र्क़ ज्योति के तल पर होता है। मिट्टी के तल पर महावीर और हम में कोई फ़र्क़ नहीं है। फिर भी हम जानते हैं कि उनमें और हम में फ़र्क़ है। मिट्टी के तल पर नहीं वरन् ज्योति के तल पर, दीये के तल पर, प्रकाश के तल पर। कौन व्यक्ति अपने जीवन में संसार में रह गया, कौन अध्यात्म के तल पर पहुँचा या कैवल्य और ऋतम्भरा प्रज्ञा के तल पर पहुँच पाया यह उसकी आध्यात्मिक ऊँचाई के आधार पर ही निर्णय होता है। अगर हम भी स्वयं को मिट्टी तक ही केन्द्रित करेंगे तो वही खाना-पीना, मनोरंजन भोग-उपभोग अर्थात् संसार ही दिखाई देगा और यदि हम ज्योति को, चेतना को, अपनी आत्मा, अपने श्री प्रभु को महत्त्व या प्रमुखता देते हैं तो निश्चय ही ऊपर उठ जाएँगे। पतंजलि के योगसूत्र हमें उस चिन्मय ज्योति की ओर बढ़ाना चाहते हैं ताकि व्यक्ति मिट्टी से ऊपर उठकर अपनी चैतन्य-शक्ति का मालिक बने, अपने चेतना के लोक में विहार करने में समर्थ हो सके।

अभी तक हम प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि जैसे तत्त्वों को समझकर यह जान चुके हैं कि हमारी इन्द्रियाँ जो बाहर की ओर गतिशील हैं, बाहर से जुड़ी हुई हैं, उनका स्वयं के चित्त की ओर लौटकर आना, साधना-मार्ग का पहला चरण है। स्वयं के घट के भीतर केन्द्रित करना साधना का दूसरा चरण है, लेकिन उस केन्द्रीकरण में किसी भी तरह का व्यवधान आना अर्थात् अपने लक्ष्य और ध्येय के प्रति एकतान्त्रिक बनकर रहना यह साधना का तीसरा चरण है, लेकिन ध्यान करते हुए साधक की वह स्थिति बन जाए कि ध्यान शून्य जैसा हो जाए और वह अपने ध्येय में इस तरह अन्तर्लीन हो जाता है कि ध्याता, ध्यान और ध्येय तीनों के भेद मिट जाते हैं और वह अपनी अन्तरात्मा में, अपनी चेतना में अन्तर्लीन हो जाता है चह चौथी स्थिति समाधि की है।

एक बात और ध्यान में ले लेना चाहिए कि हर वह व्यक्ति जो ध्यान में रुचि रखता है वह इन चरणों को उपलब्ध कर सकता है। यह न समझें कि इसको आप हासिल नहीं कर सकते। बस, ज़रूरत है तो सिर्फ़ इच्छाशक्ति की। कोई भी कुछ जन्म से सीखकर नहीं आता। धीरे-धीरे अभ्यास से सब कुछ पाया जाता है। स्कूल जाने से ही पढ़ना-लिखना आता है और क्रमशः उन्नति करते हुए ज्ञान के विराट

संसार को उपलब्ध किया जाता है, तभी कोई एम.ए., इंजीनियरिंग या डॉक्टरी कर पाता है। हर चीज़ के पीछे साधना चाहिए। हर महिला जानती है कि रसोईघर में प्रवेश करने मात्र से पाक-शास्त्र में प्रवीण नहीं हुआ जाता। किसी में भी प्रवीणता प्राप्त करने के लिए निरंतर साधना करनी पड़ती है। जब निरन्तरता बनी रहती है तो प्रत्येक तत्त्व अपना परिणाम अवश्य देता है। माना कि ध्यान करते हैं तब बार-बार चित्त में चंचलता आती है, चित्त भटकने लगता है लेकिन इस कारण ध्यान करना छोड़ा तो नहीं जा सकता। उम्रदराज़ व्यक्ति अगर कहे कि वह चित्त की चंचलता, अस्थिरता के कारण ही ध्यान नहीं करता तो यह शिकायत ही रह जाएगी। जो अपने चित्त को एकाग्र हो चुका है, वह बता सकता है कि उसके चित्त में शांति है, सचेतना, एकाग्रता और जागरूकता है। भले ही उसे अभी आत्मानुभूति नहीं हुई हो पर वह यह तो अवश्य कह सकता है कि उसे शांति, एकाग्रता का अहसास है। उसका चित्त बार-बार खंडित नहीं होता।

किसी किसान के मन में पहाड़ पर चढ़ने की इच्छा जाग्रत हुई। उसे पर्वत बहुत आकर्षित करते थे। उसे लगता था कि पहाड़ की चोटी पर से प्रकृति का नज़ारा बहुत सुंदर दिखाई देता है। एक बार ऐसा मौका भी आ गया। वह पहाड़ की तलहटी पर था और चोटी का आकर्षण अधिक था, वहाँ मंदिर भी था। एक दिन अल सुबह अंधेरे में उसने लालटेन ली और घर से चल पड़ा पहाड़ की तलहटी की ओर चलता गया, कुछ दूर जाकर नज़र ऊपर उठाई तो वहाँ पहाड़ तो नज़र ही नहीं आया दिखाई दिया तो घुप्प अंधकार। वह घबराया कि अब क्या करे, कैसे चले, कहाँ पहुँच पाएगा। वह इसी ऊहापोह में था कि उसे दिखाई दिया कि एक बुजुर्ग व्यक्ति उससे भी छोटा दीया लिए चल रहा है। उसके पास आकर उसने पूछा – क्यों भाई, क्या बात है, ऐसे क्यों बैठे हुए हो? उसने कहा – पहाड़ बहुत बड़ा है, अंधेरा घना है और मेरा दीया बहुत छोटा है। बुजुर्ग ने कहा – दीया भले ही छोटा हो लेकिन याद रखो जिसके पास छोटा-सा दीया भी है उसके अगले दस कदम सदा रोशन रहते हैं। जैसे ही तुम पहला कदम उठाओगे तुम्हारे अगले दस कदम फिर रोशन हो जाएँगे। मेरे पास तो तुमसे भी छोटा दीया है फिर भी इस पहाड़ पर चढ़ने का आनन्द कई बार ले चुका हूँ। तुम अंधेरे को और दीये को मत देखो, बस कदम बढ़ाने शुरू कर दो, तुम्हारे कदम बढ़ेंगे तो हर कदम रोशन होता जाएगा।

यह जीवन का, ज्ञान का दीया भले ही हमें छोटा-सा लगता हो, पर छोटे से दीये से भी हम पार लग सकते हैं। पहले दीया हाथ में तो आ जाए। ये योगसूत्र हमारे हाथ में छोटे-छोटे दीये थमा रहे हैं। ये दीप कोई छोटे न समझना, जीवन को

प्रकाशित करने के लिए, ध्यान, साधना के मार्ग को आलोकित करने के लिए ये दीपक बहुत उपयोगी हैं। लघुता में प्रभुता बसै – बीज छोटा-सा ही होता है, लेकिन पूरे वृक्ष की संभावनाओं को समाहित किए रहता है। योगसूत्र भले ही छोटे-छोटे लगते हों, पर हमारी ध्यान-साधना में बहुत बड़ी क्रांति कर सकते हैं। हम योग-साधना साध सकते हैं, अपने जीवन के तनावों को दूर कर सकते हैं, जीवन के अज्ञान, अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष, मृत्यु के भय पर विजय प्राप्त कर सकते हैं, चित्त के क्लेश-संकलेशों को दूर कर सकते हैं, दुःख दौर्मनस्य, वैर-वैमनस्य, मोह-मृगतृष्णाओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। अगर हम योग को अपने जीवन का हिस्सा बना लेते हैं, हर समय हमारी आँखों में योग से प्यार करने की रोशनी रहे तो जीवन की सार्थकता पा सकते हैं।

हमारी इन्द्रियों की प्रवृत्तियाँ बाहर की ओर जुड़ी हुई हैं। जिह्वा भले ही दाँतों के बीच रहती है, हमेशा दूसरे तत्त्वों का स्वाद लेती है, लार मुँह में सतत रहती है, पर जिह्वा उसका स्वाद नहीं जानती। हमारे शरीर के भीतर सुगंध है या दुर्गंध, नाक ग्रहण नहीं करती। हमारे भीतर कैसी मांसपेशियाँ हैं, आँखें उन्हें नहीं देखती। हमारे दिल में जो धड़कन चलती है कान उसे नहीं सुनते। हमारा शरीर पूरा एक-दूसरे से सटा हुआ है, फिर भी हम उसके स्पर्श का अहसास नहीं करते क्योंकि इन्द्रियों का संबंध ही बाहर से है। हर तत्त्व की अपनी ग्रहण-शक्ति है, इसलिए जब हम ध्यान करते हैं तो यही कहते हैं कि अपनी इन्द्रियों को अपने में लौटा लाओ अर्थात् इनका संबंध जो बाहर से है उसे भीतर जोड़ लो। इसीलिए ध्यान करते समय हम अपनी पलकों को झुका लेते हैं, क्योंकि जिन पर सहज में अंकुश लगा सकते हैं उन पर तो अंकुश लगा सकते हैं। बाहर की आँखें बंद करके भीतर की आँख खोलने के प्रति जागरूक होते हैं। धीरे-धीरे पाँचों इन्द्रियों को अपने में लौटाते हैं।

एक बड़ा प्रश्न है कि जब हम ध्यान करने बैठें तो क्या करें? हमारा चित्त कैसे वश में हो जाएगा। जब आप ध्यान करें तो ब्रह्म मुहूर्त अर्थात् सुबह-सुबह चार-पाँच बजे करें तब बाहर की शांति में आपको प्राणायाम करने की ज़रूरत नहीं होगी और न ही प्रत्याहार को समझने की आवश्यकता होगी। अल सुबह बाहर के वातावरण के साथ स्वयं का शरीर भी शांत रहता है, लेकिन जैसे ही भोर होती है और चिड़ियाँ चहचहाती हैं, पुष्प खिलते हैं तब हमारे शरीर के प्रत्येक अंग, प्रत्येक कोशिका भी ऊर्जावान बन जाती है और स्फुरणा से भर जाती है लेकिन जब आप सूर्योदय के साथ ध्यान करते हैं तो प्राणायाम भी करिये, चाहे तो ध्यान से पहले भी प्राणायाम कर

सकते हैं।

प्राणायाम बहुत उपयोगी है, प्राणायाम करने से, पतंजलि की भाषा में – हमारी आत्मा पर जो प्रकाश के आवरण आए हुए हैं, जिसके कारण हमें अपना प्रकाश दिखाई नहीं देता, उन आवरणों का क्षय होता है। दूसरे, प्राणायाम करने से हमारे भीतर ध्यान की पात्रता बनती है, ध्यान करने की क्षमता निर्मित हो जाती है। प्राणायाम से साँस सधती है, साँसों के सधने से चित्त स्वयं के नियंत्रण में कर लिया। ध्यान साँसों और चित्त को अपने नियंत्रण में करने की कला है। जो शरीर विकारों से भरा है, बीमारियों का घर है उसे स्वस्थ करना पड़ता है। बीमारी अपने आप आ सकती है, पर स्वास्थ्य लाना पड़ता है। बीमारी के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता, पर स्वस्थ रहने के लिए प्रयत्न करना होता है। मरने के लिए कुछ नहीं करना पड़ता, पर जीने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। जीवन के लिए भोजन चाहिए, पर भोजन से अधिक हवा ज़रूरी है। पानी भी ज़रूरी है, जीने के लिए आयु की ज़रूरत है। जीने के लिए बहुत सारी चीज़ें चाहिए, पर मरने के लिए कुछ नहीं चाहिए।

जिनका मन ध्यान में नहीं लगता वे एक प्रयोग करें। अपने पूरे शरीर को तीन मिनट तक कंपन दें। अगर आपको योगासन नहीं आते तो अधिक फ़िज़ न करें। बस अपने शरीर को सिर से पाँव तक इस तरह से कम्पित कर डालें कि आपकी सोई हुई चेतना सक्रिय हो जाए और आसन का सहज में परिणाम मिल जाए। ध्यान करने के लिए 108 दफा 'ॐ' के सहज, शांत, मंद उच्चारण कीजिए। ऐसे ही जैसे कान्हा मुरली बजाते थे। उतने ही मीठे सुरीले अंदाज़ में ॐकार का उद्घोष कीजिए। मानो कि हम ॐ के रूप में मुरली बजा रहे हैं। लगता तो है कि हम 'ॐ' बोल रहे हैं, पर हकीकत में हम साँसों की मुरली बजा रहे हैं। बैठकर दस मिनट तक ॐ के शांत मीठे उद्घोष कर रहे हैं। यह घोष स्वयं को अन्तर्लीन करने के लिए है। इस दौरान हम ध्वनि पर या कंठ-प्रदेश पर अपनी एकाग्रता साध सकते हैं, जहाँ से ध्वनि आ रही है वहाँ अपनी जागरूकता केन्द्रित कर सकते हैं। अब सवाल यह है कि दस मिनट की गणना कैसे हो तो हाथ में कोई माला ले लो, कमर, गर्दन सीधी कर लो, शरीर को अप्रमत्त दशा में ले आओ और एक-एक मणका आहिस्ता-आहिस्ता लयबद्ध घोष करते हुए खिसकाते जाओ। अपनी बाँसुरी का आनन्द लो। एक मिनट में अगर दस-ग्यारह उद्घोष करते हैं तो एक सौ आठ मणियों में अपने आप दस मिनट हो जाएँगे।

ये दस मिनट बहुत फ़ायदेकारक होंगे। पहला तो यही कि 'ॐ' के रूप में

बीजमंत्र का प्रयोग किया गया। उस ध्वनि ने हमारे मस्तिष्क की कोशिकाओं को सकारात्मक लाभ प्रदान किया। हम ध्वनि में लीन हुए। मंत्रजाप की जो विधि है – बैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति, परा उनमें से पहला चरण बैखरी अर्थात् मंत्र का उच्चारण करना, वह सधा। माना कि ध्यान में मन नहीं लगा तो कम-से-कम दस मिनट मंत्र-जाप तो हुआ। ‘ॐ’ उद्घोष नहीं, आह्वान है। ॐ का उच्चारण करते हुए परमात्मा को आह्वान दिया है, निमंत्रण, न्यौता दिया है। हे प्रभु! हम तुम्हें आह्वान देने के लिए पूरी तरह तत्पर हो चुके हैं। आत्म-समर्पण के भाव से ध्यान धर रहे हैं और तुम्हें अपने भीतर निमंत्रण दे रहे हैं कि पधारो प्रभु। जितनी बार ‘ॐ’ उतनी बार आह्वान।

‘महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे’। हे प्रभु, आप पधारो और हमारी आँखों के पथ से हमारे दिल में प्रवेश करो। 108 बार निमंत्रण देना। ओह, यह तो बहुत है प्रभु, अब आ ही जाओ। हाँ, 108 बार घोष करने से हमारे अंदर तन्मयता आती है, एकाग्रता घटती है, बैठने की क्षमता बढ़ती है। जब तन्मयता आ जाए तब उद्घोष बंद करते हैं और अपनी जागरूकता को श्वास-धारा पर केन्द्रित करते हैं। अब सचेतन प्राणायाम करते हुए ‘ॐ’ का स्मरण करते हैं। सचेतन प्राणायाम का पहला तरीका है कि ‘ॐ’ के स्मरण के साथ लम्बी साँस लीजिए और ‘ॐ’ की धारा के साथ ही श्वास छोड़िए- सहज और लयबद्ध। साँस गहरी, लयबद्ध और सचेतन होनी चाहिए। प्राणायाम करते हुए जब हम इन तीन बातों का ध्यान रखते हैं तो यह प्राणायाम धारणा और ध्यान में सहायक हो जाता है। आती हुई साँस के साथ ‘ॐ’ का स्मरण करें और जाती हुई साँस को ऐसे ही जाने दें। आती हुई साँस जीवन का और जाती हुई साँस मृत्यु का प्रतीक है। इसलिए जीवन को अपनाएँ। यदि आती और जाती दोनों साँसों का प्रयोग करना है तो ‘सोऽहं’ को अपनाएँ। आने वाली श्वास के साथ ‘सो’, जाने वाली श्वास के साथ ‘हं’। ‘सोऽहं’ से लयलीनता तो बन जाएगी, पर ‘ॐ’ जैसे बीजमंत्र से वंचित रह जाएँगे। वह ‘ॐ’ जिसकी महिमा से सारे वेद, पुराण, स्मृतियाँ, आगम भरे हुए हैं उस बीजमंत्र का स्मरण करना अत्यंत लाभकारी है। हम ध्यान और समाधि की अवस्था तक भले ही न पहुँच पाएँ, पर ॐकार के पुनः-पुनः स्मरण, पुनः-पुनः चिंतन से हमारी स्मृति प्रखर होगी, धारदार बनेगी।

ध्यान से पहले प्राणायाम का दूसरा प्रयोग है – तीन चरण बनाएँ – पहला चरण – बीस साँस का, दूसरा चरण – तीस साँस का और तीसरा चरण – चालीस साँस का। पहले चरण में दीर्घ श्वास, दूसरे चरण में मध्यम श्वास, तीसरे चरण में

लघु श्वास। दीर्घ, मध्यम और लघु – जैसे प्रकृति में लहर चलती है कभी तेज, कभी मध्यम, कभी धीमी हवा, वैसे ही हम लोग प्रकृति से अपनी लयबद्धता को जोड़ते हुए अपने प्राणायाम को भी लयबद्ध बनाते हैं। इसके हर चरण में भी ॐकार को जोड़े रखिए।

प्राणायाम दो तरह के होते हैं – सबीज प्राणायाम और निर्बीज प्राणायाम। निर्बीज प्राणायाम साधियेगा, पहले सबीज प्राणायाम; अर्थात् ॐकार के स्मरण के साथ प्राणायाम करना सरल रहेगा। हाँ, तो तीन प्रकार से श्वास लेना है दीर्घ, मध्यम और लघु। आपको प्रश्न उठ सकता है कि बीच में मध्यम श्वास क्यों? वह इसलिए कि दीर्घ श्वास के पश्चात् आपको Relaxation की ज़रूरत होगी। गहरी दीर्घ श्वास के बाद जब मध्यम श्वास लेंगे तो यह अपने आप रिलेक्सेशन का काम कर देगी। दीर्घ, मध्यम, लघु श्वास का एक चक्र हुआ और कम-से-कम तीन चक्र अवश्य कीजिए। तीन चक्रों में आपको दस मिनट लग जाएँगे। आप चाहें तो इन चक्रों को बढ़ा भी सकते हैं और नौ चक्रों तक इस प्राणायाम को बढ़ा सकें तो यह प्राणायाम चित्त की एकाग्रता के लिए, भीतर के आवरणों को क्षय करने के लिए, ध्यान की पात्रता निर्मित करने में सहयोगी होकर चमत्कार कर सकते हैं। अगर आप नौ आवृत्तियाँ करते हैं तो तीस मिनट तक प्राणायाम होगा। इस प्राणायाम से प्रत्याहार भी सधेगा, इन्द्रियों को अपने-आप में ले चुके होंगे। जब प्राणायाम हो जाए तो तन-मन को ढीला छोड़ दें और प्राणायाम से उत्पन्न ऊर्जा का देह में निरीक्षण करें। तीन-चार मिनट बाद अपनी इन्द्रियों को पूर्ण सचेतनता के साथ अपने मध्य मस्तिष्क की ओर केन्द्रित करने का भाव लाते हैं। महसूस करते हैं, अनुभव करते हैं और देखते हैं। जब बाहर से भीतर आ गए तब अपने अन्तर्घट में उतरेंगे, तब धारणा होगी। एक ध्येय को, लक्ष्य को अपने अन्तर्मन में लेकर अपना ध्यान वहाँ केन्द्रित करेंगे। हो सकता है जहाँ हम ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं वहाँ किसी वृत्ति का उदय हो गया और हमारा चित्त, हमारा ध्यान खंडित हो गया, एकाग्रता भंग हो गई। ऐसा होने पर चित्त को पुनः पुनः अन्तर्मन में लाएँ, धीरे-धीरे हमारी धारणा पकने लगेगी। यह काम एक दिन में नहीं होगा। धीरे-धीरे अभ्यास से संभव होगा। हमारा चित्त उस विषय पर, ध्येय पर एकाग्र होने लग जाएगा। ज्यों-ज्यों भीतर का चित्त, भीतर की एकाग्रता सधती जाएगी, भीतर का त्राटक सधता जाएगा त्यों-त्यों ध्यान होगा। ध्यान की अनुभूति हमारे भीतर घटित होगी। ध्यान की निर्मल स्थिति बनेगी। संभव है ध्यान इतना गहरा हो जाए कि जिस बिंदु को लेकर हम ध्यान कर रहे हैं वह सविकल्प समाधि का निमित्त बन जाए।

सविकल्प समाधि वह है जिसमें एक बार तो ध्यान शून्य हो गया, लेकिन फिर से किसी वृत्ति का उदय हो गया। जिस खास समय-सीमा तक समाधि की स्थिति रहती है, सीमित समय तक शून्य जैसी अवस्था बनती है। वह सविकल्प समाधि कहलाती है। हम अन्तर्लीन तो हो जाते हैं, पर चित्त अपनी प्रकृति धारण कर लेता है और किसी वृत्ति का उदय हो जाता है। निर्विकल्प समाधि वह जिसमें हम ध्यान कर रहे हैं या नहीं कर रहे हैं, पर चित्त में शांति आ जाती है, चित्त शून्य जैसा हो जाता है। इसलिए महावीर ने कहा था – अगर कोई साधक ध्यान-अवस्था को उपलब्ध हो जाए तो वह गाँव में रहे या नगर में, अरण्य में रहे या गुफाओं में, सघन आबादी में रहे या निर्जन में उसके लिए स्थान का कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। वह सारी परिस्थितियों में एक जैसा रहता है। वह दैनिक कार्य करते हुए भी तपस्वी होता है।

अब जबकि हमने विभिन्न प्रकार से प्रत्याहार की स्थिति परिपक्व बना ली है तो प्रश्न उठता है कि धारणा कहाँ करें, किस चीज़ की करें, कैसे करें, क्यों करें, उसका क्या परिणाम हो सकता है। आज हम उस ध्येय को समझने की कोशिश करेंगे और अपनी इन्द्रियाँ, चित्त व मन वहाँ पर केन्द्रित करने का प्रयास करेंगे। योग-दर्शन के तीन महत्वपूर्ण सूत्र हैं –

1. नाभि चक्र काय व्यूह ज्ञान- नाभि चक्र में चित्त को स्थिर करने से शरीर की स्थिति का ज्ञान होता है।

2. हृदये चित्संविद् – हृदय में स्थिर होने से चेतना का ज्ञान होता है।

3. मूर्ध्ने ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम् – भृकुटि मध्य अर्थात् आज्ञाचक्र में अथवा कपाल स्थित ब्रह्मरंध्र में ध्यान करने से सिद्धों का दर्शन होता है।

प्रत्याहार के बाद हम अपने चित्त को कहाँ केन्द्रित करें और केन्द्रित कर लिया तो उसका परिणाम क्या निकलेगा। तो महर्षि पतंजलि कहते हैं – जिस साधक ने प्राणायाम करके अपनी बहिर्गामी इन्द्रियों की धाराओं को अन्तर्मुखी अर्थात् चित्त की ओर केन्द्रित कर लिया है तब वह इस चित्त को, मानसिक शक्ति को, सचेतनता को नाभि-प्रदेश पर केन्द्रित करे। सर्वप्रथम नाभि को बाहर से अनुभव करे, हमारी मानसिक चेतना में इतनी शक्ति है कि वह शीघ्र ही भीतर प्रवेश कर जाती है। नाभि की कल्पना करते हैं, उसे महसूस करते हैं, उसका अनुभव करते हैं, उसे देखने लगते हैं तब नाभि की प्रत्यक्ष और ठोस अनुभूति होने लगती है और हम भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं। सब कुछ धीरे-धीरे होगा, कोई जल्दबाजी नहीं। ध्यान की पहली

अनिवार्यता है धीरज, सब्र रखना। धीरे-धीरे यह सधती है, गहराई आती है। ज्यों-ज्यों हमारी धारणा मजबूत, परिपक्व होती जाएगी त्यों-त्यों भीतर की नाड़ियाँ उनमें बहने वाली प्राण-ऊर्जा सक्रिय होती जाएगी।

नाभि जीवन का आधार है। माँ के गर्भ में हमारा पोषण नाभि के द्वारा ही होता है। जन्म के बाद माँ से अलग करने के लिए इस नाल को ही काटा जाता है। हमारे शरीर का सम्पूर्ण तंत्र नाभि से ही जुड़ा रहता है। नीचे मूलाधार की ओर स्थित कुंडलिनी का सम्बंध भी नाभि से नियोजित है। यहाँ पर ध्यान करने से पूरे शरीर का नाड़ी-तंत्र सक्रिय होता है, स्वस्थ होता है। नाभि पर ध्यान करने से अपने शरीर की संपूर्ण स्थिति का ज्ञान होता है।

योग-विज्ञान पर आचार्य महाप्रज्ञ ने बहुत काम किया है और उन्होंने बताया कि नाभि स्वास्थ्य चेतना का केन्द्र है। हठयोगी इसे मणिपूर चक्र कहते हैं लेकिन मैं तो इसे ध्यान करने का पहला बिंदु मानता हूँ कि जिसे भी ध्यान करना है वह पहले स्वयं को नाभिकेन्द्र पर एकाग्र करे। अपनी धारणा को वहाँ एकाग्र करे। जितनी भी ध्यान-पद्धतियाँ प्रचलित हैं उनके दो ही आधार हैं – एक तो इस देह में जितने भी अंग हैं या वेदना-संवेदनाएँ हैं, उन पर जागरूकता सधे या दूसरे रूप में षट्चक्रों पर ध्यान करें।

षट्चक्रों में पहला है कुण्डलिनी या मूलाधार। व्यक्तिगत रूप से मैं कुण्डलिनी पर ध्यान करने की सलाह नहीं दूँगा क्योंकि उसके करीब ही वह स्थान है जिसका संबंध मनुष्य की वासना, कामासक्ति से जुड़ा रहता है। यहाँ पर ध्यान करने से जो ऊर्जा का जागरण होगा अगर आप उसे ऊपर न चढ़ा सके या उस ऊर्जा का ऊर्ध्वारोहण न हो पाया तो वह ऊर्जा कामेन्द्रिय की ओर बहेगी। तब योग का परिणाम भोग हो जाएगा जो घातक है। यह ऊर्जा का पतन है। इसलिए मेरी सलाह है कि नाभि प्रदेश पर ध्यान करें। अन्य चक्र हैं – स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञाचक्र।

मूलाधार या कुण्डलिनी का स्थान है मल-मूत्र द्वारों के बीच में नीचे से एक डेढ़ इंच ऊपर। पेड़ के भाग के बराबर और पीछे मेरुदण्ड तक जो नाड़ी जाल है उसके भीतर की ऊर्जा स्वाधिष्ठान चक्र कहलाती है। नाभि से पीछे मेरुदण्ड तक जो घेरा है उसके भीतर रहने वाली चैतन्य-ऊर्जा मणिपूर-चक्र है। अनाहत-चक्र – हमारी पसलियों के बीच छाती का मध्य भाग अनाहत चक्र है। भारतीय योगियों ने इसे हृदय-कमल कहा है। यह वह हृदय नहीं है जो विज्ञान का हार्ट है। यह छाती के

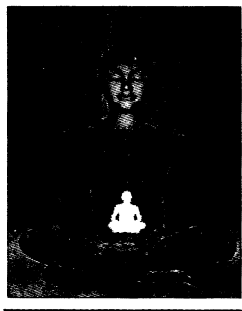
मध्य से मेरुदण्ड तक जो नाड़ी-तंत्र है और इसके भीतर की ऊर्जा का घनत्व अनाहत चक्र कहलाता है। इन चक्रों के भीतर की ऊर्जा एक-एक अंग को सक्रिय करती है। ये शरीर को संचालित करने वाली ऊर्जा की धाराएँ हैं। विशुद्धि चक्र – हमारा कंठ-कूप जो आगे से पीछे मेरुदण्ड तक है वहाँ विशुद्धि चक्र अवस्थित है। हमारे मेरुदण्ड के बीच में जो गैप है वहाँ है सुषम्ना नाड़ी। उसके दाहिनी ओर पिंगला और बायीं ओर इडा नाड़ी अवस्थित हैं। इन्हें सूर्य-चंद्र नाड़ियाँ भी कहते हैं। हमारे सारे चक्र मेरुदण्ड से जुड़े हैं। पीछे मूल है और आगे उसका विस्तार है। हम षट्चक्रों पर सामने से ध्यान करते हैं क्योंकि हमारी इन्द्रियाँ सामने की ओर जल्दी केन्द्रित हो जाती हैं।

नाभि पर ध्यान करने से पूरे शरीर में ऊर्जा का संचार होता है। पूरे शरीर तक ध्यान का प्रभाव पहुँचता है। मेरा अपना अनुभव है कि ध्यान की ऊर्जा शरीर को स्वस्थ और शक्तिशाली बनाती है। मेरे स्पाइनल कॉर्ड में कुछ तकलीफ है जिसके कारण बायें पैर में कमजोरी रहती है। मुझे ज़मीन पर बैठने के लिए मना किया गया है, पर मैं ज़मीन पर आराम से बैठता हूँ, ध्यान भी जितनी देर चाहता हूँ, करता हूँ, बिना सहारे के बैठता-उठता हूँ। केवल इसलिए कि ध्यान पूर्ण सघनता से नाभि और अन्य चक्रों पर करता हूँ। मैं तो कहूँगा कि आप इधर-उधर ध्यान ले ही न जाएँ। सात-सात दिन का प्रयोग करें कि सात दिनों तक लगातार केवल नाभि-प्रदेश पर ध्यान करें। अपनी सम्पूर्ण मानसिक शक्ति, मानसिक चेतना को नाभि पर केन्द्रित कर दें। अगले सात दिन अनाहत चक्र हृदय कमल पर स्थित हो जाएँ। अगले सात दिनों तक भू-मध्य अर्थात् आज्ञाचक्र पर केन्द्रित कर दें। बीस-पच्चीस मिनट, आधा घंटा-चालीस मिनट, जब तक चाहें तब तक। चित्त इधर-उधर जाए तो उसे पुनः अपने स्थान पर लौटा लाएँ। जितनी देर तक हमारी धारणा, मानसिक एकाग्रता सधे लगातार एक ही बिंदु बनाए रखें। मानसिक चेतना को वहाँ पका रहे हैं, अपनी सजगता को, प्राण-चेतना को वहाँ रिफ्लेक्ट कर रहे हैं। ध्यान रखें प्राणायाम करने के बाद एक बिंदु पर ध्यान करने से ऊर्जा अधिक सघन और प्रगाढ़ हो गई है कि हम संभाल नहीं पा रहे हैं तो दूसरे बिंदु पर चले जाना चाहिए। जैसे ही हम हृदय या नाभि पर जाएँगे दिमाग का तनाव-स्ट्रेस सब समाप्त हो जाएगा। नाभि अर्थात् पानी का कुँआ, बस नीचे उतर गए। जो डिप्रेशन के शिकार हैं या अधिक चिंता से घिरे हैं, क्रोधी प्रकृति के, भोगी लोग, अपने हृदय और नाभि प्रदेश पर ध्यान करें। ऐसा करने से काया की स्थिति स्वस्थ व निर्मल होगी। हृदय पर ध्यान करने से व्यक्ति अपनी मूल चेतना से जुड़ेगा और उसका देहभाव कम होगा। हम काया पर नहीं इसे धारण

करने वाले कायनात पर ध्यान दे रहे हैं। स्थूल पर नहीं सूक्ष्म पर स्वयं को जगाने का, लगाने का, पकाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

पहले तो स्थूल ही बोध में आएगा, महसूस और अनुभव होगा, दिखाई देगा पर ज्यों-ज्यों धारणा पकेगी, ध्यान शून्य होता जाएगा, त्यों-त्यों ध्यान में रही हुई प्राण-चेतना अपने-आप हमारे निकट होगी। नाभि-केन्द्र पर ध्यान करने से हमारे भीतर खास परिपक्वता आएगी। भीतर विशिष्ट गहराई आएगी। तात्कालिक उग्र प्रतिक्रियाएँ नहीं होंगी। हमारी शारीरिक क्षमता भी बढ़ेगी और हमारी दिमागी, आध्यात्मिक पाचन क्षमता भी नाभि पर ध्यान करने से बढ़ेगी। शारीरिक रूप से जो परिणाम योगासन या प्राणायाम देंगे वैसे ही परिणाम नाभि प्रदेश पर बाहर से भीतर या भीतर से बाहर ध्यान करने पर प्राप्त हो सकते हैं। तब यह माटी, माटी नहीं रहेगी। वहाँ से एक ज्योति उभरने लगेगी, प्रकट होने लगेगी।

आप सब भीतर के जाग्रत दीपक बन जाएँ, इतना ही अनुरोध है।



कैसे करें हृदय की गुफा में प्रवेश

मेरे प्रिय आत्मन्!

पुरानी कहानी है – हजारों वर्ष पूर्व परमात्मा का मंदिर गहन सागर के बीच डूब गया था। अनेक बार ऐसे अवसर आए कि लोगों को वह मंदिर तो दिखाई नहीं दिया, पर घंटियों के सुर लोगों को सुनाई दिए। जब-जब घंटियाँ बजतीं लोग उस मंदिर के दर्शन करने को उत्सुक होते लेकिन जैसे ही वे सागर के किनारे पहुँचते घंटियों का स्वर आना बंद हो जाता। युग बीत गए, लोगों को परमात्मा के मंदिर की वे घंटियाँ अक्सर सुनाई दिया करतीं। एक बार उन घंटियों का स्वर फिर उठा और हम भी उस आवाज़ को सुनकर निकल पड़े लेकिन जैसे ही सागर के किनारे पहुँचे तो देखा कि अब न तो घंटियों की आवाज़ आ रही है, न ही मंदिर का शिखर दिखाई दे रहा है। सागर के किनारे केवल लहरें, हवाएँ, सांय-सांय की आवाज़ ही चलती नज़र आई।

ये बात तब की है जब हजारों साल पहले ऋषि-मुनियों, महात्माओं, बुद्ध और महावीर जैसे लोगों को इसी तरह मंदिर की घंटियों की आवाज़ सुनाई दी थी जिससे प्रेरित होकर उन्होंने अभिनिष्क्रमण किया और वास्तविक सत्य की खोज के लिए

निकल पड़े। यही स्वर कभी शंकर को, कभी रामानुज, कभी अरविंद, कभी कृष्ण-मूर्ति और ओशो को भी सुनाई दिया। यही स्वर मुझे भी सुनाई दिया और यही स्वर सभी आत्म-जागरूक लोगों को भी सुनाई दिया। मुझे जब इसका स्वप्न आया तो मैं भी उस सागर की ओर निकल पड़ा। वहाँ पहुँचा तो देखा कि न तो वहाँ मंदिर है, न परमात्मा है, न घंटियाँ हैं, न संगीत है लेकिन मैं वापस न लौटा और वहीं रुक गया। उन घंटियों के स्वरों को सुनने के लिए लालायित रहा। कई दिन, महीने और वर्ष बीत गए अचानक एक दिन ऐसा आया कि लेटा हुआ था, भीतर की आँख खुली और फिर वही घंटियों की आवाज़ आने लगी। मैं उठा, स्वप्न खंडित हुआ, आत्म-जागरूकता घटित हुई और देखा न केवल घंटियों की आवाज़ सुनाई दी वरन् शिखर भी उभर आया, धीरे-धीरे भीतर में मंदिर भी साकार हो गया। तब वह दिव्य दीदार हुआ जो कभी मीरा को, चैतन्य महाप्रभु को और तुलसीदास, सूर तथा ऐसे ही किसी भक्त को देखने को मिला और पाया वही आनन्द, वही सौन्दर्य, वही सच्चिदानंद। जब से यह संगीत सुना है तब से आज तक आनन्द ही आनन्द लेता रहा हूँ। बल्कि कहूँगा कि मैं आनन्द ही हो गया हूँ। भीतर के स्रोत खुलने पर पता चला कि सत्-चित् और आनन्द मैं ही हूँ। तब से व्याधि तन में हो सकती है मन में तो फिर भी समाधि रहती है। क्योंकि अब आनन्द मेरा स्वभाव बन गया है।

कोई भी व्यक्ति परमात्मा के मंदिर के संगीत का आनन्द ले सकता है, इस सौन्दर्य का, इस चैतन्य तत्त्व का आनन्द ले सकता है, लेकिन याद रहे यह सागर बाहर नहीं है। यह हमारे हृदय के भीतर व्याप्त है। परमात्मा का मंदिर भी कहीं और नहीं, हमारे अन्तर्घट में व्याप्त है। हमारे हृदय के सागर में उस परमात्मा का मंदिर छिपा हुआ है, डूबा हुआ है। अचानक कभी ढोलक की थाप उठती है, कभी अचानक बाँसुरी के स्वर सुनने को मिलते हैं, तो लगता है कोई हमें बुला रहा है। उस संगीत की ध्वनि को सुनकर हम चल भी पड़ते हैं, एक तरंग तो उठती है लेकिन संगीत टूट जाता है और हम जहाँ होते हैं, वापस वहीं लौट जाते हैं। लेकिन जिसके भीतर उस संगीत को लगातार सुनने की उत्सुकता बनी रहती है वे लोग अन्ततः उस संगीत का आनन्द लेने में सफल हो जाते हैं और जान जाते हैं कि वह संगीत बाहर से नहीं अपितु उनके अपने हृदय के मंदिर से, उनके ही अन्तर्घट से आ रहा था।

हम ले चलें निज को वहाँ, जो शांत सौम्य प्रदेश हो।

अन्तर्-गुहा में लीन हों, शिवरूप ही बस शेष हो॥

हम स्वयं को उस हृदय के सागर में, वहाँ छिपे हुए परमात्मा के मंदिर की

घंटियाँ सुनने के लिए ले चलें। वहाँ सौम्यता है, शांति है, हरी-भरी प्रकृति है, केवल चिड़ियों की चहचहाट है, जहाँ खुशबू भरे फूलों की बस्ती है, पेड़ों की छाया है, सरोवर का मीठा शीतल जल है वहाँ स्वयं को ले चलें। वहाँ चलें जहाँ मन यह न कहे कि भागो, कहाँ फँस गए। वहाँ बैठकर हम भीतर की गुफा में लीन हो जाएँ। वहाँ बैठकर सारी चीजें शून्य हो जाती हैं। वहाँ संसार नहीं होता, वहाँ एक ही चीज शेष होती है - शिवरूप। वहाँ व्यक्ति की चेतना, अन्तर्-आत्मा, उसका प्रिय प्रभु, परमात्म-तत्त्व ही शेष रह जाता है। तब परमात्मा का मंदिर उभरता है और अनूठा, अद्भुत, विलक्षण संगीत, अनूठा सौन्दर्य और अपूर्वकरण की स्थिति घटित होती है। वह स्थिति जिसमें मीरा अपने पैरों में घुँघरू बाँध लेती है और दुनिया ज़हान की परवाह किए बिना थिरकने लगती है और एक दीवानापन अपने साथ लिये फिरती है।

व्यक्ति हृदय की ओर चले। अगर हमें परमात्मा से प्रीत है, उसके दिव्य संगीत का आनन्द लेना है, उसके प्रकाश तक पहुँचना है तो हमें अपने-आप में उतरना होगा। अगर लगता हो कि बाहर के मंदिरों में जाकर हम परमात्मा तक पहुँच जाएँगे तो ऐसा न समझें। उन मंदिरों का निर्माण इंसानों ने किया है, वहाँ प्रवेश कर इंसानों को तो पाया जा सकता है लेकिन परमात्मा को पाने के लिए उस किनारे तक पहुँचना होगा जिसका निर्माण ईश्वर ने किया है। इंसान का निर्माण ईश्वर ने किया, नर का निर्माण नारायण ने किया तो हमें नारायण को पाने के लिए नर के भीतर उतरना होगा। संसार में सच्चा मंदिर तो इंसान के भीतर रहता है। बाहर के मंदिरों में तो विरोधाभास है, उनमें कहीं एकरूपता नहीं है। किसी का शिखर अलग है, तो किसी का गर्भगृह जुदा है, किसी में मूर्तियाँ पृथक् हैं, लेकिन यह तय है कि सारी मूर्तियाँ पत्थर की हैं, उनमें एक भी मूर्ति परमात्मा की नहीं होती। परमात्मा की मूर्ति वहीं मिलेगी जहाँ कोई भेद नहीं है, जहाँ तर्क-वितर्क काम नहीं करते हैं। यह स्थान है प्राणीमात्र के भीतर का घट, हृदय का सागर, हृदय का मंदिर।

दिल में अगर दिलवर दिख जाए तो दुनिया के कण-कण में भगवान है। अन्यथा जिसने अड़सठ तीर्थों की यात्रा कर ली है उनसे पूछो कि उन्हें परमात्मा का कितना सान्निध्य उपलब्ध हो पाया। जो व्यक्ति आठ वर्ष की उम्र से लेकर अस्सी वर्ष की उम्र तक सतत मंदिर जा रहा है उससे पूछो तुम्हें कितनी बार परमात्मा के दिव्य संगीत का आनन्द मिला। आपको मेरी बात नकारात्मक लग सकती है, लेकिन मैं कहना चाहूँगा कि अब एक यात्रा फिर से शुरू करो कि जितने वर्ष हमने बाहर के मंदिरों के लिए लगाए हैं उसका दसवाँ हिस्सा भी अपने हृदय के मंदिर की ओर लगा

लें तो भीतर व्याप्त रहने वाली परमात्ममूलक, निर्माणमूलक, वास्तविक सत्य की, त्रिकाल सत्य की चेतना से साक्षात्कार कर सकते हैं। प्रभु को बाहर भी देखो, पर भीतर झाँककर भी देखो। लोगों का चेहरा ज़रूर देखो, पर अपना चेहरा पहले आइने में देख लो। एक बार स्वयं में चलो, अपने-आप से दोस्ती करो।

योग स्वयं से दोस्ती करने का पैगाम है, आत्म-मित्र होने का रास्ता है। योग हमें जोड़ता है स्वयं से। एक बार स्वयं से भी प्यार करके देखो। दूसरों से किया गया प्यार तो यहीं छूट जाने वाला है, कोई भी साथ नहीं जाने वाला है। माना कि यहाँ हमारे पास अन्न के भंडार हैं, पर हमारे साथ एक चुटकी आटा भी नहीं जाने वाला। यहाँ चीखेंगे, चिल्लाएँगे तो बहुत से सुनने वाले होंगे लेकिन देह को छोड़कर जाएँगे तो हमारी चीख सुनने वाला कोई नहीं होगा। वहाँ तो वह प्रभु ही बचाएगा जिससे हमने प्रीत लगाई है। अस्पतालों में कौन बचाने वाला है, दो-चार गोलियाँ भले ही खा लो, पर तड़पना तो हमें ही पड़ेगा।

हज़ारों वर्षों से ज्ञानीजनों ने यह कहने की कोशिश की कि हमारा सच्चा मंदिर तो हमारे भीतर है लेकिन हम तो हमेशा से सत्य को बाहर ही खोजने के आदी रहे हैं, व्यक्ति अपने भीतर झाँकने की तकलीफ़ नहीं उठाता। आँखें बाहर खुलती हैं, चित्त की गतिविधियाँ बाहर चलती हैं इसलिए अपने प्रभु को भी इसने बाहर देखना शुरू कर दिया। अगर प्रभु है तो भीतर हृदय के मंदिर में है, अन्तर्घट में है। बाहर जो कोलाहल चल रहा है इसे अपने चित्त में, मन में शांत करें तभी अपने हृदय से जुड़ सकते हैं। अपने दिमाग को दिल से जोड़ें तभी अपने प्रभु से जुड़ सकते हैं। अगर दिमाग की चिंताओं में, इसकी ऊहापोह में, मन की आपाधापी में उलझे रहे तो जिंदगी में कभी धूप, कभी छाँव नज़र आएगी तब परमात्मा हमें अंदर नहीं बल्कि कभी पैसे में, कभी दूसरे के प्यार में नज़र आएगा।

जैसे ही हम अंदर प्रवेश करेंगे तो एकदम से मंदिर की घंटियाँ सुनाई नहीं देंगी, वहाँ तो वृत्तियाँ उठती दिखाई देंगी, मन उधेड़बुन में लगा नज़र आएगा, पर अगर हम वहाँ ठहर गए, भीतर में रुक गए, उस सागर के किनारे जम ही गए तो कहा नहीं जा सकता कि अपूर्वकरण की स्थिति कब घट जाए। कब डूबा हुआ मंदिरों का नगर उभर आए और कब उसका संगीत, अनहद नाद, ब्रह्मनाद, उसका दिव्य प्रकाश, उसकी विराट भूमाशक्ति हमारे सामने प्रकट हो जाए, कहा नहीं जा सकता। किनारे पर पहुँचकर जिसने देखा कि वहाँ कोई मंदिर नहीं है केवल वृत्तियों का उतार-चढ़ाव ही चल रहा है और इन लहरों को देखकर अपने गाँव लौट गए, ऐसे हज़ारों

लोग परमात्मा के मंदिरों की ओर जाते हैं पर कसौटी में खरे नहीं उतर पाते। संगीत के आकर्षण में पहुँच तो जाते हैं, पर वहाँ कोई संगीत नहीं मिलता। यह जानकर अपनी दैनिक जिंदगी में, इस बाहरी दुनिया में उलझ जाते हैं, परिणामतः मंदिर पुनः अदृश्य हो जाता है। प्रभु तो बुला रहे हैं, पर वहाँ जाकर थोड़ा-सा भी धैर्य नहीं रख पाते और वापस अपनी मोहमाया की ओर लौट जाते हैं।

योगसूत्र हमें नाभि, हृदय और ललाट-प्रदेश पर केन्द्रित होने की प्रेरणा दे रहा है, लेकिन इन स्थानों पर केन्द्रित होना शरीर पर केन्द्रित होना नहीं है। स्थूल रूप से नाभि शरीर का केन्द्र बिंदु है, हृदय हमारी चेतना का केन्द्र है और ललाट, मस्तिष्क हमारी ज्ञान-चेतना का केन्द्र बिंदु है। लेकिन ये केवल केन्द्र बिंदु नहीं हैं ये तो परमात्मा से मिलने के छिपे हुए अदृश्य द्वार हैं। हम किसी भी दरवाजे का चयन कर पहुँच सकते हैं। जैसे कोई पहाड़ के शिखर पर जाना चाहता है तो इसका कोई तय रास्ता नहीं है, वह किसी भी दिशा से जा सकता है लेकिन यह तय है कि जो एक रास्ता चुनकर निरन्तर बढ़ने का प्रयत्न करता रहेगा, वह अवश्य ही शिखर पर पहुँचेगा। बीच में थकेगा भी, कभी विश्राम भी करेगा, पाँव भी फिसलेंगे, कभी मन टूट भी जाएगा लेकिन जो धैर्यपूर्वक चलना जारी रखेगा, पहुँचेगा अवश्य ही।

स्थूल के भीतर व्याप्त जो सूक्ष्म है, इस देवालय के भीतर जो देव है वह प्रकट होगा, उसका संगीत आएगा और आनंद उभरेगा।

जिसने आँचल में दूध दिया, जिसने फूलों को खुशबू दी,
जो रखवाला है दुनिया का, वह मालिक तेरे अंदर है।
यह धरा कि जिस पर रहते हम, यहाँ ठौर-ठौर पर मंदिर है,
बाहर के मंदिर देख लिए, सच्चा मंदिर तो अंदर है।
पापों से पार उतरने को, सब तीर्थों की यात्रा करते,
जो भवसागर से पार करे वह शांति तीर्थ तो अंदर है।
जिससे तन का हर मैल धुले, वो गंगा बहे हिमालय से,
पर मन का मैल धुले जिससे वह गंगाधर तो अंदर है।
हर पंथ ग्रंथ हर संत हमें जीवन की राहें दिखलाते,
पर जीवन का जो तिमिर हरे, वह धर्म-ज्योति तो अन्दर है।
सुख दुःख है धूप छाँव जैसे, यह 'चंद्र' सभी का दृष्टा है,
जिससे शाश्वत आनंद मिले, वह निजानन्द तो अंदर है।

जो आँचल में दूध भर देता है, फूलों को खुशबू देता है, प्राणीमात्र के भीतर

जीवनी शक्ति संचारित कर देता है, वह तो हमारे भीतर ही व्याप्त रहता है। जैसे दूध में नवनीत छिपा है, लकड़ी में आग छिपी है ऐसे वह हमारे कण-कण में व्याप्त है।

कल हमने चर्चा की कि व्यक्ति नाभि-प्रदेश से अपने ध्यान का प्रारंभ करे। नाभि स्वास्थ्य का, शरीर का, सृजन का, निर्माण का द्वार है। नाभि पर ध्यान धरने से सृजनात्मक शक्ति का विकास होता है, रोगों से लड़ने की ताकत पैदा होती है, प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है। आरोग्य को प्राप्त करने के लिए नाभि पर ध्यान करें।

ध्यान में पहले किसे विषय बनाया जाए? आत्मा या परमात्मा को नहीं, पहले शरीर पर स्वयं पर केन्द्रित तो हो जाओ। अपने मन को पहले किसी बिंदु पर एकाग्र तो कर लें। कुछ महसूस या अनुभव तो कर लें। अपने भीतर की अनुपश्यना तो कर लें। इसलिए पहली स्थिरता नाभि-द्वार पर। जैसे राजमहल में जाना हो तो सीधे तो प्रवेश नहीं कर सकते। कई द्वारों से गुजरना होता है वैसे ही परमात्मा के मंदिर में प्रवेश करने के लिए सबसे पहले नाभि-द्वार पर आओ और उतरो भीतर। इतने कि कुएँ में बाल्टी, ठेठ नीचे तक। थोड़ी स्थिरता आए, एकाग्रता सधे।

कहा जाता है कि भगवान बैकुंठ में, क्षीरसागर में निवास करते हैं। हमारे शरीर का क्षीरसागर नाभि है। ऐसा गुप्त द्वार कि जहाँ ध्यान करने से हम अपनी शारीरिक चेतना से सम्पर्क साधने में सफल होते हैं। भीतर का बैकुंठ, शरीर का कमल है नाभि जिसकी नाल नीचे कुण्डलिनी से जुड़ी है। हम स्वयं को इस कमल से जोड़ें, नाल पर ध्यान न दें वरना ऊर्जा नीचे बह जाएगी। कुण्डलिनी तो जाग्रत न होगी, संसार की भोग-लिप्सा आ जाएगी।

योग-सूत्र कहते हैं – नाभि-चक्र में चित्त को स्थिर करने से शरीर की स्थिति का ज्ञान होता है और चित्त को हृदय में स्थिर करने से चेतना का ज्ञान होता है। आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अगर किसी को रोगों से लड़ने की ताकत चाहिए तो वह नाभि-प्रदेश पर अपना ध्यान केन्द्रित करे, पर जिसे आत्मज्ञान, प्रभु से अपनी प्रीत लगानी है और भीतर छिपे हुए मंदिरों की घंटियों के स्वर सुनने हैं, उसका आनन्द लेना है, प्रभु के प्रकाश में अन्तर्लीन होना है तो उसे हृदय के द्वार में प्रविष्ट होना होगा। उसके लिए एक ही गुफा है और वह है हृदय की। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यक्ति के पास एक ही द्वार है और वह हृदय का द्वार है। अन्तर्हृदय का कमल हमें अपने में तलाशना होगा। जब हम हृदय का निरंतर साक्षात्कार करेंगे तो प्राणों के कमल, चेतना के कमल से हमारा साक्षात्कार होगा। जब हम हृदय का निरंतर

साक्षात्कार करेंगे तो प्राणों के कमल, चेतना के कमल से हमारा साक्षात्कार होगा। जैसे बाहर के फूलों में पराग दिखाई नहीं देता वैसे ही हमारे हृदय के कमल में छिपी हुई पराग की स्थिति, परमात्मा की स्थिति प्रकट होने लगती है। पहले तो कुछ भी नजर नहीं आता लेकिन जिसने भीतर जाने की ठान ही ली है वह वापस लौटने का रास्ता भी नहीं जानता। वह बात करता है तब भी भीतर के तारों से जुड़ कर, जुबान बोलती है पर वह तो दिल से जुड़ा हुआ है। उसका इकतारा बाहर नहीं, भीतर दिल में बजता है।

प्रभु का मार्ग दिलवालों का मार्ग है। मन से प्रभु को नहीं पाया जा सकता। मन में तो कचरा है, विकार-वासनाएँ हैं। कोई भी मन के साथ प्रभु तक नहीं पहुँच सकता क्योंकि मन को साधना बहुत मुश्किल है। जैसे बूँद सागर में जाकर मिट जाती है, ऐसे ही हमारा मन, हमारी मानसिक चेतना दिल में व्याप्त हो जाती है। 'बूँद समानी समुन्द में' – तब मन नहीं रहता, दिल हो जाता है। जब अन्तरात्मा सूक्ष्म है तब अत्यन्त सूक्ष्म रूप में उसमें निवास करने वाली निराकार परमात्मा की चेतना पराग के रूप में हम सभी में व्याप्त है। बस प्रीत करो। प्रभु का मार्ग प्रीत का मार्ग है। योग स्वयं से प्रीत करने का मार्ग है। यह भक्ति और ध्यान का मार्ग है। किसी बाहर के मंदिर में जाने का मार्ग नहीं है, अपने-आप में उतरने का मार्ग है। बाहर किसी गंगाजल से अभिषिक्त करने का नहीं, आँसुओं से अभिषेक करने का मार्ग है।

यह जीवन और जगत एक रहस्य हैं और इस रहस्य को जानने के लिए इसके केन्द्र में उतरना होगा। बाहर से हम पर्वत, नदियों, झरनों को देख सकते हैं, पर इसके रहस्य को समझने के लिए उसके उद्गम स्थल तक उतरना पड़ेगा, ठेठ भीतर तक जाना पड़ेगा। इसीलिए पतंजलि कहते हैं – हृदये चित्त संविद – हृदय में स्थित होने से चेतना का, आत्मा-अन्तरात्मा का ज्ञान होता है। यह चाबी है कि जिसे भी आत्म-ज्ञान की ओर, कैवल्य, ऋतम्भरा की ओर बढ़ना है तो उसे दिल के देवालय में उतरना पड़ेगा।

तेरा साँईं तुझ में, ज्यों पुहुपन में वास।

कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि-फिरि ढूँढे घास ॥

कबीर कहते हैं –

मैं तो तेरे पास में बंदे, मैं तो तेरे पास में
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गंडास में
मैं तो रहों सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में

मैं साँसों की साँस में बंदे, मैं तो तेरे पास में॥

मैं कोई बकरी या भेड़ में नहीं हूँ, जो तू मेरी कुर्बानी दे। ना ही नारियल में हूँ कि जाकर मंदिर में चढ़ा दे। मैं तो शहर के बाहर रहता हूँ, मेरा निवास, मेरा राजमहल तो मेरे ही भीतर है, मेरा बैकुंठ मेरे अंदर है, बस तू अपने आप से प्यार कर।

स्थूल शरीर तो हमें अनुभव में आता है पर क्या इसकी जीवनी शक्ति अनुभव में आती है? अनुभव में नहीं आती फिर भी है और जब यह जीवनी शक्ति दिल से जुड़ती है तब हमारे अस्तित्व के मूल प्राण से, मूल चैतन्य-तत्त्व से हमारा साक्षात्कार करवाती है। हृदय में जाना सागर के किनारे जाने की तरह है कि हम स्वयं को केन्द्रित कर रहे हैं। अगर यहाँ अपनी स्थिरता बना ली, तो धीरे-धीरे काया बिखर जाएगी। अणु-अणु से जुड़कर बनी हुई इस काया का कण-कण बिखरा हुआ अनुभव होगा। प्रत्येक स्कन्ध, प्रत्येक अणु, प्रत्येक पुद्गल, प्रत्येक परमाणु घुलते हुए नज़र आएँगे अर्थात् पदार्थ, पर्याय, पंचभूतों से निर्मित इस शरीर में ही भगवान होंगे।

देखा जाए तो 'भगवान' शब्द में ही पंचभूत छिपे हुए हैं - भ - भूमि से जुड़ा है, ग - गगन, व - वायु, अ - अग्नि, न - नीर से जुड़ा है। यह पाँच तत्त्वों का सार भगवान के रूप में प्रकट हो जाता है। व्यक्तिगत रूप से मैं हृदय का प्रेमी हूँ, हृदय का दूत हूँ। दिल की बात करता हूँ, दिल से बात करता हूँ, दिल से, दिलवालों से बोलता हूँ। मैं पंडित या ज्ञानी नहीं हूँ इसलिए मेरी बातें भी दिलवाले ही समझ सकते हैं। तर्क और मन के बल पर मुझे कोई नहीं समझ सकता। मेरे इर्दगिर्द के लोग भी नहीं समझ सकते क्योंकि वे तर्क चाहते हैं (जिसे मैं कुतर्क कहता हूँ)। मैं दिल के ज्ञान से, भीतर के ज्ञान से बोलता हूँ और यह दुनिया चलती है मन व बुद्धि के ज्ञान से। इसलिए संतुलन नहीं हो पाता। मुझे लगता है मैं इस परिस्थिति के अनुकूल नहीं हूँ। यह दुनिया तर्क से चलती है और मैं प्रेम से चलता हूँ। यह दुनिया वैराग्य से और मैं प्रेम से चल रहा हूँ यही फ़र्क है। मैं मीरा का मित्र हूँ, उनका छोटा भाई हूँ। निश्चय ही मैंने महावीर के धर्म में संन्यास लिया लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि मेरा दिल, मेरी आत्मा महावीर की कम और मीरा की अधिक है। मैं योग और ध्यान भी मीरा बनकर ही करता हूँ। जब भी स्वयं को देखता हूँ 'वो' ही दिखाई देता है वरना मैं क्या चीज़ हूँ? आप सभी में भी प्रभु को ही देखता हूँ। उस निराकार ने अपने लोगों के रूप में नानाविध प्रकार से स्वयं को साकार किया है। आपसे प्रेम और अतिथि-सत्कार का अर्थ है - प्रभु की पूजा। मैंने एक कहानी पढ़ी है गवारिया बाबा की -

कहते हैं वृन्दावन में, रात के समय बाबा बैठे हुए थे कि दो-चार चोर आ गए

और बाबा से पूछा – ‘तुम कौन हो?’ बाबा ने कहा – ‘हम क्या बताएँ कि हम कौन हैं, पर तुम चोर हो तो हम भी चोर हैं। तुम भी चुराने का काम करते हो, हम भी चुराने का काम करते हैं, बस थोड़ी-सी दशा और दिशा का फ़र्क है।’ ‘तो चलो चोरी करते हैं – चोरों ने कहा। ‘चलो’ – बाबा ने कहा – ‘कहाँ चलें।’ ‘जहाँ तुम्हारा जी चाहे।’ ‘चलो’ – निकल पड़े। ‘हिस्सा कितना लोगे?’ ‘वहीं देखेंगे।’ तीनों-चारों चल दिए। एक मकान में सेंध लगाई और सब अंदर जाने लगे तो उन्होंने बाबा को भेजना चाहा कि कुछ गड़बड़ हो तो वे निकलें। बाबा ने कहा – ‘नहीं भाई, पहले आप चलो।’ क्योंकि उन्हें तो चोर दिखाई ही नहीं दे रहे थे। उन्हें तो लगा कि माखन चोर आया है जो स्वयं को चोर कह रहा है। वे तो रोज़ ही माखन चोर को याद करते थे।

जब सारे चोर अंदर चले गए तो बाबा भी चले गए। चोरों ने टॉर्च जलाई और अलमारी वगैरह तोड़कर धन-जेवर इकट्ठा करने लगे, पोटली बाँध ली कि तभी बाबा की नज़र सामने टंगी ढोलक पर चली गई वे तो खुश हो गए। वे तो भूल ही गए कि वहाँ क्या करने आए थे। उन्होंने ढोलक उतारी और मस्ती से बजाने लगे। चोर सतर्क हो गए, उन पर चिल्लाए कि मरवाओगे क्या! बाबा ने कहा – मज़ा आ गया। जीने-मरने की कौन सोचता है और लगे ढोलक पर थाप देने। लोग इकट्ठे हो गए। वे पकड़े गए। शायद लोगों ने थोड़ा पीटा भी हो। जब उजाला हुआ तो लोगों ने देखा कि ये तो गवारिया बाबा हैं। उन्होंने पूछा – बाबा आप यहाँ क्या कर रहे हो। हमें क्या मालूम हम यहाँ क्या कर रहे थे। उन्होंने कहा चोरी करने चलना है, हमने कहा चलो और जब सामने ढोलक देखी तो हम मस्ती में आ गए – बाबा ने कहा। गवारिया बाबा तुम तो किसी घर में चोरी करने जाओगे तो तुम्हारे लिए वह भी वृन्दावन का धाम बन जाएगा। बाबा तुम्हें तो सब जगह भगवान ही दिखाई देता है – ग्रामीणों ने कहा।

तभी तो हम गुनगुनाते हैं – ‘कण-कण में है झौंकी भगवान की, किसी सूझ वाली आँख ने पहचान की।’ जिसने भीतर के देवालय को देख लिया है, भीतर के संगीत को सुन लिया है उसके लिए तो चिड़ियों की चहचहाहट उपनिषदों की आवाज है, कबूतर की गुटर-गूँ में वेदों की ऋचाओं का आनंद मिलता है। हिरण के कुलांचों में कुरान की आयतें नज़र आती हैं। यह तो दिल की बात है। दुनिया में जो भी ऋषि-महर्षि, आत्मज्ञ जिनके भी पुण्य जगे, साधारण शरीर से ऊपर उठकर असाधारण चेतना के मालिक बने उनके हृदय का द्वार खुला। मन में बहुत गड़बड़ियाँ हैं – कभी क्रोध करता है, कभी तृष्णाएँ पालता है – बहुत गड़बड़ करता है, पर हृदय! कण-कण में प्रभु के दर्शन करता है। बड़ा सुन्दर गीत है –

कण-कण में है झाँकी भगवान की ।
 किसी सूझ वाली आँख ने पहचान की ॥
 नामदेव ने पकाई रोटी कुत्ते ने उठाई
 पीछे घी का कटोरा लिए जा रहे
 नाथ रूखी तो न खाओ,
 थोड़ा घी तो लेते जाओ
 अपना मुखड़ा क्यों मुझसे छिपा रहे?
 तेरा मेरा एक रूप, फिर काहे को हुजूर
 तूने शक्ल बना ली यह श्वान की
 मुझे ओढ़नी ओढ़ाई इंसान की ।

कण-कण में....

संत नामदेव को देखो – रोटी बनाकर रखी थी कि एक कुत्ता आया और रोटी उठाकर चल दिया तो वे उसके पीछे घी का कटोरा लेकर दौड़े कि हे प्रभु! रोटी रूखी है, आप ऐसे न खाएँ, थोड़ा घी भी ले जाएँ। आगे कहते हैं – तेरा-मेरा एक रूप है फिर प्रभु तुमने श्वान की शक्ल क्यों बना ली और मुझे इंसान की चुनरिया ओढ़ा दी? तू और मैं तो एक ही हैं यह बाहर का चोला है जिसमें तू श्वान और मैं इंसान नज़र आता हूँ। अब तू और मैं अलग नहीं हैं, यह भेद ही गिर गया है।

जब तक इंसान घड़े में पानी लेकर चलता है तब तक लगता है यह पानी मेरा है, मेरा है। लेकिन जब कोई सरोवर की तरफ बढ़ता है और संयोग से उसका मटका फूट जाए तो वह पानी सरोवर के जल में ही समा जाता है। जब मैं का विचार मिट जाता है, विकार और वासनाओं का कोलाहल हट जाता है तब शांत, शून्य मौन, आनंदपूर्ण लयलीनता की स्थिति बन जाती है तो फिर फूटा कुंभ जल-जल ही समाना। जब तक मेरेपन का आरोपण है, माया के मिथ्यात्व का घड़ा बना हुआ है, तब तक मैं, मैं रहता है।

स्मरण रहे लोग मरते हैं, प्यार कभी नहीं मरता। जिसने भी विकास किया अन्ततः मिट्टी में ही समा गए। दुनिया में किसका विकास रहा है। हम जानते हैं गांधी जी बहुत महान हुए लेकिन उन्हें कब तक जिंदा रख सकोगे। महावीर से लेकर गांधी तक न जाने कितने लोग पैदा हुए और उनमें कई लोग महापुरुष भी हुए होंगे। प्रतीक के रूप में कुछ नाम याद रख लिए जाते हैं। गांधी केवल नाम नहीं, एक सिद्धांत है, जीवन-दर्शन है। गांधी तो मर चुके हैं। लोग मरते हैं, पर सत्य कभी नहीं

मरता। प्रभु से किया गया प्रेम तो कभी नहीं मरता। तुलसी हो या सूर, मीरा या नानक सभी प्रभु से प्रेम करने वाले लोग हैं।

नज़र मीरा की निराली, पीके ज़हर की पियाली
ऐसा गिरधर बसाया हर श्वास में,
जब आया काला नाग, बोली धन्य मेरे भाग
प्रभु आप आए साँप के लिबास में।
आओ-आओ बलिहार, काले किशनकुमार
मेहरबानियाँ हैं उसी मेहरबान की,
धन्यभागी हूँ मैं आपके अहसान की।

कण-कण में.....

मैं धन्य भागी हूँ कि आज आप साँप के लिबास में आए हैं, मैं आपकी शुक्रगुजार हूँ।

इसी तरह सूरदास, निगाह जिन की थी खास
ऐसा नैनों में नशा था हरिनाम का,
जब नैन हुए बंद, तब मिला वो आनंद
आया नज़र नज़ारा घनश्याम का
हर जगह वो समाया, सारे जग को बताया
आई आँखों में रोशनी जब ज्ञान की
देखी झूम-झूम झलकियाँ भगवान की।

कण-कण में.....

कोई-कोई सा ही उसे पहचान सकता है।
गुरु नानक-कबीर, नहीं जिनकी नज़ीर
देखा पत्ते-पत्ते में निरंकार को
नज़दीक और दूर वही हाज़िर हुआ
यही सार समझाया संसार को
नत्थासिंह ये जहान, शहर गाँव बियाबान
मेहरबानियाँ हैं उसी मेहरबान की,
सारी चीज़ें हैं ये एक ही दुकान की

कण-कण में.....

सारी माया उस एक ऊपरवाले की है। जो भेद दिखाई देते हैं वे बाहर के हैं

और ये भेद बहुत विरोधाभास खड़ा करते हैं। भीतर तो कोई भेद नहीं है वहाँ सब अभेद है। जब मैं और मेरा खो जाता है तो केवल वही एक रह जाता है।

सबका मालिक एक अर्थात् जो अन्तर्घट में, भीतर के सागर में उतरकर धैर्यपूर्वक अपनी धारणा को प्रगाढ़ करते हुए हृदय में ध्यान करता है तब सारे पुद्गल-परमाणु बिखर जाते हैं और हृदय का कमल साकार हो जाता है। निराकार को साकार करने का यही तरीका है, दिल से प्रीत करो। दिल एक मंदिर है, प्यार की जिसमें होती है पूजा, यह प्रीतम का घर है। अपने प्रीतम से प्रेम करें। परमात्मा की प्रीत को अपने दिलो-दिमाग में बसाते हुए हृदय की गुफा में, हृदय के सागर में उतरें। बार-बार वहाँ जाएँ पता नहीं कब वहाँ दीप जल जाए और निराकार साकार हो जाए। अगर विश्वास और प्रीत है तो अपने भीतर चलो वहाँ छिपे हुए मंदिरों के नगर में जहाँ शिखर भी है, घंटी की ध्वनि भी है, संगीत भी है।

आत्म-ज्ञान प्राप्त करना जीवन की सफलता है लेकिन प्रभु से प्रीत लगाना ज्ञान प्राप्त करने से भी बड़ी उपलब्धि है। आप सभी प्रभु से प्रीत लगाने में सफल हों। आपके अन्तर्घट में विराजित परमात्मा को प्रेमपूर्ण प्रणाम समर्पित करता हूँ।

श्री प्रभु शरणम्।



योग का अंतिम संदेश

निजता की प्राप्ति

मेरे प्रिय आत्मन्!

प्रायः एक प्रश्न उठा करता है कि धर्म क्या है? कई साधक मुझसे यह प्रश्न पूछते भी रहते हैं। मैं एक ही पंक्ति में इसका उत्तर दिया करता हूँ कि निज स्वरूप की प्राप्ति ही हर व्यक्ति का धर्म है। तब अगला प्रश्न आया कि दुनिया में धर्म के नाम पर जितनी क्रियाएँ चलती हैं क्या वह धर्म नहीं है। मैंने कहा – ये सारी क्रियाएँ अपनी निजता की प्राप्ति के लिए ही बनाई गई छोटी-छोटी पगडंडियाँ हैं। इन सभी का उद्देश्य अपने स्वरूप को प्राप्त करना ही है। फिर पूछा गया कि क्या शास्त्रों में धर्म नहीं है। उनकी बात सुनकर मैं मुस्कुराया और कहा – शास्त्रों में धर्म नहीं होता। उनमें धर्म की अलग-अलग अभिव्यक्तियाँ होती हैं। उनकी अगली जिज्ञासा थी कि क्या पंथ और सम्प्रदाय धर्म नहीं होते। मैंने कहा – नहीं, ये भी धर्म नहीं होते। संप्रदाय और पंथ सामाजिक व्यवस्थाएँ होती हैं, एक संगठन होते हैं, धर्म कदापि नहीं। धर्म एक ही है कि अपनी निजता धारण की जाए।

भगवान महावीर ने कहा है – वस्तु सहावो धम्मो। वस्तु का स्वभाव ही धर्म है अर्थात् जो जीवन को धारण करने वाला तत्त्व है, वह निजता का तत्त्व है और इस

निजता को खोजना, इसे प्राप्त करना ही सर्वोच्च धर्म है। अलग-अलग प्राणी अलग-अलग धर्मों को अखिरियार किए हुए हैं, पर अपनी निजता के धर्म को भूल गए हैं। उसे दुनिया भर की बातें दिन-रात याद रहती हैं लेकिन जिस जीवन को उसने धारण किया उसकी जीवनी-ऊर्जा को, जीवनी-शक्ति को, आत्मस्वरूप को भूल जाता है। हाँ, अगर कभी श्मशान जाना पड़ जाए तो वहाँ जलती हुई चिता को देखकर कुछ समय के लिए यह भाव जरूर उठता है कि अंत में उसे भी यहीं आना है, शरीर छूट जाने वाला है। तब उसे गीता के वचन याद आते हैं कि सोचो तुम आए तब क्या साथ लाए और जब यहाँ से जाओगे तो साथ क्या ले जाओगे। कुछ समय के लिए ये बातें चिंतन में आती हैं लेकिन बहुत लम्बे समय तक इन बातों का असर नहीं रहता। निकट संबंधी होने पर अधिकतम बारह दिनों तक वह वैराग्य की किरण रह जाएगी अन्यथा स्वार्थी, मायावी प्रकृति का इंसान होगा तो श्मशान से घर लौटते ही पिता की सम्पत्ति के लिए लड़ेगा, झगड़ेगा और पत्नी गुजर गई है तो बारह दिन भी नहीं निकल पाएँगे कि नई पत्नी लाने की जुगत बिठाने लगेंगे। यह प्रतीक्षा रहती है कि कोई व्यक्ति उसके सामने बात चलाए। ऊपर से कहेंगे कि शादी करने की इच्छा तो नहीं है, पर छोटे-छोटे बच्चे हैं इन्हें संभालने के लिए शादी तो करनी पड़ेगी। छोटे बच्चों का बहाना बनाकर फिर इंसान वासना का पुतला बन जाता है।

वैराग्य की किरण भीतर रह नहीं पाती अर्थात् निजता की खोज करनी है यह हम लोगों को याद ही नहीं रहता। धर्म के नाम पर दान कर देते हैं। किसी चींटे-मकोड़े को बचा देते हैं, कसाईखाने में जाकर पशुओं को तो बचाते नहीं, अहिंसा के नाम पर मकोड़े को बचाते हैं। यह अच्छी बात है लेकिन याद रखना चाहिए कि धर्म एक है जैसे फूल का खिलना एक ही धर्म है। फूल केवल एक ही धर्म जानता है – खिलना फिर मुरझा जाना। पानी की प्रकृति शीतल है, निमित्तों को पाकर भले ही गर्म हो जाए। पानी का धर्म जलती हुई आग को बुझाना है। हरेक का एक ही धर्म होता है। सोचें अगर हम दस धर्मों में चलें कि थोड़ा यह कर लें, थोड़ा वह भी कर लें, थोड़ी सामायिक, थोड़ी पूजा, थोड़ी साधना भी कर लें – करने के लिए मनाही तो नहीं है, पर तब कुछ भी हाथ न लगेगा। धर्म एक ही है, उसकी अभिव्यक्तियाँ अलग-अलग हो सकती हैं। पगडंडियाँ अलग होंगी, पर धर्म का स्वभाव एक ही है। अनंत स्वभाव और अनंत धर्म नहीं होते। हमें जैसे निमित्त मिलते हैं उसके कारण वैसी अभिव्यक्ति और प्रतिक्रिया हो जाती है। धर्म तो एक ही है – अपनी निजता की, अपने आत्म-स्वरूप की प्राप्ति।

श्रीमद् राजचन्द्र जी के पास लघुराज स्वामी पहुँचे और रातभर पंचांग नमन

करते हुए बार-बार यही कहते रहे, 'प्रभु! मुझे गुरुमंत्र दीजिए ताकि मेरा उद्धार हो, कल्याण हो।' राजचन्द्र जी जब अपनी साधना समाप्त कर के उठे तो आश्चर्यचकित रह गए कि स्वयं वह तो गृहस्थ आश्रम में अवस्थित और जो उन्हें प्रणाम कर रहा है वह तो संन्यासी है, संत है और संन्यासी एक सौ आठ बार प्रणाम कर उनसे गुरुमंत्र मांग रहा है। तब राजचन्द्र जी ने मंत्र दिया, 'सहजात्म स्वरूप परम गुरु।' मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ, तुम्हारी आत्मा का सहज स्वरूप, सहज स्वभाव, सहज धर्म ही तुम्हारा गुरु है। गुरु ही नहीं वरन् परम गुरु है।

निजता की प्राप्ति अकेला धर्म है। उसके लिए तो अवश्य ही, जो साधना के मार्ग पर आ चुका है। लेकिन जो अभी संसार में ही रचा-पचा है उसके लिए धर्म की कई राहें, कई पगडंडियाँ हो सकती हैं। वह दया-दान करे, घर-गृहस्थी का पालन करे लेकिन साधक का एक ही धर्म है, अपने निज स्वरूप की, आत्म-स्वरूप की प्राप्ति, अपने आप से साक्षात्कार। वह लोगों से नहीं स्वयं से इंटरव्यू लेता है, लोगों से नहीं, स्वयं से प्रश्न पूछता है। मुझे कभी कोई समस्या हुई ही नहीं इसलिए मैंने कभी किसी से कोई प्रश्न पूछा ही नहीं क्योंकि जब से धर्म का मर्म जाना है प्रश्न उठते ही नहीं हैं। इसलिए कोई भी धर्म करूँ, कोई भी क्रिया करूँ एक ही बात याद रखता हूँ कि मेरा केवल एक ही धर्म है कि जिसने इस जीवन को धारण कर रखा है, जिसने इस काया को धारण कर रखा है, जो हमारे लिए वाणी का माध्यम बनता है, जो हमारे लिए सोच-विचार का माध्यम है, जो हमारी पाँचों इन्द्रियों को काम करने की शक्ति देता है, ऊर्जा देता है - वह क्या है उसे जानें, उसका आनंद लें। शेष तो मिले या न मिले कोई बात नहीं, क्योंकि तय है कि अपने दादा जी गए तो सब यहीं छोड़ गए, पिताजी भी सब यहीं छोड़कर चले गए, गुरु जी भी कुछ साथ नहीं ले गए।

जब सब यहीं छूट जाना है तो क्यों परेशान हों। कर्मयोग करते हैं, पर फल की इच्छा नहीं रखते। जो हो सो हो, हो जाए तो भी ठीक और न हो पाए तो भी ठीक। नाम, रूप, स्थान सारी बाह्य चीजें, निजता को ढँकने का प्रावधान हैं। जो व्यक्ति संन्यास लेता है उसका नाम बदल दिया जाता है, मुझे लगता है यह अच्छी बात है क्योंकि इससे पुराना मोह छूट जाए। मैं तो सोचता हूँ कि संन्यासी को भी हर दस वर्ष बाद पुनः संन्यास लेना चाहिए ताकि बीच में जो मोह माया आ गई है, वह त्यागी जा सके, नाम भी बदल ही देना चाहिए ताकि इसका भी मोह न रहे। संन्यासी घर-गृहस्थी छोड़कर तो आ जाता है लेकिन अब क्या करे। धर्म-आराधना भी करता है, पर अपना नाम कमाने में लग जाता है। गृहस्थी के कार्य तो छूट गए अब नाम कैसे

हो, सो अपने नाम की डुगडुगी बजाने के लिए धर्म के नाम पर कई-कई आयोजन करवाता है। नए सिरे से मायाजाल में फँसता है इसलिए दस साल बाद नाम भी बदल ही दिया जाना चाहिए।

दुनिया में शैतान और भगवान दो तत्त्व हैं। शैतान हमें मदारी के डमरू की तरह भटकाता रहता है। गृहस्थों को भी, संतों को भी। भगवान की पुकार हम सुन नहीं पाते, उसकी ओर ध्यान नहीं दे पाते क्योंकि निजता की ओर हमारा ध्यान नहीं है तो शैतान हम पर हावी हो जाता है, अपना प्रभाव जमा लेता है और हमें फँसा लेता है क्योंकि हम दुनिया में इन्द्रियों से जीते हैं। शैतान इन इन्द्रियों के द्वारा, मन के द्वारा अपना काम करता है। दोनों ही अदृश्य और निराकार हैं। भगवान के लिए तो चेतना का, आत्मा का द्वार है लेकिन शैतान के सामने कई द्वार हैं – इन्द्रियों के, चित्त के, मन के द्वार। हम लोग निजता पर ध्यान नहीं देते इसलिए भगवत्ता के मालिक नहीं बन पाते। इन्द्रियों में, मन और चित्त के घेरों में उलझे हुए रह जाते हैं। जिसने शैतान की भाषा समझ ली वही जान सकेगा कि भगवान की भाषा क्या होती है। जो शैतान के मर्म को समझता है वही भगवान के मर्म को समझ सकेगा।

कहते हैं – एक संत, नाव में बैठकर नदी पार कर रहे थे। उनके साथ अन्य बहुत से युवक व युवतियाँ भी थे। जैसे ही संध्या होने लगी संत अपनी पूजा-प्रार्थना के लिए तत्पर हो गए। प्रभु प्रार्थना में लीन उनकी आँखों से आँसू गिरने लगे।

स्मरण रहे, जब तक प्रार्थना आँसुओं के द्वारा अभिव्यक्त न हो तब तक वह प्रार्थना केवल रटी-रटाई शब्द-रचना होती है। जब तक प्रार्थना और गीत या भजन कंठ से निकलकर आँखों से व्यक्त न हो जाए तब तक वह भजन नहीं केवल परम्परा का निर्वाह है। जैसे शराबी रोज शराब पी लेता है या सिगरेट पीने वाला धुआँ छोड़ देता है ऐसे ही पुजारी भी रोज वही रटे-रटाये स्तोत्र और प्रार्थना, गीत और भजन बोल लेता है। जो भजन दिल से न उठे, कंठ से निकलकर आँखों से न झरे तब तक वह भजन, भजन नहीं। भगवान मुँह का नहीं सुनते, वे तो दिल की बात आँखों के जरिये सुनते हैं। उनका सुनने का अपना तरीका है। केवल शब्दों के भजन से आत्मा में निर्मलता नहीं आती वरन् आँखों से दो आँसू झरने से चित्त हल्का होता है, आत्मा के पाप धुलते हैं। ये आँसू गंगा-स्नान का आनन्द देते हैं। गंगा के घाट पर कितने मेले लगते हैं, हजारों लोग गंगा में डुबकी लगाते हैं। अगर ये लोग निष्पाप और पुण्यात्मा हो गए हैं तो पूरी दुनिया के लोगों को गंगा में डुबकी लगवा देनी चाहिए, पर ऐसा नहीं होता, हम जैसे पहले होते हैं वैसे ही पापी रह जाते हैं। गंगा में डुबकी लगाने से

निष्पाप हुआ जा सकता है, बशर्ते वह अपने पापों का अहसास कर ले और उन पापों का विसर्जन करने के लिए गंगा में डुबकी लगाएगा तो निश्चय ही वह निर्मल, निष्पाप और पुण्यवान होगा। उसके पाप धुल जाएँगे।

संत की नौका में, साथ चल रहे युवक-युवतियों ने जैसे ही देखा कि अंधेरा घिरने लगा है वे मटरगश्ती करने लगे, बेहूदा हरकतें करने लगे। किसी ने अपने कपड़े उतारे और संत की ओर फैंक दिए, किसी ने चप्पलें फैंकी, नाच गाना, ऊधम, मस्ती करने लगे। उनकी बदतमीजी बढ़ गई तभी आकाश में आवाज़ गूँजी कि संतप्रवर! अगर आप कहें तो इन सभी को अभी नदी में डुबो दूँ। संत कुछ न बोले। वे अपनी प्रार्थना में लीन रहे, पर लड़के-लड़कियाँ आकाशवाणी सुनकर घबरा गए। कंस भी आकाशवाणी सुनकर घबरा गया था और अपने बहन-बहनोई देवकी-वसुदेव को कारागार में डाल दिया था।

थोड़ी देर बाद जब संत की प्रार्थना पूरी हुई तो देखा कि सब लोग घबरा रहे हैं। उन्होंने कहा – बच्चो, घबराओ मत, शांति से बैठ जाओ, कुछ नहीं होगा। तभी आकाश से दूसरी घोषणा हुई कि – मेरे प्रिय, जो पहले घोषणा हुई थी उसे तुमने लागू नहीं होने दिया। लगता है तू पहचान गया कि पहली वाली आवाज़ किसकी थी। संत ने कहा – हाँ प्रभु, मैं पहचान गया कि पहले वाली भाषा और आवाज़ किसकी थी। पुनः आवाज़ आई – वत्स, भगवान की भाषा को वही समझ सकता है, जो शैतान की भाषा को समझ सकता होगा।

‘डुबा देने’ की भाषा शैतान की भाषा हो सकती है, भगवान की भाषा तो होगी कि अगर तू कहे तो मैं इन सबकी बुद्धि पलट दूँ। मति सन्मति कर दूँ।

जिसने शैतान के कार्यों को समझा कि क्रोध आया यह शैतान का कार्य था, किसी ने गाली दी यह शैतान का कार्य था, किसी ने हमें उत्तेजित किया यह शैतान हमारी परीक्षा ले रहा था और हम फिसल गए कि शैतान अपना कार्य कर गया और हम पुनः-पुनः अपनी निजता से वंचित हो गए।

निजता की खोज ही धर्म है। आत्म-स्वरूप की खोज, आत्म-स्वरूप की उपलब्धि, जिसने इस जीवन को धारण कर रखा है, जिसके रहते हम जीवित हैं और जिसके निकल जाने के बाद काया छूट जाने वाली है उससे प्रेम करना, उससे योग साधना, उससे अपनी प्रीत लगाना ही साधक का धर्म है। एक ही सुरति, एक ही स्मृति, एक ही याद, आँखों में एक ही सुरमा रखिए कि मैं काया से भिन्न भी कुछ हूँ।

यह बोलने वाला कोई और है, विचारक कोई और। जीवन में अध्यात्म का जन्म ही तभी होता है जब यह जिज्ञासा उठने लगती है कि हम कौन हैं? इन पर्यायों को धारण करने वाला, इन पदार्थों को बनाने वाला कौन है? मैं पर्याय नहीं हूँ क्योंकि पर्याय बदल जाता है, पदार्थ भी नहीं हूँ क्योंकि पदार्थ बिखर जाता है। क्या मैं भी बिखरने वाला तत्त्व हूँ या जो बिखर रहा है वह तत्त्वों को धारण करने वाला मैं कोई और हूँ।

‘मैं’ के दो अर्थ हैं – एक हमें निजता की ओर ले जाता है और दूसरा अहंकार की ओर। एक ‘मैं’ हमें रावण बनाता है, दूसरा ‘मैं’ राम की ओर ले जाता है। ‘मैं’ घातक भी है और सहायक भी है। ‘मैं’ आत्मघातक भी है और आत्मसाधक भी है। जब हम साधना के, प्रभु के दिव्य मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं तो हमें अपने निज स्वरूप का ध्यान रखना चाहिए। एक पुरानी कहानी है – आप सब ने भी पढ़ी-सुनी होगी कि एक शेर का बच्चा अपनी माँ से बिछुड़ गया और भेड़ों के झुंड में जा मिला। वहीं भेड़ का दूध पीकर मिमियाने लगा उन्हीं की तरह रहने लगा। इस तरह एक शेर भी भेड़ बन गया।

यह सबसे अधिक प्रचलित आध्यात्मिक कहानियों में से एक है, पर इससे आज तक कोई प्रेरणा नहीं ली गई। कहानियाँ तो प्रतीकात्मक होती हैं। बात को समझने के लिए होती हैं। वरना इतिहास में क्या हुआ, किसने जाना। महान पुरुषों के जीवन को हम लोगों ने देखा तो नहीं है, पर उनका उल्लेख इसलिए किया जाता है कि उन्होंने जो प्रकाश-किरणें पाईं वे कहानियों के रूप में हम तक पहुँची हैं, वे शायद हमें कोई रास्ता दिखाने में मददगार बन जाए, हमें कोई प्रेरणा मिल जाए। शेष तो इन शास्त्रों का, पुस्तकों का बहुत अधिक मूल्य नहीं है। सब कागज के पुलिंदे हैं, पर इनका मूल्य इसलिए है कि इनके जरिये प्रकाश की थोड़ी-सी किरण ले सकें। जैसे सूरज उगता है साँझ को अस्त हो जाता है इस दरम्यान अगर उसका उपयोग न किया जाए तो उसके उगने और अस्त होने का हमारे लिए क्या अर्थ? उपयोग करो तो गुरु का भी उपयोग है अन्यथा गुरु भी क्या काम का। उपयोग करो तो मंदिर का पत्थर भी हमें परमेश्वर तक ले जा सकता है अन्यथा स्वयं परमेश्वर भी हमारे सामने आ जाए तो भी कुछ न मिल पाएगा।

पुरानी कहानियाँ भी अर्थ रखती हैं इसलिए तो उन्हें याद करते हैं। यूँ तो हम स्वयं को अरिहंत की, महावीर की संतान कहते हैं, पर हम क्या हैं, यह हम ही बेहतर जानते हैं। एक चूहा देख लें तो डर जाते हैं, छिपकली देख लें तो हिल जाते हैं। हमें बचपन से ही डर की बातें बताई जाती हैं, निर्भयता की नहीं। कल ही समाचार-पत्र

में तस्वीर देख रहा था कि एक विदेशी कलाकार व्हेल मछली की पीठ पर करतब दिखा रही है। हमारे यहाँ बच्चे को स्विमिंग पूल में भेजते समय कहते हैं ध्यान रखना पैर न फिसल जाए और विदेश में बच्चे को समुद्र में उतार देते हैं और परवाह नहीं करते। जो बच्चा बचपन से ही समुद्र की लहरों से संघर्ष करना सीख जाएगा वही बड़ा होकर जिंदगी के संघर्षों को पार कर जाएगा।

भेड़ों के टोले में एक शेर भेड़ का दूध पीने लगा, मिमियाने लगा, जिंदगी चलती रही। हम लोगों की भी चल रही है। गुरु किसी को भगवान नहीं बनाता, न ही किसी को मोक्ष दिलाता है। वह केवल एक कार्य करता है कि वह हमें केवल हमारी निजता क्या है, यह बताता है। वह हमें हमारी वास्तविकता और त्रैकालिक सत्यता बताता है कि तू भेड़ नहीं शेर है – पर यह कोई मानने को तैयार नहीं होता। तब शेर उसकी गर्दन पकड़कर सरोवर के किनारे ले जाता है और उसको उसकी परछाईं दिखाता है। तब भी वह घिघियाता है। शेर अपनी परछाईं भी दिखाता है, जोर से दहाड़ता है। भेड़ के झुंड में रहे हुए शेर ने उसकी परछाईं देखी तब उसे लगा कि वह भेड़ नहीं है वह भी शेर है। अपनी निजता को, स्वरूप को पहचान कर वह भी जोर से दहाड़ उठा और वापस भेड़ों के झुंड में नहीं लौटा।

श्मशान भी सरोवर की तरह है जिसमें जाने पर भगवान दिखाते हैं कि यह है हमारी जिंदगी का परिणाम, यह मौत है। यह काया जिसे पोषित करते हैं, शृंगारित करते हैं, सजाते-संवारते हैं, भगवान हमारे घर में किसी सदस्य की मौत को भेजकर यही सबक देना चाहते हैं कि यह है हमारी वास्तविकता। जैसे उसकी काया वैसी ही हमारी काया, जैसे वह मिट्टी, हम भी मिट्टी, जैसे वह जाते समय कुछ भी न ले जा सका वैसी ही हमने कितना भी क्यों न जोड़ रखा हो कुछ भी न ले जा सकेंगे। भले यहाँ हमारे पास अन्न के भंडार हों, पर साथ में तो चुटकी आटा भी न ले जा पाएँगे। यहाँ पर ए.सी. है, वहाँ नीम की छाँव भी नसीब नहीं होगी। भगवान सब दिखाते हैं, पर हम जन्मों की भेड़, देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। कोई कहता है तो मान लेते हैं कि हम आत्मा हैं, परमात्मा के अंश हैं, पर कोई स्वर्ग का सुख आकर देना चाहे तो इंकार कर देते हैं। जिस अवस्था में हैं, उसी में सड़ते रहते हैं। यहाँ की मोह-माया, यहाँ के दुःखों से निकल नहीं पाते। हम ऐसे उलझे हुए हैं कि अगर सामने श्मशान भी देख लें, मौत भी देख लें तो भी हिलते नहीं हैं, कोई फ़र्क ही नहीं पड़ता। जैसे हॉस्पिटल के डॉक्टर को किसी के मर जाने पर बहुत अधिक फ़र्क नहीं पड़ता।

एक डॉक्टर था, खूब कमाता था। कोई मर भी जाता तो उसे कुछ न होता था।

लाश पड़ी है, पर पहले अपने पैसे वसूलता तब लाश उठाने देता। एक दिन उसका खुद का बेटा मर गया, हिल गया। भगवान झटका देता है। जो संभल गया वह निजता की ओर बढ़ गया। जो न संभला उसे शैतान वापस अपने कीचड़ के गड्ढे में ले गया।

एक और डॉक्टर हैं। सर्जन थे, अब रिटायर हो गए हैं। उनका बेटा भी डॉक्टर है। पत्नी से घबराते हैं। पत्नी से घबराना कोई खास बात नहीं है, हिटलर भी पत्नी के आगे घबराता था। डॉक्टर अपने बेटे से भी घबराता है। बेटे ने पिता के हस्ताक्षर करने सीख लिए, सो हर महीने की पेंशन भी वही उठा लाता है। पिता के हाथ कुछ नहीं लगता। दस रुपये भी चाहिए तो बेटे से तीन बार माँगना पड़ता है। दुनिया की सर्जरी करने वाले ने घर वालों के आगे अपनी कैसी दयनीय हालत बना डाली है। डॉक्टर कोई क्रदम भी नहीं उठा पा रहा है, कहता है इससे बेटे की बदनामी हो जाएगी।

क्या इसे हम जिंदगी कहेंगे? कैसी बेबसी की हालत है? शेर थे, भेड़ बन गए। सामने वाला शेर-पर-शेर हुए जा रहा है और अपन लोग भेड़-पर-भेड़ हुए जा रहे हैं। प्रश्न है क्या तुम्हारी कोई निजता नहीं है? क्या तुम्हारी कोई ताकत, कोई वजूद नहीं है? अपने सोए सिंहत्व को जगाओ। भेड़ और भेड़िया बनकर जीने का कोई अर्थ नहीं है। कहीं ऐसा न हो कि हमारे सीधेपन को लोग हमारी कमजोरी समझ बैठें और हमारा दोहन करते रहें।

ध्यान हमें सिंहत्व की पहचान देता है। हमारा सोया विश्वास और भाग्य जगाता है, जब भी किसी का सिर फूटता है तो या तो भाग्य जगता है या भाग्य फूटता है। जो होना होगा, सो होगा। अवसर को व्यर्थ मत जाने दो।

ध्यान और साधना केवल अपनी निजता की खोज है। इस निजता की खोज के लिए ही पतंजलि ने कहा था – हृदये चित्त संवित्। हृदय व्यक्ति के लिए आत्म-ज्ञान का द्वार है। हृदय पर ध्यान करने से, लगातार हृदय से रू-ब-रू होने से व्यक्ति के आत्म-ज्ञान का फूल खिलता है, आत्म-ज्ञान का प्रकाश प्रकट होता है। जिस परमात्मा की, ईश्वरीय चेतना की हम लोग प्रार्थना, साधना और उपासना करते हैं, उसका अपने भीतर-बाहर उसी का सान्निध्य, उसी का नूर निहारता रहता है। हृदय शांति का मंदिर है, पवित्र प्रेम का आधार है। यदि कोई व्यक्ति अपने शरीर और बुद्धि को निर्मल तथा प्रकाशित करना चाहता है तो हृदय का आलम्बन हो। अपनी ओर से हृदय में ईश्वरीय चेतना और प्रकाश का ध्यान करे। उसी प्रकाश को, उसी प्राणशक्ति, आत्म-ज्योति और आत्म-ऊर्जा को हम अपने पूरे शरीर में और बुद्धि में

भी व्याप्त करें। जैसे सूरज की रोशनी चारों ओर बिखरती है ऐसे ही हृदय की रोशनी को हम अपनी बुद्धि और शरीर में प्रकाशित करें।

बुद्धि सदबुद्धि ही नहीं रहती, दुर्बुद्धि भी हो जाती है। मन सुमन ही नहीं रहता दुर्मन भी हो जाता है। प्रश्न है कि इसे हम प्रकाशित कैसे करें? बहुत से लोगों ने ढेरों उपाय ढूँढे होंगे, पर कोई भी उपाय मन को निर्मल नहीं कर पाया, मन को निर्विकार, अचंचल और एकाग्र नहीं कर पाया, विषयों से विमुख नहीं कर पाया। विषयों से विमुख होने का एक ही आधार है – हम अपनी बुद्धि, मन को प्रकाशित करें। अपने हृदय में ध्यान धरकर हम आत्म-ज्ञान के प्रकाश को प्रकट कर सकते हैं। हमारा हृदय वह द्वार है, जहाँ जाकर आत्म-ज्योति के प्रकाश से बुद्धि को प्रकाशित कर सकते हैं। अपने शरीर, मन, बुद्धि, विचार, वाणी और इन्द्रियों को निर्मल करने के लिए हृदय में ध्यान करें। संभव है कि यह प्रकाश बाहर तक फैल जाए तब हम देह में रहते हुए देहातीत, विदेह-अवस्था को उपलब्ध होंगे।

निजता की खोज इस हृदय से ही जुड़ी हुई है। एक सुन्दर-सा गीत है –

मैं आप अपनी तलाश में हूँ, मेरा कोई रहनुमा नहीं है।
वो क्या बताएँगे राज मुझको, जिन्हें कि खुद का पता नहीं है॥

ये मस्जिदें, ये मंदिर, ये गिरजे, ये सब उसी की पूजा के घर हैं।
अगर खुदा रहते हों यहीं पे, तो इनमें मेरा खुदा नहीं है॥

अगर मिले कोई यतीम मुझको, तो उसकी आँखों का अश्क पी लूँ।
खुशी की खुशबू लुटा के जिऊँ, बिना खुशी के खुदा नहीं है॥

ये ज़िंदगी है नदिया का पानी, जो आज है वो ही कल नहीं है।
हर मुश्किलों में भी मुस्कुराके, जो न जिया वो जिया नहीं है॥

देख रहा हूँ सारे जहाँ को खुदा की कुदरत का लुत्फ़ लेता।
दिलवर को अपने दिल में ही देखूँ, दिल से खुदा भी जुदा नहीं है॥

ये 'चन्द्र' जाने पूजा न सज़दा, तू मेरी पूजा की लाज रखना।
हर साँस मेरी, तेरी इबादत, हर साँस में क्या खुदा नहीं है॥

मैं आप अपनी.....

अपनी तलाश, आत्मा की तलाश के लिए जो लोग चल रहे हैं उन्हें समझ लेना चाहिए कि आत्म-ज्ञान का प्रवेश-द्वार, निजता की पूर्णता अगर कहीं से मिल सकती है तो उसका अकेला आधार, मंदिर और तीर्थ उसका अपना हृदय है। उस प्रकाश से

हम अपनी इन्द्रियों को और साधना के षष्ठचक्रों को प्रकाशित करें। हृदय के रास्ते हम प्रभु से मिलन करते हैं। वह प्रकाश के रूप में हमारे हृदय में साकार होता है। हमारे हृदय में दिव्य प्रेम, दिव्य करुणा, दिव्य ज्ञान, आत्मा का दिव्य प्रकाश प्रकट होता है। प्रेम व ज्ञान में फ़र्क़ नहीं होता। दीयों में फ़र्क़ हो सकता है लेकिन प्रकाश में कोई फ़र्क़ नहीं होता।

हम हृदय के द्वारा बुद्धि तक पहुँचें। बिना हृदय के बुद्धि तक पहुँच भी गए तो परिणाम नहीं आएगा। पतंजलि कहते हैं – मूर्धा ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम् – मूर्धा ज्योति अर्थात् भृकुटि मध्य आज्ञा-चक्र में अथवा कपाल स्थित ब्रह्मरंध्र में ध्यान करने से सिद्धों का दर्शन होता है। ललाट प्रदेश पर आज्ञा-चक्र में, अपने मस्तिष्क के इस आध्यात्मिक केन्द्र पर ध्यान करने से वह सिद्धों से जुड़ता है। जुड़ोगे कैसे? क्या बिना कमल-डंडी के कमल खिल जाएगा? क्या बिना बीज के पौधा अंकुरित हो जाएगा? हृदय ही हमारा बीज है, प्रकाश हृदय से ही निकलेगा। हृदय से निकली हुई प्राण चेतना को अगर हम आज्ञा-चक्र पर केन्द्रित करते हैं, ललाट प्रदेश तक ले जाते हैं तो निश्चित ही व्यक्ति को सिद्धों के दर्शन होते हैं। जैन लोग कहते हैं – ‘णमो सिद्धाण’ लेकिन इतना मात्र कहने से सिद्धों के दर्शन नहीं होते। सिद्धों का दर्शन करने के लिए हमें हृदय से जुड़ना होगा, उसके तारों के साथ अपनी लय मिलानी होगी।

सूर के इकतारे की तरह, मीरा के घुँघरू की तरह, एकलयता साधनी होगी। पहले योगी मत बनो, पहले मीरा बनो। बिना हृदय से जुड़े एकलयता नहीं आएगी। किसी भी पद्धति से ध्यान करने वाले लोग क्यों न हों, मेरा सभी से अनुरोध है कि हृदय से ध्यान करो, हृदय से प्रीत पालो। वहीं से रास्ता खुलेगा। योग के बंद दरवाजे वहीं से खुलते हैं। अगर वहाँ से बुद्धि प्रकाशित हो गई तो ललाट-प्रदेश पर ध्यान खुलेगा, ब्रह्मरंध्र के बंद द्वार खुलेंगे। योग के बंद दरवाजे वहीं से खुलते हैं। अगर वहाँ से बुद्धि प्रकाशित हो गई तो ललाट-प्रदेश पर ध्यान करने से निश्चित ही सिद्धों के दर्शन होंगे। हमारा मस्तिष्क अनगिनत ज्ञान कोशिकाओं से भरा हुआ है। भौतिक रूप से पूरे शरीर को चलाने वाला, हृदय को धड़काने वाला हमारा मस्तिष्क ही है। शरीर की सारी गतिविधियों को संचालित करने के लिए आदेश देने वाला हमारा दिमाग ही है। इस मन को हम भ्रू-मध्य पर जो कि आध्यात्मिक केन्द्र है, इस पर केन्द्रित करते हैं। यह शिव-नेत्र कहलाता है। कहा जाता है कि शिव अगर तीसरा नेत्र खोल दे तो तांडव मच जाता है। यह अत्यधिक ऊर्जावान प्रदेश है।

हमें जान लेना चाहिए कि शिव का तीसरा नेत्र क्यों खुलता है और इसके

नकारात्मक परिणाम क्यों आते हैं? वास्तव में शिव का तीसरा नेत्र दुश्मनों के संहार के लिए है। जिनके भीतर अशिव का निवास है उस अशिव का नाश करने के लिए शिव-नेत्र का उपयोग है। हमारे मन की विल-पावर को, मन नामक महान लेकिन सूक्ष्म ऊर्जा को विस्फोटक बनाने में तीसरा नेत्र सहयोगी है। यह छठी इन्द्रिय कहलाती है। इसलिए जब कोई होनी या अनहोनी होने वाली होती है तो हमें छठी इन्द्रिय के द्वारा पूर्वानुभूति होती है। वास्तव में इस केन्द्र द्वारा हमारी बुद्धि तक संदेश पहुँचता है और हमें उस होनी या अनहोनी का अहसास होने लगता है। छठी इन्द्रिय सक्रिय होकर हमें सावधान कर देती है। अगर हम ललाट प्रदेश पर ध्यान कर रहे हैं तो मैं कहूँगा कि यहाँ सूर्य का ध्यान करो। ध्यान में उतरते समय प्रकाश का ध्यान करना चाहिए। हृदय-प्रदेश पर ध्यान करें तो ईश्वरीय ज्योति का ध्यान करें। सुबह ललाट प्रदेश पर सूर्य के प्रकाश का और सायंकाल में ध्यान करते समय चंद्रमा के प्रकाश का ध्यान करें। सूर्य का प्रकाश ऊर्जा और चंद्रमा का प्रकाश हमें शांति देगा, शीतलता देगा।

जिन्हें अपनी प्रकृति चिंतापूर्ण, तनावपूर्ण ज्यादा लगती है, वासना से अधिक घिरे रहते हैं उन लोगों को चंद्रमा के प्रकाश का ध्यान करना चाहिए ताकि उनके भीतर शीतलता का संचार हो। शीतल प्रकाश का ध्यान करें। जब हम त्राटक करते हैं दीपशिखा पर तब दस मिनट बाद नेत्र बंद कर लेते हैं और ललाट पर वह ज्योति छा जाती है। ज्ञान-चेतना का द्वार है ललाट-प्रदेश। ज्ञान-चेतना को जाग्रत करने के लिए ललाट-प्रदेश पर ध्यान करना चाहिए, लेकिन इस केन्द्र पर ध्यान करते समय खिंचावपूर्ण स्थिति न रखें। अपने दिमाग पर किसी प्रकार का दबाव डालते हुए एकाग्रता न लाएँ अन्यथा दिमाग की कोशिकाओं पर जोर पड़ सकता है। यही वजह है कि मैं हृदय पर ध्यान करने की सलाह देता हूँ। पहले हृदय के साथ एकाकार हों। जब हमें लगे कि ईश्वरीय प्रकाश, भले ही पहले कल्पना कर रहे हों धीरे-धीरे वह अनुभूति भी बन जाएगा, तब हम ललाट प्रदेश पर ध्यान करें, तब वह ध्यान हमें सिद्धों से, बुद्धों से, मुक्त चेतनाओं से जोड़ेगा। उन चेतनाओं से इकतार होने का माध्यम बनेगा।

जब हम निजता की खोज का भाव अपने भीतर गहरा कर लेंगे, उसे प्राथमिकता देंगे तब यह बोध हो जाएगा कि धर्म क्या है – वस्तु सहावो धम्मो। आपका धर्म क्या है – अपनी निजता को धारण करना न कि धन को, पत्नी को, व्यापार या संसार को धारण करना। जब यह तत्त्व हमारे भीतर प्रधान हो जाएगा, मन में, दिल में, दिमाग में समा जाएगा तब हृदय में आत्म-ज्ञान प्राप्ति के भाव से ध्यान

कर पाएँगे, तब हम ईश्वरीय चेतना के साथ जुड़ने के भाव से ध्यान करेंगे। वही हमारी धारणा और ध्यान होगा। उसी में से समाधि के फूल खिलेंगे। समाधि के फूल खिलें या न खिलें बस एक ही बात का खयाल रखेंगे कि अपने हृदय में उतरकर उस निराकार अरूपी का ध्यान करेंगे जो दिखाई नहीं देता फिर भी है। उसे महसूस किया जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है।

भीतर उतरें, अपनी निजता से प्यार करें। पतंजलि के योगसूत्रों के सहारे हमने कुछ रास्तों को तलाशने और तराशने की कोशिश की है। इंसान ऊपर उठे कमल के फूल की तरह, दीपक की ज्योति की तरह ऊपर उठे। हमारा उद्देश्य व लक्ष्य ऊपर उठा होना चाहिए। हम सभी अपने लक्ष्य को प्राप्त करें।

पतंजलि हमारे लिए किसी प्रकाश स्तम्भ की तरह हैं और उनके योगसूत्र हमारे लिए स्वास्थ्य, शांति, शक्ति और सच्चिदानंद को पाने का रास्ता है। रास्तों का मूल्य तभी है जब कोई उस पर चले। मानता हूँ सारे बीज फलित नहीं होते, पर माली फिर भी सींचता है, कुछ फलते हैं, कुछ जलते हैं। जो जल गए, वे व्यर्थ गए, जो फल गए, वे धन्य हुए। उनके पाँवों में घुँघरू ठमके। वे विभोर हुए। अस्तित्व उन पर आशीर्वाद बरसाएगा। वे चाँद-सितारों की तरह चमकेंगे, दमकेंगे। ऐसे लोग जहाँ रहेंगे, शांति और आनंद का विस्तार होगा।

आप सबके लिए अमृत प्रेम है, प्रणाम भी।

बेहतरीन किताबें

रॉयल साइज, रॉयल मैटर

रॉयल प्रजेडेशन

किताबों की कीमत लागत से भी कम

जीने की कला

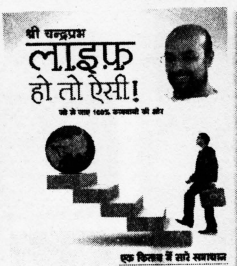
टुही, तपस्य तप म्हा जैस्य जीवें तप हेतुनन जमंजम



जीने की कला (रॉयल साइज)
पृष्ठ : 196 मूल्य : 70/-

लाइफ़ हो तो ऐसी!

को से बस 100% सफलता की ओर

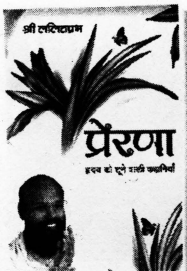


लाइफ़ हो तो ऐसी!
पृष्ठ : 144 मूल्य : 50/-

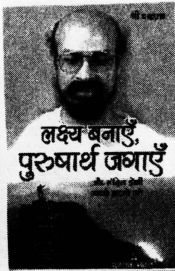


अध्यात्म का अमृत

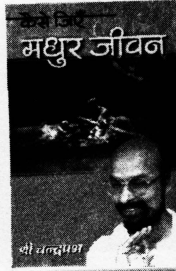
अध्यात्म का अमृत
पृष्ठ : 144 मूल्य : 50/-



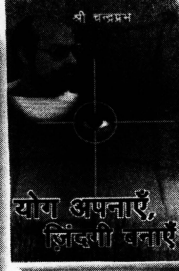
प्रेरणा
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/-



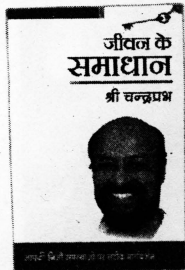
लक्ष्य बनाएँ, पुरुषार्थ जगाएँ
पृष्ठ : 128 मूल्य : 40/-



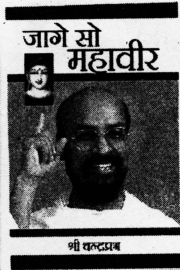
कैसे जीएँ मधुर जीवन
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/-



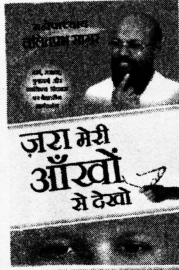
योग अनाएँ, जिंदगी बनाएँ
पृष्ठ : 108 मूल्य : 25/-



जीवन के समाधान
पृष्ठ : 160 मूल्य : 80/-



जागे सो महावीर
पृष्ठ : 192 मूल्य : 40/-



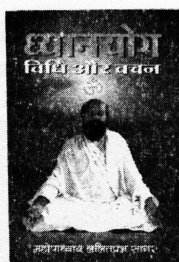
जरा मेरी आँखों से देखो
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/-



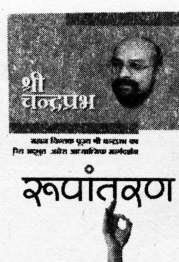
माँ की ममता हमें पुकारे
पृष्ठ : 32 मूल्य : 8/-



मृत्यु से मुलाकात
पृष्ठ : 200 मूल्य : 50/-



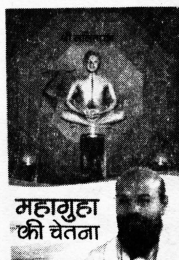
ध्यानयोग : विधि और वचन
पृष्ठ : 160 मूल्य : 40/-



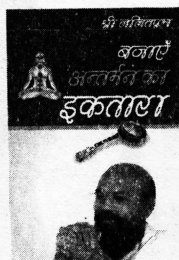
रूपांतरण
पृष्ठ : 160 मूल्य : 25/-



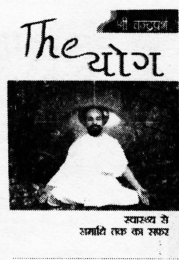
मैं कौन हूँ
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/-



महागुहा की चेतना
पृष्ठ : 192 मूल्य : 40/-



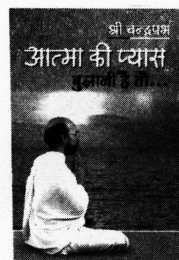
बजाएँ अन्तर्मन का इकतारा
पृष्ठ : 192 मूल्य : 40/-



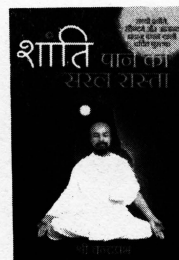
द योग
पृष्ठ : 192 मूल्य : 40/-



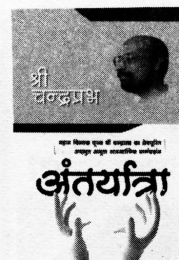
द विपश्यना
पृष्ठ : 160 मूल्य : 30/-



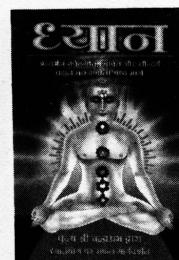
आत्मा की प्यास बुझानी है तो
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/-



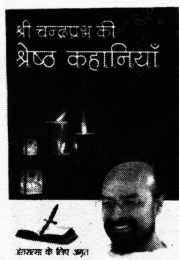
शांति पाने का सरल रास्ता
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/-



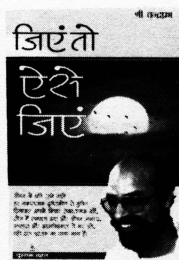
अंतर्यात्रा
पृष्ठ : 160 मूल्य : 30/-



ध्यान
पृष्ठ : 160 मूल्य : 25/-



श्रेष्ठ कहानियाँ
पृष्ठ : 128 मूल्य : 25/-



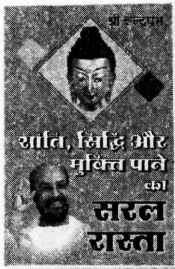
जिएं तो ऐसे जिएं
पृष्ठ : 128 मूल्य : 40/-



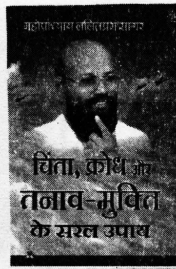
महाजीवन की खोज
पृष्ठ : 160 मूल्य : 40/-



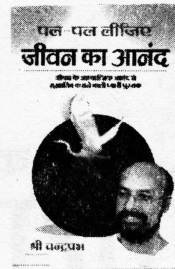
जागो मेरे पार्थ
पृष्ठ : 250 मूल्य : 45/-



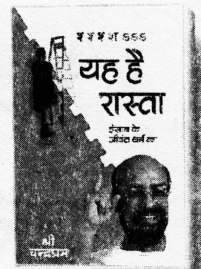
शांति, सिद्धि और मुक्ति पाने का सरल रास्ता
पृष्ठ : 176 मूल्य : 40/-



चिंता, क्रोध और तनाव मुक्ति के सरल उपाय
पृष्ठ : 160 मूल्य : 50/-



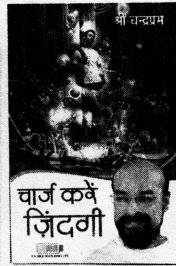
पल-पल लीजिए जीवन का आनंद
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/-



यह है रास्ता जीवत धर्म का
पृष्ठ : 120 मूल्य : 25/-



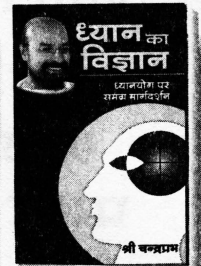
ऐसी हो जीने की शैली
पृष्ठ : 160 मूल्य : 30/-



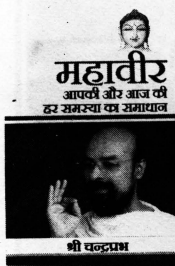
चार्ज करें ज़िंदगी
पृष्ठ : 96 मूल्य : 25/-



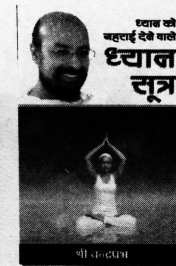
वाह! ज़िंदगी
पृष्ठ : 112 मूल्य : 25/-



ध्यान का विज्ञान
पृष्ठ : 144 मूल्य : 30



महावीर आपकी और आज की हर समस्या का समाधान
पृष्ठ : 300 मूल्य : 60/-



ध्यान को गहराई देने वाले ध्यानसूत्र
पृष्ठ : 192 मूल्य : 35/-



अब भारत को जगाना होगा
पृष्ठ : 176 मूल्य : 35/-

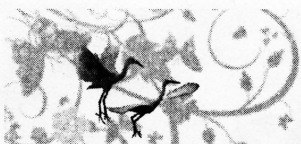


न जन्म, न मृत्यु
पृष्ठ : 192 मूल्य : 35/-

न्यूनतम 400/- का साहित्य मंगवाने पर डाक खर्च संस्था द्वारा देय होगा।
धनराशि SRI JITYASHA SHREE FOUNDATION के नाम से ड्राफ्ट बनाकर जयपुर के पते पर भेजें। उपरोक्त साहित्य प्राप्त करने हेतु अपना ऑर्डर निम्न पते पर भेजें -

श्री जितयशा श्री फाउंडेशन

बी-7, अनुकम्पा द्वितीय, एम. आई. रोड, जयपुर (राज.) 0141-2364737, 2375796

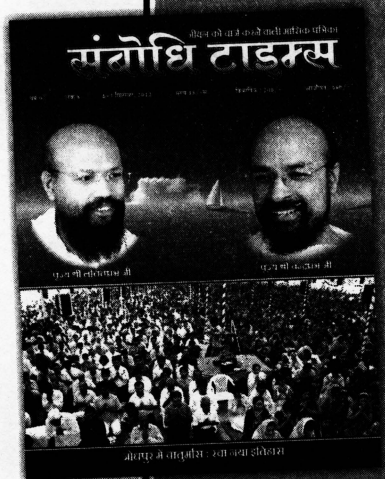


करें अपनी जिंदगी को चार्ज

सं बोधि-टाइम्स

मासिक पत्रिका

**श्रेष्ठ ज्ञान और
श्रेष्ठ चिंतन के
प्रसार की पवित्र
भावना से
प्रकाशित,
संपूर्णतः
लाभ-निरपेक्ष**



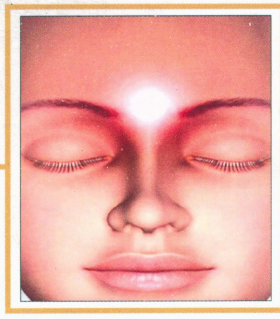
त्रिवार्षिक : 200/-

आजीवन : 600/-

सदस्यता ग्रहण करने हेतु
मनीऑर्डर अथवा ड्राफ्ट
निम्न पते पर भेजें -

SRI JITYASHA SHREE FOUNDATION

B-7, Anukampa II Phase, M.I. Road,
Jaipur (Raj.) Ph. 0141-2364737



पतंजलि के योग-सूत्र 'रहस्य-का-तर्कशास्त्र' हैं। आप उसकी चाहे जितनी पतें खोलें फिर भी कुछ है जो अनकहा रह जाता है। श्री चन्द्रप्रभ ने इन रहस्यों को बड़ी मधुरता के साथ महावीर, बुद्ध, क्राइस्ट, जेन, सूफी आदि परम्पराओं के साथ जोड़कर बड़ी सहजता और संजीदगी से प्रस्तुत किया है। अगर वे रहस्यदर्शी दार्शनिक हैं तो प्रेमपूर्ण हृदय के देवता भी हैं। श्री चन्द्रप्रभ भारतीय एवं मानवीय जीवन-दृष्टि के संवाहक हैं। वे जीवन के शाश्वत सत्यों से स्वयं रूबरू होकर हमें भी रूबरू करवा रहे हैं। सूरज की किरण बनकर हमारे भीतर आशा और विश्वास का सवेरा जगाते हैं, तो चंदा की चाँदनी बनकर हमारे अज्ञान के अंधकार को दूर करते हैं। वे अपनी आत्मीयता में डुबोते हैं और बहुत सरलता से पार उतरने के लिए पतवार थमा देते हैं। वे हमें सच्चाई का सामना करने का पथ और साहस प्रदान करते हैं। योग का प्रवेश-द्वार विकट है। यहाँ कठोर अनुशासन है, जिसमें योग नौका है और उतारने वाला गुरु है। परम पूज्य निमंत्रण दे रहे हैं कि आओ और वह बीज बन जाओ जिससे सुगंधित पुष्पों से भरे, फलों से लदे वृक्ष का उदय हो सके।

